CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jaipur

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

10-3

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

।। श्रीसद्गुरुचरणकमलेभ्यो नमः ।।

# ध्येय ध्यान ध्याता

लेखक
**सी. एल. टण्डन**
एम. ए. एम. ए. एम. एड.
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रकाशक
**मानव उत्थान सेवा समिति**
२/१२, पंजाबी बाग, नई दिल्ली-११००२६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

© सर्वाधिकार सुरक्षित प्रकाशक के अधीन

प्रकाशक
मानव उत्थान सेवा समिति
२/१२, पंजाबी बाग, नई दिल्ली-११००२६

मूल्य : १४.००

मुद्रक
राजेश्वरी फोटो सेटर्स प्रा. लि.
पंजाबी बाग, नई दिल्ली-११००२६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ध्यान मूलं गुरु मूर्ति पूजा मूलं गुरु पादुका ।
मंत्र मूलं गुरु वाक्यं मोक्ष मूलं गुरु कृपा ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# श्रीहंस समर्पणम्

गुरुदेव श्री हंस प्रभो ! आप ध्यान की सजीव मूर्त्ति हैं। केवल मात्र आपका स्मरण जीव को ध्यानस्थ कर देता है और चैतन्य की धारा उसके अंतर में प्रवाहित होने लगती है। ठीक ही तो कहा है शास्त्रों में—'ध्यान मूलं गुरु मूर्त्ति।'

प्रभो ! आप ध्यान के मर्मज्ञ थे और आपकी केवल-मात्र कृपा-दृष्टि से दिव्य नेत्र खुल जाता था जिससे साधक दिव्य ज्योति के ध्यान में मग्न हो जाता था। ध्येय, ध्यान, ध्याता के मर्म को समझाते हुए आप कहा करते थे कि जैसे समुद्र में सीप का मुंह स्वाति बूंद के लिए खुला रहता है और तब तक वह समुद्र के ऊपर ही तैरती रहती है जब तक उसे स्वाति बूंद प्राप्त नहीं होती, जैसे ही स्वाति बूंद उसमें गिरती है तो उसका मुंह बंद हो जाता है और वह समुद्र की गहराई में चली जाती है। फिर तभी वह ऊपर आती है या लाई जाती है जब वह स्वाति की बूंद मोती बन जाती है। ऐसे ही एक ध्याता या साधक जो इस संसार रूपी भव सागर में बह रहा है, जैसे ही उसे चेतन ज्ञान की स्वाति बूंद सद्गुरु की कृपा से प्राप्त होती है तो उसे अपना मुंह बंद कर लेना चाहिए, इंद्रियों के द्वार बंद कर लेने चाहिए और ध्यान की गहराई में जाकर उस परमसत्ता में लीन हो जाना चाहिए। जैसे स्वाति बूंद का रूपांतरण मोती में हो जाता है ऐसे ही ध्यान की गहराई में पहुंचकर एक ध्याता का भी रूपांतरण हो जाता है, उसका जीवत्व समाप्त हो जाता है और वह परमानंद को उपलब्ध हो जाता है। वह उस परमसत्ता में विलीन हो जाता है जिसे संतों ने 'जोत में जोत समानी' या 'बूंद समायी समुद्र में' कहा है।

आज आपकी परम पावन जयन्ती के उपलक्ष में मनाए जा रहे मानव धर्म सम्मेलन के अवसर पर सादर समर्पित है आपके श्री चरणों में यह पुस्तक—'ध्येय-ध्यान-ध्याता।'

**सी.एल. टण्डन**

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक सभी प्रमुख धर्मों के विशद अध्ययन एवं विश्लेषण के पश्चात् तैयार की गई है। इसमें सभी धर्मों का सार-तत्त्व निहित है साथ ही इसमें आधुनिक विज्ञान एवं चिकित्सा-शास्त्र के मान्य ग्रंथों से भी सहायता ली गई है।

'अमृत के कलश', 'गायत्री मंत्र', 'योगः कर्मसु कौशलम्' आदि के रचयिता श्री सी. एल. टण्डन से पाठक भली-भाँति परिचित हैं। 'ध्येय ध्यान ध्याता' नाम की यह पुस्तक उसी शृंखला की अगली कड़ी है।

धार्मिक एकता, मानवीय चेतना का अभ्युत्थान और परस्पर प्रेम व सद्भाव के वातावरण में जीने वाले एक सुदृढ़ सामाजिक संगठन का प्रादुर्भाव इस पुस्तक से प्रतिफलित हो सकते हैं यदि सहृदय पाठक बिना किसी पूर्वाग्रह के इसका अध्ययन करेंगे।

परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री हंस जी महाराज इस लघु प्रयास के मूल प्रेरणा-स्रोत हैं तथा वर्तमान सद्गुरुदेव श्री सतपाल जी महाराज के आदेश एवं निर्देश इस प्रयास की सफलता के हेतु हैं।

आशा है प्रेमी पाठक इस प्रकाशन को समादरपूर्वक अपनाएंगे और इससे समुचित लाभ उठाएंगे। इसके अध्ययन एवं मनन से उन्हें अपनी ध्यान की साधना में आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलेगी, मार्ग की बाधाएं उन्हें विचलित नहीं करेंगी, उनका दृष्टिकोण स्वच्छ व निर्मल बनेगा तथा उनका साधना का पथ प्रशस्त होगा।

मंत्री

मानव उत्थान सेवा समिति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# प्रस्तावना

धर्म तत्त्व अति गहन है। धर्म के बाहरी रूप भिन्न-भिन्न होने पर भी वह तत्त्व से एक है। उस तत्त्व के बोध को ही वास्तविक धर्म या मानव धर्म कहा जाता है। तत्त्व का बोध केवल ध्यान से ही होता है। इसलिए ध्यान धर्म की आधारशिला है। उपनिषदों में कहा है कि आत्मतत्त्व का बोध न शास्त्रों के पढ़ने से और न ही प्रवचन करने से होता है। आत्मा का बोध उसे ही होता है जिसे आत्मा स्वयं वर लेती है अर्थात् जो आत्मा का आत्मा से ध्यान करता है वही आत्मज्ञान को प्राप्त करता है।

मानव धर्म एक होते हुए भी अनेक शाखाओं में समय की धारा के साथ प्रस्फुटित होता रहता है, क्योंकि उसके नामकरण किसी महापुरुष के नाम के साथ जोड़ दिए जाते हैं। बुद्ध एक ध्यानी संत थे। वे जीवन पर्यन्त जिज्ञासुओं को ध्यान की दीक्षा देते रहे, जिससे बोधि तत्त्व की प्राप्ति हो सकती है। लेकिन फिर भी उनके नाम पर जो धर्म चला वह बुद्ध धर्म कहलाने लगा। महावीर तीर्थंकर ने ध्यान के द्वारा ही अपनी आत्मा की सारी शक्तियों, अर्हताओं और क्षमताओं का विकास किया और केवल-ज्ञानी हो गए। निरंतर साधना और ध्यान के द्वारा केवली-पद को प्राप्त हो गए। उनके नाम पर जो धर्म चला उसे जैन धर्म कहने लगे। ऐसे ही ईसा मसीह ने ध्यान साधना के द्वारा जिस ईश्वर-तत्त्व को प्राप्त किया उससे वे महान हो गए लेकिन उनके नाम पर उनके शिष्यों ने एक नया धर्म चलाया जिसे ईसाई धर्म कहते हैं। वैदिक धर्म की धारा को भी अनेक ऋषियों ने और भक्तों ने अपनी ध्यान साधना से सींचा।

आज भले ही भिन्न-भिन्न धर्मों के अनुयायी आपस में लड रहे हों, घृणा की दीवारें खड़ी कर रहे हों या मनगढ़ंत साधनाओं में लगे हुए हों, परंतु यदि हम धर्मों के उद्गम को देखते हैं और उनका तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो पता चलता है कि सभी धर्मों के द्वारा प्रतिपादित ध्यान पद्धति एक सी ही है। यही कारण है कि जब युधिष्ठर से यक्ष ने प्रश्न किया कि—'कः पंथाः' वास्तविक पंथ क्या है अर्थात् मार्ग क्या है? क्योंकि भिन्न-भिन्न श्रुतियों में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



भिन्न-भिन्न मत प्रतिपादित किए गए हैं। आचार्यों की विचारधाराएं भी भिन्न-भिन्न हैं। युधिष्ठर ने अपने अनुभव के आधार पर बड़ा सारगर्भित उत्तर दिया—'महाजनो येन गताः सः पंथाः'। हमें सोचना चाहिए कि जिन महापुरुषों की आज हम पूजा कर रहे हैं, स्वयं उन्होंने अपने जीवन काल में ध्यान के किस मार्ग को अपनाया। यदि हम भी उसी को अपनाएं तो उस परम उपलब्धि को प्राप्त कर सकते हैं।

इस संसार में दो ही तत्त्व हैं—चेतन और जड़, परा और अपरा। अपरा को जानने का माध्यम है विज्ञान और परा को जानने का माध्यम है धर्म। भौतिक विज्ञान अपरा के धर्म अर्थात् उसके गुण और स्वभाव का अध्ययन करता है और धर्म परा का विज्ञान है जो चेतना के स्वभाव और गुण का विश्लेषण करता है। धर्म का आधार है अध्यात्म, अध्यात्म का आधार है ध्यान और ध्यान का आधार है अनुभूति। धर्म केवल-मात्र एक विचारधारा नहीं है, कोरा अंधविश्वास नहीं है या केवल कुछ मान्यताएं, कर्मकाण्ड, बाहरी पूजा पद्धति या रीति-रिवाज नहीं है, बल्कि वह चेतना का विस्फोट है जो ध्यान की शक्ति के द्वारा होता है।

धर्म व्यक्ति में मूल परिवर्तन लाने के लिए अपनाया जाता है। मनु महाराज ने धर्म के दस लक्षण बताये हैं। जो धर्म को धारण करे और उसमें वे लक्षण प्रगट न हों तो कहीं गड़बड़ है। प्रकृतिजन्य व्यक्ति अच्छाई और बुराई दोनों ही लिए हुए है। गुण और दोष से ही यह संसार बना है लेकिन धर्म एक प्रयास है, एक साधना है व्यक्ति के रूपांतरण का। धर्म नैतिक मूल्यों और मर्यादाओं का आधार है। धर्म व्यक्ति को जैसा वह है उसे वैसा ही नहीं देखना चाहता बल्कि उसे श्रेष्ठ मानव बनाना चाहता है। उसे उसी मार्ग पर चलाना चाहता है जिस पर बुद्ध और गुरु नानक चले और पूजनीय हो गए, जिस पर राम और कृष्ण चले और महापुरुष हो गए।

धर्म व्यक्ति को आश्वासन देता है कि ऐ मानव ! तेरी आत्मा में भी वह क्षमता है जो महापुरुषों की आत्मा में थी। तू भी ध्यान के द्वारा उस सुषुप्त शक्ति को जागृत कर सकता है, बोधि तत्त्व को प्राप्त कर सकता है। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो चैतन्य का ज्ञान प्राप्त कर सकता है, ध्यान कर सकता है। यद्यपि मनुष्य में अनेक विशेषताएं हैं लेकिन उन सबसे मुख्य विशेषता यह है कि वह अपने आप को जान सकता है, समाधि को उपलब्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



हो सकता है जिसमें ध्यान, ध्येय, ध्याता एक हो जाते हैं और जीव को अपने सहज स्वरूप का बोध हो जाता है। यही है परम उपलब्धि, यही है परम कल्याण और यही है परम ज्ञान एवं परम आनंद।

मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारे का महत्त्व है। ये प्रतीक हैं, पूजा स्थल हैं उस महान शक्ति के। ये जनाते हैं कि व्यक्ति स्वयं उस परमसत्ता का, ईश्वर या अल्लाह का जीता-जागता मंदिर है और जो इस मंदिर में प्रार्थना करना सीख लेता है, नमाज पढ़ना सीख लेता है या ध्यान करना सीख लेता है वह उस परमसत्ता के साथ विलीन होकर एकीभाव को प्राप्त कर लेता है जिसे मोक्ष या निजात कहा जाता है। सभी महापुरुषों ने उस चेतन तत्त्व को खोजने की, जानने की और प्राप्त करने की साधना अपने भीतर ही बताई है। इसलिए ध्यान का मार्ग सभी महापुरुषों का मार्ग है। ध्यान ही वह बिन्दु है जहां सभी धर्म समाहित हो जाते हैं। ध्यान के महत्त्व को समझे बिना और ध्यान किए बिना कोई भी व्यक्ति धार्मिक या अध्यात्मवादी नहीं हो सकता। हम भले ही जीवन भर बाहर से धर्म को मानते रहें, कर्मकाण्ड करते रहें और धर्म की पोशाक पहनते रहें लेकिन हमारे चित्त का रूपांतरण नहीं होगा, जब तक कि हम ध्यान की प्रक्रिया में से न गुजरें। इसलिए ध्यान ही धर्म की जननी है।

ध्येय, ध्यान, ध्याता पुस्तक मुख्य रूप से उस ध्यान की धारा का प्रतिपादन करती है जो सभी धर्मपरंपराओं को मान्य है और जिसकी पुष्टि सभी महापुरुषों ने की है। इस पुस्तक के तैयार करने में मैं उन सभी आचार्यों, संतों और लेखकों के प्रति अनुगृहीत हूं जिन्होंने सविस्तार बुद्ध धर्म और जैन परंपराओं में ध्यान के बारे में लिखा है।

श्री सी.बी. लाल, राजेन्द्र थापा एवं प्रकाशन विभाग के सभी बंधुओं के विशेष सहयोग से ही इस पुस्तक का पाठकगण के लिए निकालना सम्भव हो सका।

श्री सतपाल जी महाराज जो ध्यान विज्ञानी हैं, की प्रेरणा से और उनके द्वारा प्रदत्त सूझ-बूझ, इनसाइट (insight) से ही यह पुस्तक आपके हाथों में है। मुझे आशा है कि यह पुस्तक जिज्ञासु साधकों के लिए एक वरदान होगी।

मानव धर्म सम्मेलन, सी.एल. टण्डन
नवम्बर, १९८८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# विषय-सूची


| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| १. ध्याता | ११–५८ |
| २. ध्यान | ५९–११४ |
| ३. ध्येय | ११५–१२४ |
| ४. ध्यान है—आलोक का दर्शन | १२७–१३८ |
| ५. ध्यान की धारा एवं धर्म परंपराएं | १३९–२१४ |


RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# ध्याता

ध्येय, ध्यान और ध्याता की त्रिपुटी सब धर्म परंपराओं में सर्वविदित है। ध्येय के बिना ध्यान संभव नहीं और ध्याता के बिना ध्येय और ध्यान का अस्तित्व नहीं। ध्याता या साधक है मानव शरीर में आई हुई जीवात्मा। जो ध्याता या साधक इस मानव-शरीर में जिसे साधना का धाम और मोक्ष का द्वार कहा गया है, ध्यान-साधना के द्वारा अपने ध्येय को प्राप्त नहीं कर पाता वही इस संसार से हारा हुआ जाता है। सांसारिक सफलताएं और विफलताएं क्षणिक और गौण हैं। साधक के रूप में मानव की सबसे बड़ी सफलता यही है कि वह इस जीवन में आत्मबोध को, आत्म-साक्षात्कार को प्राप्त कर सके। यही मानव जीवन का वास्तविक ध्येय है। धर्मशास्त्रों का यह मत है कि जब ईश्वर की जीव पर अहेतुकी कृपा होती है तभी उसे मानव शरीर की प्राप्ति होती है और यदि इस मानव शरीर को प्राप्त करके भी साधन, ध्यान और भक्ति के द्वारा एक साधक या ध्याता अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं करता तो उसे प्रायश्चित के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता। सद्गुरु के द्वारा आत्मतत्व को जानना, उस परम प्रकाश को, परम ज्योति को जानना एक ध्याता का ध्येय है। फिर एकाग्र चित्त होकर अपनी सुरति या अवधान को उसमें लगाना ध्यान है और ध्यान लगाने वाला ध्याता है। जब ये तीनों एक हो जाते हैं, समरस हो जाते हैं, ध्यान ध्येय ध्याता एकत्व को प्राप्त कर लेते हैं तो समाधि घटित होती है और समाधि है मानव जीवन के विकास का चरम बिन्दु। ध्याता के रूप में यह विशेषता मानव आत्मा को प्राप्त है क्योंकि मानव शरीर की संरचना ही इस प्रकार से हुई है कि इस शरीर को प्राप्त करके जीवात्मा आसानी से ध्यान में प्रवृत्त हो सकती है। और योनियों में चैतन्य का ध्यान संभव नहीं है। इसलिए ध्याता होने का गौरव और ध्यान करने की सुविधा केवल मानव को ही प्राप्त है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



## मानव शरीर की संरचना

भगवान श्री कृष्ण गीता के सातवें अध्याय में इस जगत् की रचना के हेतु अपनी दो प्रकृतियों—जड़ और चेतन का वर्णन करते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार आठ प्रकार की जड़ प्रकृति है। इससे भिन्न चेतन प्रकृति जीव-स्वरूप है, जो इस जगत् को धारण कर रही है। अतः हमारा जीवन दो सत्ताओं में चल रहा है—प्रत्यक्ष सत्ता और परोक्ष सत्ता। बाहरी सत्ता और आंतरिक सत्ता। बाहरी सत्ता पदार्थ की है। आंतरिक सत्ता चेतना की है। आंतरिक जगत् में चेतना ही चेतना है। इसे हम आनंद कहें, शक्ति कहें, ज्ञान कहें, सत्य कहें, अस्तित्व कहें, कुछ भी कहें पर केवल चेतना है। चेतना के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। बाहर का जगत नाना प्रकार का है। वहां अनेक तत्व हैं, पदार्थ हैं, द्रव्य हैं, अणु-परमाणुओं का संगठन है। एक है चेतना का जगत और दूसरा है पदार्थ का जगत। जब हम अंतर्मुखी होते हैं और चेतना के जगत में बढ़ते हैं, वहां पहुंचते हैं और उसकी अनुभूति करते हैं तो वह है हमारा अध्यात्म—चेतना में केन्द्रित होना, ध्यानस्थ होना, अपने निज स्वरूप का बोध प्राप्त करना। इसे ही आत्मज्ञान या बोधितत्व की प्राप्ति कहा गया है। चेतना से हटकर जब हम बहिर्मुखी होते हैं और पदार्थ से जुड़ते हैं तो वह है हमारा भौतिक जगत या वस्तु जगत जो इंद्रियों से ग्राह्य है।

जड़ और चेतन में अनेक संपर्क-सूत्र हैं, सूक्ष्म संधि-स्थल हैं जो जीवन के विकास में सहायक हैं। निराकार से साकार होने की प्रक्रिया चेतन और जड़ के सम्मिश्रण का ही परिणाम है। यह कैसे हुआ, कब हुआ और क्यों हुआ इस रहस्य का उद्घाटन न दार्शनिक करते हैं और न भौतिकशास्त्री जानते हैं। महात्मा बुद्ध से जब इस तरह के प्रश्न पूछे गए तो वे मौन रहे और यह कहकर जिज्ञासु को टाल दिया कि तथागत इन प्रश्नों के उत्तर में सदैव मौन साध लेते हैं। भौतिकशास्त्री पदार्थ के मूल कण को ढूंढ़ने में लगे हुए हैं और चेतना का स्वतंत्र अस्तित्व है या नहीं, यह पहेली अभी भी वैज्ञानिकों को विस्मय में डाले हुए है।

जीव और जड़ में अथवा चेतन और अचेतन में कुछ स्पष्ट भेद रेखाएं देखने को मिलती हैं। जीव-जन्तु प्राणी हैं, वे श्वास लेते हैं। जड़ पदार्थ बेजान हैं, उनमें श्वास नहीं होता। जीव विकसित होता है, उसमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अंतर्निहित स्वेच्छाकृत गति होती है। जड़ में स्वेच्छाकृत गति नहीं होती है। उसे जिस दिशा में भी चलाया जाए उसी दिशा में चलता रहता है। जीव अपनी दिशा को स्वयं अपनी इच्छा से बदल सकता है। जीव में संवेग होते हैं। भावनाएं होती हैं। वह क्रोध करता है, लोभ करता है, वह प्रतिक्रिया करता है। पदार्थ भावनाशून्य होता है, विचारशून्य होता है। पदार्थ में प्रतिक्रिया नहीं होती, न लोभ होता है, न मान होता है। जीव में विचार एवं भाव की स्वतंत्रता होती है। जीव के पास इंद्रियां होती हैं, चाहे एक इन्द्रिय हो या दो, या चाहे पांच या दस इंद्रियां हों। अजीव के पास इंद्रियां नहीं होतीं। जीव के पास बोध शक्ति होती है, ज्ञान शक्ति होती है। अजीव के पास ज्ञान शक्ति नहीं होती। जिसमें दूसरे प्राणी को उत्पन्न करने या जन्म देने की क्षमता होती है वह जीव है और जिसमें वह क्षमता नहीं होती वह अजीव है। जीव उपयोग कर सकता है। वह चाहे तो जान सकता है और न चाहे तो नहीं जान सकता। इसलिए जीव में कुछ नैसर्गिक क्षमताएं होती हैं। मानव श्रेष्ठतम प्राणी है क्योंकि उसमें सबसे अधिक क्षमताओं का विकास होता है।

ब्रह्माण्ड के निर्जीव तत्वों, द्रव्यों और बलों का अध्ययन करने के लिए भौतिक और रसायन विज्ञान का विकास हुआ है। जीव-जंतुओं के अध्ययन के लिए बहुत से विज्ञान एवं शास्त्र विकसित हुए हैं। वनस्पति से लेकर मानव तक नाना प्रकार के जीव-जन्तु इस ब्रह्माण्ड में पाए जाते हैं जिनमें चेतना के स्तर अलग-अलग हैं। मनुष्य और वनस्पति दोनों चेतन हैं परन्तु मनुष्य की चेतना विकसित है, उसकी इंद्रियां स्पष्ट हैं, वह संकल्पशील है। मन और बुद्धि का संस्थान बन गया है। वनस्पति में ये सब नहीं हैं यद्यपि चेतना उसमें भी विद्यमान हैं। मानव भौतिक जीवन के विकास का अंतिम बिन्दु है। वह प्रकृति देवी की सुन्दरतम कृति है और श्रेष्ठतम जीव है। प्रकृति का अंग होते हुए भी वह प्रकृति का स्वामी है, जड़-प्रकृति से भिन्न और श्रेष्ठ है। साधारणतः अन्य प्राणियों के समान एक जंतु होते हुए भी वह अन्य सभी जीव जंतुओं से अधिक विकसित है। कुछ क्षेत्रों में तो वह अन्य सभी जीवित प्राणियों से इतना भिन्न है कि उसे जंतु कहना भी यथार्थ में युक्तिसंगत नहीं होगा। मानव के जीवन और शरीर रचना के विश्लेषण से पता चलता है कि उसमें और शेष जंतु-सृष्टि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



में पाया जाने वाला अंतर शरीर रचना और उसके आंतरिक अंगों में नहीं है बल्कि आचरण तथा उपलब्धि में है। मानव बौद्धिक विवेक, चेतना और जागरूकता में बाकी जीव-जंतुओं से बिलकुल भिन्न है। मानव को शेष जीव-सृष्टि से जिस एक शब्द द्वारा आसानी से पृथक किया जा सकता है वह है संस्कृति। हर मनुष्य को दो विरासतें मिली हैं एक तो जैविकीय विरासत जो उसकी आनुवंशिक (जेनेटिक) विरासत होती है, जो उसे माता-पिता के रज और वीर्य के सजीव कीटाणुओं से प्राप्त होती है, जो उसके स्थूल शरीर के निर्माण में सहयोगी होती है और दूसरी विरासत है संस्कृति, जो पीढ़ी दर पीढ़ी एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में सीखने सिखाने के द्वारा संप्रेषित की जाती है। यह मानव के अंतःकरण के संस्कारों को, भावनाओं को, विचारों और आदर्शों को प्रभावित करती है एवं उसके मानस जगत में निहित होती है।

मानव क्योंकि श्रेष्ठतम प्राणी है, इसलिए इसके भिन्न-भिन्न पहलुओं के गहनतम अध्ययन के लिए अनेक शास्त्रों का विकास हुआ है। मानव के विकास का इतिहास एक रोचक इतिहास है। मानव के स्थूल शरीर की संरचना के अध्ययन से लेकर उसके व्यक्तित्व की सूक्ष्म से सूक्ष्म परतों के अध्ययन के लिए अनेक शास्त्रों का विकास हुआ है। भौतिकशास्त्री और चिकित्साशास्त्रियों ने मानव के स्थूल शरीर, उसके आंतरिक और बाहरी अंगों एवं भिन्न-भिन्न तंत्रों का जो शरीर में कार्यरत हैं, अध्ययन बड़ी बारीकी से किया है। मनोवैज्ञानिकों ने मन और चित्त के अध्ययन में काफी नई खोजें की हैं। अध्यात्मवादियों ने तो मानव को एक चैतन्य प्राणी माना है जो स्थूल शरीर के अतिरिक्त मन, चित्त, सूक्ष्म शरीर, अति सूक्ष्म शरीर और आत्मतत्त्व के सम्मिश्रण से बना है।

अध्यात्मवादी सभी दर्शन आत्मा या चेतना को मूल तत्व मानते हैं। केन्द्र में एक चेतन तत्व है जिसे हम मूल आत्मा कहते हैं, यह कई कोषों से या वलयों से घिरा हुआ है। यह तीन प्रकार के शरीरों से घिरा हुआ है—कारण शरीर या कर्म शरीर, सूक्ष्म शरीर या तेजस् शरीर और स्थूल शरीर। मूलतः आत्मा आनंदमय, ज्ञानमय और शक्तिमय होने पर भी इन आवरणों से ढक गई है और उसकी चेतनता मन और बुद्धि के सूक्ष्म परमाणुओं के साथ मिलकर बहिर्मुखी हो चुकी है। इसलिए अपने में स्थित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



न होकर वह इनके वशीभूत हुई सदैव बाहर ही प्रवृत्ति करती रहती है। यद्यपि आत्मा इस शरीर का राजा है किन्तु निज शक्ति और निज स्वरूप के जाने बिना वह अज्ञानवश मन, बुद्धि और इन्द्रियों के अधीन होकर अपनी स्वतंत्रता, आनंद, शक्ति, ज्ञान और मुक्तता खोए हुए है, क्योंकि कर्म-शरीर और सूक्ष्म-शरीर उसकी शक्ति, ज्ञान और आनंद को आवृत्त और अवरुद्ध करते हैं।

मानव अनेक शक्तियों, संभावनाओं को अपने अंदर समाहित किए हुए है। यूनानी दार्शनिक ने ठीक ही कहा था कि मानव ही मानव की अध्ययन वस्तु है। जो मानव में है वही बाहर है और जो बाहर है वह मानव में ही है। मानव कैपसूल रूप में ब्रह्माण्ड ही है इसलिए मानव ज्ञाता भी है, ज्ञेय भी है, सब्जेक्ट भी है और ऑबजेक्ट भी है। ध्येय भी है और ध्याता भी है। पंच तत्वों के स्थूल शरीर से लेकर सूक्ष्म प्रकृति एवं तन्मात्राओं का योग मानव में ही है। चतुष्ट अंतःकरण के उपकरण मानव में ही विकसित हैं। चैतन्य परमसत्ता मानव के द्वारा ही अभिव्यक्त होती है। अनंत शक्ति, अनंत ज्ञान और अनंत आनंद का स्रोत मानव में ही है। मानसिक पीड़ा, दुख, क्लेश और अज्ञान से भरा हुआ जीवन मानव ही जीता है। आधि, व्याधि और उपाधि से ग्रसित मानव ही है। मानव निर्जीव पदार्थ से लेकर चित्त की सभी स्थितियों एवं स्तरों से गुजरता हुआ शुद्ध चैतन्य स्वरूप को भी प्राप्त कर सकता है और ये सारी स्थितियां एवं स्तर इसी में घटित होते हैं इसलिए अद्भुत है मानव शरीर की संरचना एवं मानव प्राणी।

मानव शरीर है सम्मिश्रण—आत्मा, सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर का। स्थूल शरीर माध्यम है अभिव्यक्ति का। सूक्ष्म शरीर वह है जिसमें भावनाओं, वासनाओं और क्षमताओं का संग्रह है और आत्मा है मूल शक्तियों का स्रोत।

## स्थूल शरीर

स्थूल शरीर स्थूल तत्वों से बना हुआ है। यह स्थूल पुद्गलों से, अणु-परमाणुओं से रचित है। आयुर्वेद के महर्षि चरक की परिभाषा में 'सप्तधातुमय शरीरम्' हमारा शरीर सात धातुओं से बना है। आज का विज्ञान कहता है कि सोलह तत्वों से शरीर बना है। साधारणतः शरीर,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



मस्तिष्क पांच ज्ञान इंद्रियों और पांच कर्म इंद्रियों का समूह है। यह चर्म, मांस, हाड़. रक्त, मज्जा इत्यादि का समूह है। हमारा यह स्थूल शरीर अनंत कोशिकाओं से निर्मित है। कोशिकाएं सूक्ष्म हैं और हर सूक्ष्म कोशिका एक विद्युत गृह एवं कारखाना है और अपने में जीवन को लिए हुए है। ये कोशिकाएं स्थूल शरीर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाग हैं जिन्हें भौतिकशास्त्री और चिकित्साशास्त्री अध्ययन करते हैं। ये कोशिकाएं अनंत हैं।

हमारे शरीर के तीन भाग हैं—ऊपरी भाग, मध्य भाग और निचला भाग। ऊपरी भाग को मस्तिष्क कहते हैं। यह शरीर का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। मस्तिष्क के तीन भाग हैं—बृहद् मस्तिष्क, मध्य मस्तिष्क और लघु मस्तिष्क। इसकी रचना बहुत जटिल है। यह अरबों खरबों प्रकोष्ठकों से बना हुआ है। इसकी यंत्र प्रणाली बड़ी जटिल है और अभी तक इसकी पूरी जानकारी प्राप्त नहीं हुई है। मस्तिष्क में दो प्रकार के द्रव्य और वर्ण मिलते हैं—एक है हलका सा भूरे रंग का द्रव्य जो कि बुद्धि का है और ग्रे मैटर कहलाता है। दूसरा है श्वेत रंग का द्रव्य जो क्रिया का सूचक है। इससे क्रिया का नियंत्रण होता है और भूरे द्रव्य से बुद्धि का नियंत्रण होता है। मस्तिष्क समूचे शरीर का नियामक है और नियंत्रण करता है। इस मस्तिष्क में अनेक केन्द्र हैं। क्रोध का केन्द्र मस्तिष्क में है, लोभ का केन्द्र मस्तिष्क में है, भय, घृणा, उत्तेजना, वासना इत्यादि इन सारी बातों के केन्द्र इस मस्तिष्क में हैं। हाइपोथैलमस मस्तिष्क का एक हिस्सा है, वह तापमान को नियंत्रित करता है, उसमें नींद का केन्द्र है, भूख का केन्द्र है। मस्तिष्क ज्ञान केन्द्र है और वह चैतन्य का सबसे बड़ा केन्द्र है। साधारणतः व्यक्ति मस्तिष्क के केवल कुछ ऊपरी भाग का ही प्रयोग कर पाता है। माइन्ड या मस्तिष्क की मनोवैज्ञानिकों ने एक आइसबर्ग से तुलना की है जिसका केवल कुछ ऊपरी भाग पानी से बाहर निकला होता है और बाकी पानी में छिपा होता है। हम केवल दस प्रतिशत मस्तिष्कीय शक्ति का प्रयोग करते हैं। हमारा अधिकांश भाग अचेतन या प्रयोग के बिना ही रह जाता है जिससे व्यक्ति अपने आप को सीमित शक्तियों का ही स्वामी बना पाता है। यदि व्यक्ति अपने मस्तिष्क की पूर्ण शक्ति और ज्ञान केन्द्रों को जागृत कर ले और मस्तिष्क की अनेक परतों का उद्घाटन कर सके तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



वह अपने ज्ञान और शक्ति को असीम कर सकता है। मस्तिष्क का दायां भाग अध्यात्म का भाग है और बायां भाग लौकिक शिक्षा का भाग है। गणित, तर्कशास्त्र आदि शिक्षाओं का केन्द्र बायां भाग है। मस्तिष्क का पिछला भाग लघु मस्तिष्क अध्यात्म का भाग है और उसी से जुड़ा है सुषुम्ना शीर्ष। यह सारा अलौकिक भाग है। एक लौकिकता का हिस्सा है और दूसरा है अलौकिकता का हिस्सा। अलौकिकता का हिस्सा सोया रहता है। समाज की सारी शिक्षा मस्तिष्क के लौकिक हिस्से को विकसित करने के लिए तो साधनाशील और प्रयत्नशील है लेकिन अलौकिक हिस्से पर कुछ श्रम नहीं होता, कुछ साधना नहीं होती, कुछ ध्यान नहीं दिया जाता, जिससे वह जागृत नहीं हो पाता।

वैज्ञानिक खोजों ने मानव जाति पर बहुत बड़ा उपकार किया है और यह संभावना व्यक्त की है कि यदि आदमी पूरे मस्तिष्क को विकसित कर ले तो वह सर्वज्ञ बन सकता है, त्रिकालदर्शी बन सकता है, वह अतीत और भविष्य को जान सकता है, स्थूल और सूक्ष्म को जान सकता है।

मस्तिष्क का पिछला भाग पृष्ठ रज्जु से या रीढ़ की हड्डी से जुड़ा हुआ है। यह पृष्ठ-रज्जु शरीर के निचले भाग तक जाता है और शरीर का आधार है। यदि रीढ़ की हड्डी स्वस्थ है तो स्वास्थ्य में कोई गड़बड़ नहीं होगी। आज चिकित्सा जगत में माना जाता है कि रीढ़ की विकृति के कारण ही बीमारी होती है। रीढ़ की चिकित्सा कर दो, बीमारी ठीक हो जाएगी। यह भी चिकित्सा की एक पद्धति है। एक्यूपंक्चर चिकित्सा पद्धति इसी पर निर्भर है। रीढ़ की हड्डी हमारे शरीर का मूल केन्द्र है, इसी से सारी संवेदनाएं मस्तिष्क से शुरू होकर स्नायु तक पहुंचती हैं। चोट घुटने में लगती है, लेकिन इलाज रीढ़ की हड्डी के मर्म-स्थान को दबाने से किया जाता है। सारा शरीर इस रीढ़ की हड्डी पर खड़ा है। इसे बैक-बोन भी कहते हैं। इसमें अनेक मर्म-स्थान हैं। आयुर्वेदिक मत के अनुसार ७० हैं और एक्यूपंक्चर प्रणाली के अनुसार लगभग ७०० हैं। पृष्ठरज्जु की संरचना ३६ हड्डियों से हुई है। उसमें जो पोला भाग है वह है सुषुम्ना कक्ष, उसमें प्राण तरंगें आती और जाती हैं। बायां मार्ग पृष्ठ रज्जु के बाहर नीचे से प्रारंभ होता है और ऊपर बाएं नथुने में आकर समाप्त हो जाता है। यह इड़ा का मार्ग है। दाईं तरफ का मार्ग पिंगला का है। मध्य का मार्ग सुषुम्ना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



का है। यह पृष्ठरज्जु के नीचे से प्रारंभ होता है और मस्तिष्क में जाकर समाप्त होता है। ये तीन मार्ग हैं। दो मार्ग नथुनों में जाते हैं और एक मार्ग मस्तिष्क में।

स्थूल शरीर में आयात और निर्यात के अनेक तंत्र और विधान हैं जो कि इसको सक्रिय रखे हुए हैं, जैसे स्थूल अस्थि-पिंजर, स्नायु-तंत्र, प्राण-अपान-तंत्र, रक्तसंचार तंत्र, मल-विसर्जन तंत्र, प्रजनन-तंत्र, नाड़ी-तंत्र और ग्रंथि-तंत्र। यद्यपि ये सभी तंत्र बड़े महत्वपूर्ण हैं लेकिन इनमें से नाड़ी-तंत्र और ग्रंथि-तंत्र दो महत्वपूर्ण तंत्र हैं जिन्हें न्यूरो एंडोक्रीन सिस्टम कहा जाता है। हमारे बृहद मस्तिष्क से बहुत सारे तार या सूत्र निकलते हैं जो ज्ञानवाहक हैं और गतिवाहक भी। ये बृहद मस्तिष्क से लघु मस्तिष्क में होते हुए सुषुम्ना में से गुजरते हैं और पृष्ठ रज्जु के मध्य में जाते हैं। फिर समूचे शरीर में फैल जाते हैं जिससे समूचे शरीर में क्रिया होती है। नाड़ियां दो प्रकार की हैं एक जो बाहर से मस्तिष्क तक संदेश लेकर जाती हैं और दूसरी जो मस्तिष्क से आदेश लेकर बाहर कर्म इंद्रियों को देती हैं।

ग्रंथियां भी दो प्रकार की हैं—एक हैं अंतःस्रावी ग्रंथियां दूसरी हैं बहिस्रावी ग्रंथियां। लीवर, पेनक्रीज आदि बहिस्रावी ग्रंथियां हैं। यह कुछ जूसिस या तरल पदार्थ छोड़ती रहती हैं जो शरीर में रासायनिक कार्य करती हैं जो विभिन्न प्रकार के एन्जाइम्स कहलाते हैं। इनमें फीडबैक व्यवस्था भी होती है। कमाल है इस कुदरती मशीन का, इसमें सभी प्रकार के इनबिल्ट चैक सिस्टम भी हैं। पिच्यूटरी, पिनीयल, एड्रीनल, थाइमस और थायराइड इत्यादि अतंःस्रावी ग्रंथियां हैं जिनका स्राव सीधे रक्त में मिल जाता है। इन ग्रंथियों के स्राव को हारमोन्स कहते हैं। ये ग्रंथियां और इनके स्राव व्यक्ति के व्यक्तित्व को बहुत प्रभावित करते हैं। यदि ये ठीक प्रकार से काम न करें या कम या अधिक हारमोन्स छोड़ें तो व्यक्ति विकृत हो जाता है, उसके शरीर और मस्तिष्क का विकास ढंग से नहीं होता। आज इन ग्रंथियों के बारे में और उनके द्वारा छोड़े गए हारमोन्स के बारे में वैज्ञानिक और चिकित्साशास्त्री विशेष अनुसंधान कर रहे हैं। पिच्यूटरी ग्रंथि को मास्टर ग्रंथि कहा जाता है जो मस्तिष्क के पिछले भाग में है और बाकी सभी ग्रंथियों को नियंत्रित करता है। यहां पर दो ग्रंथियां सटी हुई हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



जो आनंद और विषाद, सुख और दुख के भावों को प्रगट करती हैं।

शरीर का तीसरा महत्वपूर्ण तंत्र है विद्युत तंत्र। हमारे शरीर के प्रत्येक अवयव को काम करने के लिए बिजली की जरूरत होती है। हर कोशिका को बिजली की जरूरत होती है। कोई भी सजीव कोशिका बिजली के बिना अपना काम नहीं चला सकती। सारा शरीर संचालित हो रहा है बिजली के द्वारा। हमारे शरीर में दो प्रकार की बिजली हैं एक घर्षण विद्युत जो अवयवों के घर्षण से पैदा होती है और एक प्रवाहमान विद्युत। पुराने आचार्यों ने जिसे प्राणधारा कहा उसे ही भौतिकशास्त्री विद्युतधारा कहते हैं।

प्राणधारा के कारण ही मानव, प्राणी कहलाता है। प्राणधारा है शक्ति का, विद्युत का प्रवाह। यह प्रवाह हमारे समूचे शरीर में प्रवाहित हो रहा है। इसके द्वारा ही हमारा जीवन संचालित हो रहा है। प्राणधारा एक ही है किन्तु वह विभिन्न कार्यों को संपादित करती है इसलिए अनेक हो जाती है। प्राणों के आधार पर प्राणी जीता है। जब प्राणों की दीप-शिखा बुझ जाती है तब प्राणी मृत्यु को प्राप्त करता है। प्राण और जीवन इकट्ठे चलते हैं। जब तक शरीर को प्राण की ऊर्जा मिलती है तब तक शरीर सक्रिय होता है और जब प्राण की शक्ति सिमट जाती है तब आदमी को लकवे का शिकार होना पड़ता है। प्राण और श्वास का गहरा संबंध है। श्वास के बिना प्राण काम नहीं करता। प्राणी के लिए श्वास अनिवार्य है। शरीरशास्त्रियों का मत है कि श्वास के साथ यदि प्राणवायु, (आक्सीजन) नहीं जाता तो कुछ भी काम नहीं होता, फेफड़े रक्त की शुद्धि इसी प्राणवायु के आधार पर करते हैं। कोशिकाएं ऊर्जा पैदा करती हैं, विद्युत पैदा करती हैं वह भी आक्सीजन के आधार पर होता है। मस्तिष्क की सक्रियता भी प्राणवायु के आधार पर होती है। यदि कुछ क्षणों के लिए भी आक्सीजन न मिले तो आदमी मूर्च्छित हो जाता है। प्राण को काम करने के लिए आक्सीजन चाहिए, वह प्राप्त होता है श्वास से। श्वास के साथ-साथ प्राणवायु भीतर जाता है। प्राणवायु के अभाव में प्राणशक्ति काम नहीं कर सकती। ईंधन के बिना मशीन नहीं चलती और श्वास समूचे शरीर को संचालित करने के लिए ईंधन देता है। इसलिए हमारे जीवन का मूल है श्वास, प्राणवायु। प्राणवायु और प्राणधारा दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



प्राण की धारा को ऊर्जा की धारा या बायोइलेक्ट्रीसिटी, जैविक विद्युत की धारा कहा जाता है। यदि शरीर के सूक्ष्म फोटो को देखें तो पता चलेगा कि पूरा शरीर कुछ रश्मियों से बंधा हुआ है। ये ऐसी रश्मियां हैं जो पैर से लेकर सिर तक सीधी चली गई हैं। ये सारी प्राण की धाराएं हैं। यदि यह प्राण की धारा सूख जाय तो शरीर के सारे कार्यकलाप बंद हो जाएंगे इसलिए प्राण है आधारभूत शक्ति। इस शरीर में सैकड़ों विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र हैं, जो प्राणों से संचालित होते हैं।

मानव शरीर का यंत्र इतना बड़ा है और अद्भुत है कि विश्व की बड़ी से बड़ी फैक्ट्री इसके सामने छोटी पड़ जाती है। इस छोटे से शरीर में अनेक मशीनों का निर्माण हुआ है। अनेक तंत्रों का विधान है। यदि कोई मनुष्य निर्माण करने बैठे तो इतने विकसित विज्ञान के युग में भी वह सफल नहीं हो सकेगा। मानव के मस्तिष्क से बढ़िया कोई कंप्यूटर आविष्कार नहीं किया जा सकता है। छोटे से इस मस्तिष्क में अरबों खरबों अत्यंत सूक्ष्म कोष्ठक हैं। किसी भी आदमी में यह योग्यता या क्षमता नहीं है कि वह इतनी सूक्ष्म मशीनरी का निर्माण कर सके।

हमारे शरीर में अनेक ग्रंथियां हैं। योग के प्राचीन आचार्यों ने उन्हें चक्र कहा है। आज के शरीरशास्त्री उन्हें ग्लैण्ड्स कहते हैं। जापान में प्रचलित बौद्ध पद्धति जूडो में उन्हें क्यूसोस कहते हैं। यह एक आश्चर्यकारी बात है कि योग के आचार्यों ने चक्रों के जो स्थान और आकार माने हैं, आज के शरीरशास्त्रियों ने ग्लैण्ड्स के जो स्थान और आकार माने हैं और जूडो पद्धति में क्यूसोस के जो स्थान और आकार माने हैं, ये तीनों लगभग मिलते जुलते हैं। उनमें विशेष अंतर नहीं है और तीनों की धारणा समान है। हमारे शरीर में अनेक चैतन्य केन्द्र या ज्ञान केन्द्र हैं। जहां-जहां चैतन्य केन्द्र होता है वहां स्नायु का बहुत बड़ा जाल सा बन जाता है। उस स्नायु जाल को हम ग्रंथि कहें या चक्र कहें कोई भी नाम दे सकते हैं। यह चैतन्य केन्द्र स्थूल शरीर में नहीं हैं। स्थूल शरीर में इनकी अभिव्यक्ति मात्र होती है। किन्तु ये केन्द्र सूक्ष्म शरीर में बहुत गहरे हैं, इन्हें जागृत करने पर, सक्रिय करने पर शक्ति का स्रोत फूट पड़ता है और शक्ति का विशेष अनुभव होने लगता है। शरीर के ऊपरी भाग में या ऊर्ध्वलोक में, मध्य भाग में या मध्य लोक में, निचले भाग में या अधोलोक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



में, चेतना के मुख्य केन्द्र हैं जिन्हें चक्र या ग्रंथि कहा जाता है। योग की भाषा में हम सुनते हैं कि शरीर में छः चक्र हैं, सात-आठ ग्रंथियां हैं। हृदयकमल, नाभिकमल आदि कमल हैं और शरीरशास्त्र की दृष्टि से भी कुछ ग्रंथियां प्रतिपादित हैं। डाक्टरों ने कहा है कि हमने सारे शरीर को चीर फाड़कर देख डाला, उसके अणु-अणु का विश्लेषण कर डाला परंतु कहीं भी न वह चक्र मिले और न कमल मिले। हां, डाक्टरों को कुछ भी नहीं मिला। आज्ञा चक्र हो या न हो, विशुद्धि चक्र हो या न हो किन्तु जो पीनियल या दूसरी ग्रंथियां हैं जिन्हें आज भौतिकशास्त्री मानते हैं यदि हम तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो योगशास्त्र और शरीरशास्त्र के प्रतिपादन में चक्रों और ग्रंथियों में कोई विशेष भेद नहीं दीखता। सारे केन्द्र स्थूल रूप में दो भागों में विभक्त हैं—ज्ञान केन्द्र और वासना केन्द्र। ज्ञान केन्द्र ऊपर मस्तिष्क में है, वासना केन्द्र नीचे। ज्ञान का केन्द्र है मस्तिष्क। वह ज्ञान और क्रिया दोनों का नियमन करता है। पृष्ठरज्जु भी उसका सहायक है। शरीरशास्त्री इसका विशेष अध्ययन करते हैं और डाक्टर इन्हें सूक्ष्मता से जानते हैं। मस्तिष्क के भौतिक पक्ष के अतिरिक्त मस्तिष्क के केन्द्रों का भाव पक्ष और ज्ञान और क्रिया पक्ष भी है जिसका अध्ययन अब डाक्टर करने लगे हैं। हमारी चेतना का प्रकाश इस शरीर में प्रगट होता है। शरीर के बिना वह प्रगट नहीं हो सकता। चैतन्य के योग से स्थूल शरीर आत्मा कहलाता है। शरीर की शक्ति और आत्मा की शक्ति दोनों का गाढ़ संबंध है। शरीर की शक्ति के बिना आत्मा की शक्ति कार्यकर नहीं होती और आत्मा की शक्ति के बिना शरीर का यह यंत्र संचालित नहीं होता। यदि दीप का पात्र नहीं है तो प्रकाश नहीं होगा, बल्ब नहीं है केवल करंट है तो प्रकाश नहीं होगा। प्रकाश को एक माध्यम चाहिए अभिव्यक्त होने के लिए और चैतन्य का प्रकाश भी शरीर के बिना अभिव्यक्त नहीं हो सकता। आंख का गोलक ठीक नहीं है तो ठीक दिखाई नहीं देता लेकिन जो देखता है वह आंख नहीं है। आंख केवल अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र है। शरीर नहीं होता, इंद्रियां नहीं होतीं तो यह जगत् कुछ भी नहीं होता। इसलिए शरीर का बहुत महत्व है। नश्वर होते हुए भी वह आत्मा की शक्तियों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। हमारे शरीर में जितने शक्ति केन्द्र हैं, जब वे पूरे शक्तिशाली बन जाते हैं तभी किसी विशेष

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



शक्ति का अवतरण हो सकता है।

स्थूल शरीर प्रथम द्वार है। यह दर्पण है, माध्यम है अंतरभावों को अभिव्यक्त करने का। यदि मानव-आकृति न हो, स्थूल-शरीर न हो तो शायद हम अंतरभावों को पहचान ही न सकें। क्रोध और क्षमा दोनों हमारे सामने प्रगट नहीं होते, क्योंकि वे शरीर के धर्म नहीं हैं। वे केवल शरीर पर प्रगट होते हैं पर उनका जन्म एवं प्रवाह अंतरजगत् में होता है। अतिसूक्ष्म शरीर में केवल स्पंदन हैं, तरंगें हैं। वे कर्म विपाक से मिलकर अच्छे या बुरे भाव बन जाते हैं और भाव जब दृढ़ होते हैं तो विचार बन जाते हैं और मस्तिष्क के द्वारा शरीर के नाड़ी तंत्र और ग्रंथि तंत्र को प्रभावित करते हैं जो उन्हें क्रिया में परिणित कर देते हैं। भौतिकशास्त्री इन अच्छे और बुरे भावों के लिए बाहरी परिस्थितियों को मूल कारण मानते हैं लेकिन अध्यात्मवादियों का यह मत है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार व्यक्ति के अंतरजगत में, उसके सूक्ष्म शरीर में अंतरनिहित हैं। बाहरी स्थितियां केवल निमित्त बन सकती हैं लेकिन उनका मूल कारण अंतःकरण में ही है। इसलिए केवल बाहरी स्थितियों को ही दोषी नहीं ठहराया जा सकता बल्कि अंतर का प्रवाह, संवेदना जो सूक्ष्म शरीर में अंतरनिहित है, वह भी व्यक्ति को प्रभावित करती हैं। इसलिए जबकि भौतिकशास्त्री बाहर को सुधारने में लगे हुए हैं, अध्यात्मवादी भीतर की सफाई पर जोर देते हैं। बाहर परिवर्तनशील है। स्थितियों का बदलना स्वाभाविक है लेकिन भीतर यदि ज्ञान का दीपक जला लिया जाए, आत्मा की ज्योति जग जाए और व्यक्ति अपने में स्थित हो जाए तो भले ही व्यक्ति काम और क्रोध से मुक्त हो सके, माया से मुक्त हो सके, अन्यथा इसके अतिरिक्त और कोई भी उपाय पूर्णरूपेण कारगर नहीं हो सकता।

स्थूल शरीर के अंदर है सूक्ष्म शरीर जिसमें अनंत शक्तियों के केन्द्र हैं। हमारे मस्तिष्क में सहस्रार केन्द्र है। भृकुटि के मध्य में आज्ञाचक्र है। तीसरा चैतन्य केन्द्र कंठ में है जिसे योग की भाषा में विशुद्धि चक्र कहते हैं। एक बहुत बड़ा चैतन्य केन्द्र है हृदय जिसे अनाहत चक्र कहते हैं। मस्तिष्क का स्थान पहला है और इसका स्थान दूसरा है। यदि ज्ञान पक्ष मस्तिष्क है तो भाव पक्ष हृदय है। एक चैतन्य केन्द्र है नाभि का केन्द्र। यह अग्नि का स्थान है, वहां बहुत ऊष्मा है, तेजस्विता है। एक और चैतन्य केन्द्र है जिसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



मूलाधार कहते हैं और जो पृष्ठरज्जु के नीचे का स्थान है। यही विद्युत का केन्द्र है। हमारी समस्त शारीरिक ऊर्जा का यह संचय गृह है, यहां से ऊर्जा का प्रसारण होता है, यहीं विद्युत का उत्पादन होता है, यहीं से उसका प्रसारण होता है और यहीं कुण्डलिनी शक्ति का स्थान है। मूलाधार और नाभि के चक्रों के बीच एक स्वाधिष्ठान चक्र है। हमारे शरीर में ऐसे चैतन्य केन्द्र हैं कि जिनके जाग जाने पर व्यक्ति सदा सुख की स्थिति में रहता है। विज्ञान की भाषा में दो लघु-ग्रंथियां हैं मस्तिष्क के पिछले भाग में एक सुख की और एक दुःख की। दोनों मिली हुई हैं। एक ग्रंथि जागृत हो तो व्यक्ति बहुत सुख में रहता है और दूसरी जागृत हो तो आदमी बड़ा दुखी हो जाता है। अतः सुख का प्रगट होना, क्रोध का प्रगट होना, काम का प्रगट होना, ज्ञान का प्रगट होना, यह सारा का सारा हमारी ग्रंथियों, ज्ञान तंतुओं और शरीर तंतुओं पर आधारित है।

## सूक्ष्म शरीर

स्थूल शरीर स्थूल अणु-परमाणुओं से बना है जो दिखाई देते हैं लेकिन इसके भीतर कुछ शरीर और हैं जो सूक्ष्म और तरल पुद्गलों से बने हैं। इसलिए हम उन्हें देख नहीं सकते। वे केवल तरंगों और प्रकंपनों से बने हुए शरीर हैं। शरीरशास्त्रियों को भी पता नहीं चलता, वे भी कहते हैं कि यह सूक्ष्म शरीर है कहां? शरीर की पूरी शल्यचिकित्सा कर लेने पर भी नहीं दीखता, किन्तु जिन्होंने अंतरदृष्टि से देखा है, कार्य, कारण के संबंध से देखा, उन्होंने कहा कि शरीर के भीतर और भी शरीर हैं। स्थूल शरीर के बाद आता है तेजस् शरीर, इसे सूक्ष्म शरीर या प्राण शरीर भी कहते हैं। यह सूक्ष्म है दिखाई नहीं देता। स्थूल शरीर की सारी शक्ति, गतिशीलता, हलन-चलन, जो कुछ है वह सारा का सारा तेजस् शरीर के कारण है। यदि वह सक्रिय न हो तो शक्ति नहीं मिल सकती। तेजस् शरीर का संबंध जब टूट जाता है तब स्थूल शरीर जड़ हो जाता है। तेजस् शरीर तापमय है, विद्युतमय है। इसमें प्राण पैदा होता है। योग के आचार्य इसे प्राण-शरीर कहते हैं। पश्चिम के लोगों ने इसे ईथरिक बॉडी कहा है। इसके आगे है कर्म-शरीर या कारण-शरीर। यह सबका मूल है, जहां से शक्ति मिलती है तेजस् शरीर को और स्थूल शरीर को। सारी शक्ति का संचालन करने वाला है कारण-शरीर या कर्म-शरीर। उसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



वासना-शरीर या मानस-शरीर, एस्ट्रल बॉडी भी कहा जाता है। साधारणतः चिकित्सा-विज्ञान स्थूल शरीर की सीमा तक सीमित है। किन्तु कुछ वैज्ञानिक ऐसे भी हुए है जिन्होंने अपने अनुसंधानों के आधार पर स्थूल शरीर से आगे की बात कही है। लंदन के डाक्टर मिलर ने एक पुस्तक लिखी है—"दि ह्यूमन एनाटॉमी"—उसमें उन्होंने लिखा है कि अनेक रोगियों के परीक्षण के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि मनुष्य के इस भौतिक शरीर में एक ऐसा शरीर और है जो प्रकाश का पिण्ड है, विद्युतमय है, तेजोमय है। रूस के वैज्ञानिकों ने अनेक परीक्षणों के पश्चात् यह प्रतिपादित किया कि स्थूल शरीर में एक विद्युत शरीर भी है और यह विद्युत शरीर या प्रकाश शरीर मृत्यु के समय देखा जा सकता है। जब आदमी मरता है तो वह स्थूल शरीर को छोड़कर बाहर निकलता है। उसे बाहर निकलते देखा जा सकता है। जीवित प्राणियों में भी यह देखा जा सकता है और बडे शक्तिशाली कैमरों के द्वारा इसके फोटो भी लिए जा सकते हैं। स्थूल शरीर के भीतर पूरे आकार का एक शरीर फैला हुआ है उसे तेजस् शरीर या प्रकाश शरीर कह सकते हैं। उसके सारे परमाणु प्रकाशमय हैं। वे बहुत तरल हैं और तरंगों और प्रकंपनों के रूप में हैं। यद्यपि चर्म दृष्टि से शरीर स्थूल दिखाई देता है लेकिन यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से शरीर को देखें तो शरीर तरंगों और प्रकंपनों का एक पुंज मात्र है।

सूक्ष्म शरीर न केवल तेजस् शरीर है बल्कि यह वैक्रिय और आहारक भी है। स्थूल शरीर एक ही रूप में दीखता है किन्तु सूक्ष्म शरीर में यह शक्ति है कि वह नाना रूपों में बदल सकता है। वह छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा रूप बना सकता है। यह सूक्ष्म शरीर अनेक रूप धारण करने में सक्षम है। सूक्ष्म शरीर का दूसरा रूप है आहारक—सूक्ष्म विचारों का संवाहक शरीर। मेरे मन में विचार आया कि अमुक व्यक्ति से मिलना है और वह व्यक्ति कहीं दूर रह रहा है, उसी समय संकल्प मात्र से एक सूक्ष्म शरीर का निर्माण होता है। वह शरीर हजारों मील की दूरि तय कर व्यक्ति के पास पहुंच जाता है। उसके सामने मेरे प्रश्न रखता है, उत्तर प्राप्त करता है और पुनः मेरे शरीर में प्रविष्ट होकर समाहित हो जाता है। यह है विचारों को ले जाने वाला और लाने वाला शरीर।

इस दृश्य जगत् में चार प्रकार के द्रव्य हैं—तरल, ठोस, गैसीय और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



प्लाज्मा। आज वैज्ञानिकों ने यह प्रतिपादित किया है कि इन चार के अतिरिक्त एक और तत्व है जिसे जैव प्लाज्मा कहा जाता है। वह जैव प्लाज्मा मृत्यु के बाद भी नष्ट नहीं होता और वह विद्युत चुंबकीय क्षेत्रों में चला जाता है। तेजस् शरीर भी मृत्यु के बाद नष्ट नहीं होता। जीव अनादि काल से शरीर धारण करता आ रहा है। एक स्थूल शरीर को छोडता है और दूसरे स्थूल शरीर को धारण कर लेता है किन्तु उसके पास एक तेजस् शरीर है जो सदा उसके साथ आ रहा है। वह नहीं मरता। तेजस् शरीर से भी सूक्ष्म है कारण शरीर या कर्म शरीर। उसने जीव का साथ आज तक नहीं छोड़ा और तब तक नहीं छोडेगा जब तक जीव कर्म-बंधनों से सर्वथा मुक्त नहीं हो जाता।

स्थूल शरीर के अंतर्गत सूक्ष्म शरीरों के कोष हैं जो प्राणमय कोष, मनोमय कोष और विज्ञानमय कोष कहलाते हैं। इससे भी गहरा और अतिसूक्ष्म आनंदमय कोष है, जो शुद्ध चेतना का कोष है जिसे हम मूल आत्मा कहते हैं। स्थूल शरीर के बारे में तो वैज्ञानिकों को कोई शंका नहीं है, केवल पदार्थ है, परमाणु हैं, परमाणुओं के स्कंद हैं, यह तथ्यतः सब स्वीकार करते हैं, किन्तु इससे परे कोई स्वतंत्र चेतना नाम की सत्ता है या नहीं, आत्मा है या नहीं इसके बारे में एकमत नहीं है। आज वैज्ञानिक अनेक उपकरणों के माध्यम से उस सत्ता की खोज में लगे हुए हैं। लेकिन बाहरी साधनों के द्वारा भौतिक सत्ता को तो जाना जा सकता है आत्मिक सत्ता को नहीं।

आज के वैज्ञानिक भी स्थूल शरीर को मुख्य मानकर आत्मा की खोज में लगे हुए हैं। मरने से पूर्व शरीर को तोलते हैं। मरने के पश्चात् पुनः शरीर को तोलते हैं और फिर निष्कर्ष निकालना चाहते हैं कि दोनों शरीर के वजन में कितना अंतर आया। यदि वजन घटा है तो कोई वस्तु शरीर से बाहर निकलकर चली गई है ऐसे प्रयोग किए जा रहे हैं।

आत्मा स्वयं ज्ञाता है और ज्ञेय भी है, द्रष्टा है और दृश्य भी है। इसलिए ज्ञाता के बारे में वैज्ञानिक अभिभ्रांत हैं। आत्मा ही वह missing link (मिसिंग लिंक) या अप्राप्त कड़ी है जो बाहरी उपकरणों से पकड़ में नहीं आती, क्योंकि आत्मा का बोध या चेतना की अनुभूति पर को जानने से प्राप्त नहीं होती बल्कि स्वयं को जानने से होती है। यही कारण है कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अध्यात्मवादियों ने कहा कि आत्मा को आत्मा के द्वारा जानो, चेतना को चेतना के द्वारा जानो। To be conscious of ones own consciousness.

चेतना में अनेक शक्तियां अंतर्निहित हैं। वह ज्ञान और आनंद का असीम खजाना है। वह ध्येय भी है, ध्याता भी है और ध्यान की क्षमता भी उसी में है। वह ज्ञान का बिन्दु भी है, ज्ञेय भी है, जानने योग्य भी है और ज्ञाता भी है। दृश्य को जानने के लिए हमें चेतना को बाहर लाना पड़ता है लेकिन स्वयं को जानने के लिए हमें चेतना को अंतर्मुखी बनाना पड़ता है। यदि आत्मा का प्रकाश (सर्च लाइट) पदार्थ पर डाला जाएगा तो पदार्थ का ज्ञान होगा और यदि वही सर्च लाइट अंतर्मुखी कर दिया जाए तो वह पदार्थ के जगत् को लांघ कर अपने स्वयं के निज धाम को, निज स्वरूप को जानने की क्षमता रखती है।

एक वृत्तांत आता है कि कुछ यात्री यात्रा के लिए निकले। उन्हें एक नदी में से गुजरना था। नदी में बहाव बहुत तेज था। नदी पार करने के बाद उन्होंने सोचा कि हम अपने आप को गिन लें, कहीं कोई बह तो नहीं गया। गिनने वाला दूसरों को तो गिन लेता था लेकिन अपने को छोड़ देता था और इस तरह से लगा कि उनका एक साथी डूब गया है। इस जगत् के प्रपंच को गिनने में और जानने में व्यक्ति अपनी सत्ता और अपनी पहचान को विस्मृत कर देता है और सदैव सब कुछ होने पर भी अभाव को महसूस करता है, क्योंकि उसे अपनी आत्मा का बोध नहीं है, उसे अपने आप का बोध नहीं है। आज धार्मिक लोग भी आत्मा के प्रश्न को शास्त्रों के माध्यम से हल करना चाहते हैं, तर्क के द्वारा समाधान देना चाहते हैं। एक ओर कहा जाता है कि आत्मा तर्कातीत है, शब्दातीत और पदार्थातीत सत्य है और दूसरी ओर हम उसे तर्क के द्वारा, पदार्थ के द्वारा पाना चाहते हैं। यह कितना विरोधाभास है!

हमारे चैतन्य की तीन मुख्य क्रियाएं हैं—ज्ञान, शक्ति और आनंद। ज्ञान, चेतना का आलोक है, आनंद उसकी अनुभूति है और शक्ति उसकी मुक्तता है। सूक्ष्म-शरीर इन तीनों पर आवरण या अवरोध उत्पन्न करता है। वह आत्मा की जो अनंत चेतना है उसे आवृत्त करता है। आत्मा का जो सहज आनंद है उस पर ढक्कन डालता है। आत्मा की जो सहजशक्ति है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



उसमें अवरोध उत्पन्न करता है। शक्ति में अवरोध उत्पन्न करना, आनंद पर ढक्कन डालना और चेतना को आच्छादित करना, ये तीनों सूक्ष्म शरीर के कार्य हैं। किन्तु जब आत्मा जागृत हो जाती है, प्रबल हो जाती है तो वह इन आवरणों को सहन नहीं करती और वह सूक्ष्म शरीर का भी भेदन कर देती है। जब संस्कार क्षीण हो जाते हैं और आत्मा बलवती हो जाती है तो आत्मा का प्रकाश स्थूल शरीर के द्वारा अभिव्यक्त होने लगता है। माया के विकार सूक्ष्म शरीर में हैं, स्थूल शरीर में नहीं हैं। वासना सूक्ष्म शरीर में है, स्थूल शरीर में कोई भी वासना नहीं है। हमारे जितने विकार, जितनी वासनाएं, जितने संस्कार एवं दुर्भावनाएं हैं, वे सारी सूक्ष्म शरीर में हैं किन्तु ये सारी की सारी अभिव्यक्त होती हैं स्थूल-शरीर के द्वारा। इसलिए आत्मा और स्थूल शरीर के बीच में सूक्ष्म शरीर एक मार्ग है। इस मार्ग के साफ होने पर शक्ति, आलोक और आनंद स्थूल शरीर तक पहुंच जाते हैं और यह स्थूल-शरीर हमारे लिए भगवान का मंदिर बन जाता है। लेकिन यह केवल साधना के द्वारा ही संभव है क्योंकि सूक्ष्म शरीर ने स्थूल-शरीर को अपनी इच्छाओं, वासनाओं एवं प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त करने का माध्यम बना रखा है और सूक्ष्म-शरीर, स्थूल-शरीर का निर्माण इसीलिए करता है कि वह उसे प्रयोग कर सके, क्योंकि स्थूल शरीर के बिना सूक्ष्म-शरीर अपनी इच्छाओं और वासनाओं को पूरा नहीं कर सकता। आत्मा चाहती है कि सूक्ष्म शरीर से उसका संबंध छूट जाए। शरीर बंधन है और उसकी शक्तियों को रोके हुए है, एक पिंजड़ा बना हुआ है। पक्षी कब चाहता है कि वह पिंजड़े में रहे? आत्मा चाहती है कि शरीर छूट जाए लेकिन सूक्ष्म-शरीर मन के रूप में सदैव प्रवृत्ति चाहता है, विषयों को भोगना चाहता है। वह कब चाहता है कि आत्मा स्वतंत्र और मुक्त हो जाय? इसी मानस शरीर के कारण ही प्राणी की आत्मा सदैव जन्म-मरण के चक्कर में घूम रही है। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि:—

**ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशी।।**
**सो मायावश भयउ गुसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं।।**

परोक्ष सत्ता आत्मा की है। परोक्ष सत्ता तक पहुंचने में हमें बड़ी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



कठिनाइयां हैं, अनेक बाधाएं हैं। हमारी इंद्रियां उस अमूर्त सत्ता को नहीं देख पातीं। वह स्वयं बाह्य जगत् में अपने को प्रगट करती है। उसके प्रगट होने के चार माध्यम हैं—शरीर, वाणी, श्वास और मन। आत्मा की अनुपस्थिति में शरीर स्पंदित नहीं होता और मन गतिशील नहीं होता। ये चारों आत्मा से प्राण पाकर ही अपना काम करते हैं। ये द्वार बनते हैं, खिड़कियां बनते हैं आत्मा की। शरीर, वाणी, श्वास और मन ये सब अचेतन हैं। आत्मा में से एक चैतन्य की धारा निकलती है। वह अति सूक्ष्म परमाणुओं के साथ मिलकर प्राण की धारा हो जाती है। वह धारा जिसके साथ जुड़ जाती है वही सचेतन हो जाता है, सक्रिय हो जाता है। मन का क्या स्वरूप है और मन कहां है? कुछ मानते हैं कि मन समूचे शरीर में व्याप्त है। कुछ मानते हैं कि मन का स्थान हृदय के नीचे है और कुछ लोग मानते हैं कि मन हृदय कमल के बीच में है। मन का स्वरूप चेतना की धारा से निर्मित होता है। वह अपने आप में न कलुषित है न निर्मल, न चंचल है न स्थिर। जैसा कर्म-विपाक होता है वैसे ही वह निर्मित होता है। चेतना, अतीत कालीन विभिन्न संस्कारों से प्रभावित होती है। उसकी निर्मल धारा आती है और मन के साथ योग करती है तो मन निर्मल बनता है, राग-द्वेष रहित बनता है और चेतना के साथ मल आता है, आसक्ति आती है, अज्ञान आता है, राग-द्वेष आता है तो मन का स्वरूप दूसरा हो जाता है। चेतना का योग मन में सक्रियता लाता है लेकिन उसका प्रवाह दो दिशाओं में विभक्त हो जाता है। मन की तीन अवस्थाएं हैं—राग-द्वेष युक्त मन, राग-द्वेष शून्य मन और तीसरा है अ मन। सांसारिक लोग जो वासना और इच्छा से प्रेरित होकर कर्म करते हैं वे पसंद नहीं करते कि उनके मन का यंत्र निकम्मा पड़ा रहे, बल्कि वे नाना प्रकार की इच्छाओं को पूरा करने के लिए मन के अधीन होकर अपनी पूरी चेतना की शक्ति को भी लगा देते हैं। लेकिन ऐसे लोग राग और द्वेष से प्रेरित हो करके ही कर्म करते हैं और कभी सुख कभी दुख, कभी जीत और कभी हार का मजा लेते हैं। ये आसक्ति का जीवन जीते हैं। अध्यात्मवादी दृष्टिकोण इससे भिन्न है। वे कहते हैं कि हम मन का निर्माण ही न होने दें और चेतना को राग-द्वेष से मुक्त रखने के लिए ध्यान के द्वारा वीतराग चेतना को प्राप्त करें जिससे व्यक्ति सहज में ही आनंद और सम अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



## प्राण तत्त्व

यद्यपि श्वास-उच्छ्वास एक शारीरिक क्रिया है जो कि हर प्राणी में पाया जाता है किन्तु यह प्राण का स्थूल भाग है। यह कृत्रिम ढंग से भी पैदा किया जा सकता है। मूल तत्त्व श्वास न होकर प्राण तत्त्व है। प्राण और आत्मा का गहरा संबंध है। हमारा मूल प्राण क्या है यह एक जटिल प्रश्न है। एक है प्राण वायु और एक है प्राण। दोनों एक नहीं हैं। बहुत बार हम प्राण वायु को ही प्राण मान लेते हैं। हम श्वास ले रहे हैं उसमें सारा प्राण नहीं होता है। कुछ विचारकों का मत है कि श्वासों के साथ हम बाहर से भी कुछ ऊर्जा तत्त्व या प्राण तत्त्व लेते हैं, क्योंकि प्राण तत्त्व सारे जगत् में समाया हुआ है। किन्तु यह जितना लेना-छोड़ना है वह वायु का है, प्राण का नहीं। प्राण तो हमारी सूक्ष्म धारा है जो हमारे शरीर के भीतर ही सारा कार्य संचालित करती है। प्राण आत्मशक्ति से आता है तेजस् शरीर के रूप में। प्राणवायु का चेतना के साथ सीधा संबंध नहीं जुड़ता पर प्राण का चेतना के साथ सीधा संबंध जुड़ा हुआ है। हमारे तेजस् शरीर का सीधा संबंध जीवन के साथ है। जीव की तेजस शक्ति और चैतन्य शक्ति के योग से प्राण की उत्पत्ति हो जाती है। प्राण में चैतन्य का प्रवाह है। प्राणवायु में चैतन्य का प्रवाह नहीं है। प्राण एक यौगिक शक्ति है। हमारे शरीर में एक केन्द्र है जहां सुषुम्ना का निचला सिरा समाप्त होता है। उसके नीचे एक केन्द्र है जिसे मूलाधार चक्र कहते हैं जो प्राणशक्ति का उत्पादक है, प्राणशक्ति को प्रगट करने और उसको संचालित करने का मुख्य स्थान है। प्राण शक्ति सुषुम्ना से होकर विभिन्न भागों में संचरित होती है और मस्तिष्क तक जाती है। प्राण शक्ति ऊपर से नीचे की ओर नहीं जाती, नीचे से ऊपर की ओर जाती है। यह शक्ति जितनी अधिक नीचे से ऊपर की ओर जाती है मनुष्य उतना ही स्वस्थ होता है, शरीर से भी और मन से भी।

अतः प्राण मानवीय शक्ति का महत्वपूर्ण स्रोत है। हमारा सारा जीवन प्राण रूपी ईंधन से ही संचालित हो रहा है। प्राण शक्ति के विकास से शरीर तो स्वस्थ बनता ही है पर हम आध्यात्मिक स्वास्थ्य जो कि हमारा मूल स्वास्थ्य है को भी प्राप्त कर सकते हैं। मन, वाणी, और कर्म की संपादन-शक्ति का नाम है प्राण। प्राण हमारे शरीर की रीढ़, मन की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



संवेदना और आत्मा की चेतना का पर्याय है। हमारे आस-पास जो शक्ति, ऊर्जा, प्रकाश और चुम्बकीय धाराएं गुजरती रहती हैं वे सब प्राण शक्ति के प्रमाण हैं। यदि हमारी प्राणधारा संतुलित है, लयबद्ध है तो हमारा जीवन संतुलित और संगीत से भरा होगा। प्राणधारा के अस्त-व्यस्त होते ही हम शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक तनावों से घिर जाते हैं। योगाचार्यों ने महाप्राण साधना को अखण्ड-चिकित्सा प्रणाली कहा है जो व्यक्ति को सभी तापों से मुक्त कर सकती है। आत्मानुभूति के पूर्व जो कुछ हमारे पास महत्वपूर्ण है वह प्राणशक्ति है। यह शक्ति हमारे स्थूल-शरीर और सूक्ष्म-शरीर दोनों की सक्रियता का एकमात्र हेतु है। योगी लोगों का मत है कि प्राण तेजस् और वायु दो तत्त्वों के मिश्रण से बनता है। तेजस् के बिना शक्ति का जन्म नहीं होता और वायु के बिना शक्ति का संचार और संप्रेषण नहीं होता। प्राण विद्युत, विद्युत परमाणुओं से भी सूक्ष्म है। अमरीकी अणुवैज्ञानिकी श्रीमती जे.सी. ट्रस्ट ने प्राण शरीर के बारे में अनेक प्रयोग किए हैं। हवाई द्वीप के लोग कहा करते थे कि हमारे में एक ऐसी शक्ति होती है जिसके बाहर होते ही मनुष्य मर जाता है। इस प्राण-ऊर्जा को न्यूमा भी कहा जाता है। कुछ वैज्ञानिक प्राण की परिभाषा में कहते हैं कि नलिकाविहीन ग्रंथियों से जीवन रस तैयार होता है, वही हमारा प्राण-तत्त्व है। कुछ लोगों का कहना है होमोग्लोबिन जो सूर्य से निकलकर हवा, पानी तथा अन्न के साथ हमारे शरीर में जाता है वही तत्त्व प्राण है। ज्योतिषी लोगों का अभिमत है कि आइनोस्वगेटिक प्लाज्मा जो हमारे चारों ओर आकाश गंगा के घर्षण से उत्पन्न होकर छाया रहता है वही प्राणतत्त्व है। साधकों का अपना अनुभव है कि प्राण व ऊर्जा विद्युत है जिसे चित्र से दिखाया नहीं जा सकता और शब्दों से बताया नहीं जा सकता। उनके अनुभव में यह प्राण प्रकाशात्मक है। इसे इंद्रियों से नहीं केवल मनोभावनाओं के द्वारा ही पकड़ा जा सकता है, स्पर्श किया जा सकता है क्योंकि इसकी गति अल्ट्रा-वायलट रेज़ से भी तेज है। योग के अनुभव के अनुसार प्राण मन से संबंधित है, मन इच्छाशक्ति से, इच्छाशक्ति आत्मा से और आत्मा क्रमशः सर्वोच्च चेतना से। प्राण का क्षेत्र मन से बहुत व्यापक एवं विशाल है। मन कभी सोता है, कभी सक्रिय होता है और कभी निष्क्रिय होता है किन्तु प्राण का प्रवाह अविरल बहता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



रहता है। स्वामी विवेकानंद ने इस प्राण विद्युत एवं ऊर्जा को साइकिक फोर्स कहा है। न्यूरो अकादमी के एक प्रोफेसर ने बताया कि प्रत्येक प्राणी एलेक्ट्रोडायनामिक क्षेत्र से आवृत्त होता है। वैज्ञानिकों के अनुसार इस क्षेत्र को मस्तिष्क-विद्युत से प्रभावित किया जा सकता है। हमारे शरीर में जो चुंबकीय शक्ति है वह संपूर्ण पृथ्वी से भी अधिक है किन्तु इसका जागरण संकल्प शक्ति से किया जा सकता है। सम्मोहन, प्लेंचिट पर आत्माओं को बुलाना, विचार प्रेषण, तत्क्षण रोग चिकित्सा तथा असाधारण चमत्कार ये सब हमारी जागृत प्राण-शक्ति के ही परिणाम हैं।

प्राण की धारा के दो मार्ग हो सकते हैं। उसका एक बाहरी रास्ता है और एक भीतरी रास्ता है। बाहरी रास्ता है आगे का। आगे के रास्ते से प्राणशक्ति जाती है तो वह हमारे शरीर तंत्रों को सक्रिय बनाती है और हमारी नॉर्मल शक्ति उसी से उत्पन्न होती है। प्राणधारा के प्रवाहित होने का भीतरी रास्ता है सुषुम्ना का मार्ग जिसे महापथ भी कहा जाता है। इसी पथ पर सभी महापुरुष योगी और संत चले। प्राणधारा को पृष्ठरज्जु से ऊर्ध्वगामी बनाने का यह सूत्र है। सामान्यतः मनुष्य इस मार्ग से नहीं जा सकता। वह किसी वीर का ही कार्य है। प्राणधारा साधारणतः नीचे की ओर बहती है मन के साथ उसकी गति होती है तो आवेश और वासनाएं उभरती हैं। प्राण और मन का गहरा संबंध है। प्राणधारा नीचे जाती है तो मन भी नीचे जाता है। प्राणधारा ऊपर जाती है तो मन भी ऊपर जाता है।

मानव शरीर के इर्द-गिर्द एक चुम्बकीय विद्युत क्षेत्र है जिसे आभामण्डल (aura) भी कहा जाता है। आभामण्डल का निर्माण चेतना की तरंगों एवं प्रकाश की रश्मियों से जो सदैव सूक्ष्म चेतना से प्रस्फुटित होती रहती हैं और सघन होकर भाव में परिणित हो जाती हैं, से बनता है। इसलिए हर व्यक्ति के पास एक सूक्ष्म-आभामण्डल या भावमण्डल है जो समय-समय पर बदलता रहता है। हमारी भावनाएं, हमारे आचरण आभामण्डल के निर्माता हैं। जब अच्छी भावनाएं और पवित्र आचरण होता है तब आभामण्डल बहुत सशक्त और निर्मल होता है और जब भावधारा मलिन होती है और चरित्र भी मलिन होता है तब आभामण्डल धूमिल, विकृत और दूषित हो जाता है। दो शब्द हैं—भामण्डल और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



आभामण्डल। भामण्डल को हैलो (halo) कहते हैं, वह सिर के पीछे होता है। आज भी जो अवतारों के चित्र मिलते हैं, बड़े संतों एवं योगियों के चित्र मिलते हैं उनमें हम उनके सिर के पीछे गोलाकार सफेद या पीले रंग का एक चक्र सा देखते हैं यह भामण्डल है, यह प्रत्येक प्राणी में नहीं होता। यह उन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों में होता है जिनका व्यक्तित्व प्रकाशमय हो चुका है। दूसरा है आभामण्डल। इसे ओकल्ट साइंस में ओरा (aura) कहते हैं। यह आभामण्डल हमारे चरित्र का, हमारी भावधारा का प्रतिनिधित्व करता है। जो व्यक्ति चरित्रवान है उसका आभामण्डल सशक्त होगा, आकर्षक होगा। उस पर दूसरों का प्रभाव नहीं हो सकेगा। विजातीय तत्त्व उस आभामण्डल में प्रवेश नहीं कर सकेंगे। उसे कोई हिप्नोटाइज नहीं कर पाता। हम जिस दुनिया में जीते हैं वह संक्रमण की दुनिया है। एक व्यक्ति पर अनेक तत्त्व संक्रमण करते हैं। अनेक रूप-रंग आक्रमण करते हैं और आभामण्डल को विचलित करने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन जिनका चरित्र शुद्ध होता है, चित्त शुद्ध होता है, भावधारा निर्मल होती है उनका आभामण्डल विचलित नहीं होता। बाह्य आक्रमणों से वे आक्रांत नहीं होते। उसमें इतनी क्षमता होती है कि जो आता है, टकराता है और वापस चला जाता है, भीतर प्रवेश नहीं पा सकता। हमारा चरित्र और भाव जब निर्मल होता है तब इस संक्रमण की दुनिया में रहते हुए भी हम बाह्य कु-प्रभावों से बच जाते हैं। जब मनुष्य का चरित्र शुद्ध होता है आभामण्डल निर्मल होता है तो उस व्यक्ति में से ऐसे परमाणुओं का विकिरण होता है कि बिना बुलाए लोग आते हैं, उसमें आकर्षण पैदा हो जाता है। सूक्ष्म शरीर में जो घटित होने वाली घटनाएं हैं, सूक्ष्म स्पन्दन के रूप में उनका भावमण्डल पर प्रभाव पड़ता है।

व्यक्तित्व का रूपांतरण भाव की चेतना के स्तर पर हो सकता है। भावधारा अच्छी होगी तो व्यक्तित्व अच्छा होगा और बुरी होगी तो व्यक्तित्व बदल जाएगा। इसीलिए कई बार बड़ा क्रांतिकारी रूपांतरण व्यक्तियों के जीवन में हो जाता है और हमें सुनने को मिलता है कि एक डाकू अचानक संत बन गया या एक संत पथभ्रष्ट हो गया। यह रूपांतरण पहले भावजगत् में घटित होता है। जब भाव बदल जाता है तब भाव के पीछे चलने वाला विचार बदल जाता है। और तब विचार के पीछे चलने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



वाला व्यवहार अपने आप बदल जाता है। इसलिए व्यक्ति को बदलने के लिए उसकी आदतों को बदलने के लिए, स्वभाव को बदलने के लिए भावधारा का रूपांतरण करने की आवश्यकता है। हमारी वृत्तियों, भावनाओं और आदतों को उत्पन्न करने वाले भाव हैं। जब तक भावतंत्र शुद्ध नहीं होता तब तक ये शुद्ध नहीं हो सकते। इसलिए कहा जाता है कि:—

जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देंखी तिन तैसी।।

इसीलिए संतों ने गाया:—

भाव का भूखा हूं मैं और भाव ही इक सार है ।
भाव से मुझको भजे तो भव से बेड़ा पार है।।
भाव बिन कोई पुकारे मैं कभी सुनता नहीं ।
टेर भक्ति भाव की करती मुझे लाचार है।।
भाव बिन सर्वस्व भी दे मैं कभी लेता नहीं ।
भाव से इक फूल भी दे तो मुझे स्वीकार है।।
अन्न धन और वस्त्र भूषण कुछ न मुझको चाहिए ।
आप हो जायें मेरा बस यही मेरा सत्कार है।।
जो मुझी में भाव रखकर मेरी लेता है शरण ।
उसके और मेरे हृदय का एक रहता तार है।।
भाव जिस जन में नहीं उसकी मुझे चिन्ता नहीं ।
भाव वाले भक्त का भरपूर मुझ पर भार है।।
बांध लेते भक्त मुझको प्रेम की जंजीर में ।
इसलिए होता मेरा इस भूमि पर अवतार है।।
भाव का भूखा हूं मैं और भाव ही इक सार है।।

अच्छे भाव प्रकाशमान रंग के और बुरे भाव गंदले रंग के प्रतीक हैं। आदमी शांत होता है तो सफेद रंग का आभामण्डल बन जाता है। एक आदमी हिंसा का विचार करता है तो काले रंग का आभामण्डल बन जाता है। एक आदमी क्रोध करता है तो मलिन लाल रंग के परमाणुओं को आकर्षित करता है। एक आदमी माया का व्यवहार करता है तो गंदले नीले रंग के परमाणु आकर्षित करता है। ये रंग उसके भाव के प्रतीक हैं जो उसके आभामण्डल पर प्रदर्शित हो रहे हैं। वे भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



भिन्न-भिन्न प्रकार के भावों के या आभामण्डल के प्रतीक हैं। जैन परंपरा में भावमण्डल को लेश्या तन्त्र कहते हैं। लेश्या है प्रकाश और चैतन्य की किरण जो घनीभूत होकर भाव बन जाती है।

साधारणतः हम देखते हैं कि आंतरिक भावधारा के बदलने से हमारे चेहरे के रंग भी बदल जाते हैं। मानव शरीर इस जगत् का सबसे बड़ा रहस्य है, सारे ब्रह्माण्ड का रहस्य सूक्ष्म रूप से इस शरीर में समाया हुआ है। इसलिए हमारे ऋषियों ने कहा कि जो ब्रह्मांड में है वह पिंड में है और ब्रह्मांड को जानने के लिए पिंड अर्थात् मानव शरीर के आंतरिक रहस्यों को जानना बड़ा जरूरी है। आज भी मानव प्रामाणिक रूप से नहीं कह सकता कि वह मानवीय मस्तिष्क की क्षमताओं को, चैतन्य केन्द्रों एवं शक्तियों को पूरी तरह जान गया है। इसलिए मानव शरीर कुदरत का सबसे बड़ा कमाल है। इसकी अद्भुत् संरचना की महिमा गाते हुए संत कबीर एक भजन में गाते हैं:—

**झीनी झीनी बीनी चदरिया।।**
**काहे का ताना काहे की भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।।**
**इंगला पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया।।**
**आठ कमलदल चरखा डोले, पांच तत्त्व गुण तीनी चदरिया।।**
**साईं को बुनत मास दस लागे, ठोक ठोक के बीनी चदरिया।।**
**सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि के मैली कीन्हीं चदरिया।।**
**धुव ओढ़ी प्रह्लाद ने ओढ़ी, सुकदेव निर्मल कीन्हीं चदरिया।।**
**दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों रख दीन्हीं चदरिया।।**

मानव शरीर को देखने के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हैं। एक चिकित्सक इसे और दृष्टिकोण से देखता है, एक कामुक व्यक्ति इसे और दृष्टिकोण से देखता है। कोई इसे यंत्र मानता है तो कोई इसे सजीव प्राणी मानता है। अध्यात्मवादियों ने कई बार आत्मा के पक्ष को अधिक बल देने के लिए, मानव में वैराग्य की भावना पैदा करने के लिए और शरीर के मोह को तोड़ने के लिए शरीर की बड़ी घृणा और निंदनीय दृष्टि से वर्णन किया है। वे इसे नरक का द्वार कहते हैं, रोगों का पिंजरा कहते हैं। यह शरीर मलों का शरीर है। चर्म, मांस, मज्जा, शुक्र आदि अनेक अपवित्र वस्तुओं से भरा है। इसके अनेक छिद्रों से मल निरंतर निकलता रहता है। शंकराचार्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



इसे रोगों का पिंजरा कहते हैं। किन्तु यह दृष्टिकोण पूरा सही नहीं है। केवल एक कोण से सही है। शरीर को देखने का दूसरा कोण भी है। मानव शरीर परमात्मा का मंदिर है। शक्ति, चेतना और आनंद की सारी अभिव्यक्तियां इसी शरीर के माध्यम से होती हैं। इस शरीर में इतने केन्द्र हैं, इतने स्विच बोर्ड हैं और उनसे इतनी शक्ति का स्रोत फूटता है, चेतना की रश्मियां प्रस्फुटित होती हैं जिनकी कोई सीमा नहीं। जीसस क्राइस्ट ने कहा कि—"Man is made in the image of God." बाहरी आवरणों के हटने पर ईश्वरीय साम्राज्य की अभिव्यक्ति इसी शरीर में मानव आत्मा को होती है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानव शरीर को तीन जगहों की सीढ़ी बताया है:—

**स्वर्ग नर्क अपवर्ग नसैनी। ज्ञान विराग भक्ति सुख देनी।।**

और भगवान राम अयोध्यावासियों को इस शरीर की महिमा सुनाते हुए कहते हैं:—

**बड़े भाग्य मानुष तन पावा।**
**सुर दुर्लभ सद्ग्रंथन्ह गावा।।**
**साधन धाम मोक्ष कर द्वारा।**
**पाय न जेहि परलोक संवारा।।**

यह लोक-परलोक, स्वर्ग और नर्क मानव में ही अंतर्निहित हैं। मानव शरीर इसलिए प्रधान है कि वह जीव और बाहरी जगत् में सेतु का कार्य करता है। बाहरी जगत् से जो भी भीतर जाता है वह काया के द्वारा जाता है और भीतर से जो बाहर जाता है वह भी काया के द्वारा जाता है। मानव आत्मा के लिए यह शरीर ही भीतर और बाहर जाने का माध्यम है। अंतरजगत् और बाह्य जगत् के रहस्यों का उद्घाटन मानव इसी शरीर के द्वारा कर सकता है। देवता भी इस शरीर के लिए लालायित रहते हैं क्योंकि इसमें कर्म करने की स्वतंत्रता है। महापुरुषों ने इस शरीर को भवसागर को पार करने के लिए एक दैवी नाव कहा है। स्थूल-शरीर के स्तर पर मानव भले ही यंत्रवत् हो लेकिन मानव केवल यंत्र नहीं है, उसका वास्तविक अस्तित्व चेतना में अंतर्निहित है। मनुष्य का यदि अपना स्व कुछ भी नहीं है और वह केवल स्थूल प्रकृति का अंग मात्र है तो वह मनुष्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



मनुष्य ही नहीं है, फिर उसे हम चेतनावान प्राणी नहीं कह सकते।

मानव के पास अनेक प्रकृतिदत्त मूल प्रवृत्तियां हैं जो वह विकास के क्रम में पशु जगत् से अपने साथ लाता है, इसलिए मानव को पशु भी कहा गया है। भय, मैथुन, आहार और निद्रा की प्रवृत्ति पशु के समान मानव में भी पायी जाती है। जर्मन के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने काम (सैक्स) को सबसे शक्तिशाली मूल प्रवृत्ति माना है। ये प्रवृत्तियां जन्म के साथ-साथ मनुष्य में होती हैं। इन्हें सीखना नहीं पड़ता, ये स्वाभाविक हैं। क्रोध सीखना नहीं पड़ता, क्षमा सीखनी पड़ती है। भय सीखना नहीं पड़ता, अभय सीखना पड़ता है। भोग सीखना नहीं पड़ता ब्रह्मचर्य सीखना पड़ता है। यद्यपि मनुष्य को कुछ पशुवत् प्रवृत्तियां विरासत में मिली हैं लेकिन उसमें यह क्षमता है कि वह उनको पार कर सकता है। उन्हें काबू कर सकता है। उनको सबलीमेट कर सकता है। उनका रूपांतरण कर सकता है। यदि मनुष्य की सारी ऊर्जा इन नैसर्गिक प्राकृतिक प्रवृत्तियों में ही बहती रहती तो आज मनुष्य इतनी उन्नति नहीं कर सकता था और न ही उसके पास इतना ज्ञान का भण्डार और कला-निपुणता होती। वह न सत्यों की खोज कर पाता और न सूक्ष्म रहस्यों से परिचित हो पाता। मनुष्य ने जो महानताएं, विशेषताएं उपलब्ध की हैं वे अपनी ऊर्जा का दिशांतरण एवं रूपांतरण करके ही की हैं। एक व्यक्ति सत्य की खोज में लगा, धर्म की साधना में लगा और सारा जीवन उसमें खपा डाला। उसकी ऊर्जा सत्य की खोज में लगी और उसने सारे जगत् को नए-नए सत्यों, खोजों और आविष्कारों से भर डाला। आज सारा संसार उनके प्रति आभारी है और मानव इतिहास में उनका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है। इसलिए पशुवत् जीना भी कोई जीना है, भोग का जीवन भी कोई जीवन है? वह तो है केवल अपने जीवन और अपनी क्षमता का दुरुपयोग, व्यर्थ व्यय। ऐसे लोग अमृत को छोड़कर केवल विष का पान करते हैं। जैसे एक मिट्टी खाने वाले बच्चे को संसार में सबसे श्रेष्ठ वस्तु मिट्टी लगती है, यदि उसे चीनी या अन्य कोई मिठाई दी भी जाय तो वह उसमें रस नहीं लेता, ऐसे ही पशुवत मनोवृत्ति के व्यक्ति भोग को ही जीवन का पहला और अंतिम सत्य मानते हैं। इससे अधिक उनकी चेतना की उड़ान नहीं है। अयोध्यावासियों को समझाते हुए भगवान राम तुलसीकृत रामायण में कहते हैं कि:-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



**नर तन पाय विषय मन देहीं ।**
**पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं ।।**

मनुष्य अनेक चित्त वाला है। चित्त की वृत्तिया अनंत हैं। मनोवैज्ञानिक भी चित्त को तीन मुख्य भागों में बांटते हैं—चेतन मन, अर्द्ध-चेतन मन और अवचेतन मन। अरविन्द ने सुपर कानसियसनेस की बात की है। चित्त अनेक स्वरूप धारण कर लेता है। व्यक्ति के कितने रूप हैं पहचाना नहीं जा सकता। यह पुरुष अनेक चित्त वाला है। देश के साथ, काल के साथ और परिस्थितियों के साथ यह चित्त बदलता रहता है। वह इतने रूप धारण करता है कि दुनिया में बहुरुपिये भी इतने रूप धारण नहीं करते। गोस्वामी तुलसीदास भी एक भजन में इस चित्त के बदलते हुए रूपों का वर्णन इस प्रकार करते हैं:—

**कबहूं मन रंग तुरंग चढ़े, कबहूं मन सोचत है धन को ।**
**कबहूं तिय देखि के चित्त चढ़ै, कबहूं मृग ह्वै के चलूं वन को ।।**
**तुलसीदास समुझाय कहैं, केहि विधि समझाऊँ येहि कपटी मन को ।।**

आदमी अच्छा भी करता है, बुरा भी करता है। कभी अच्छा करता है—अच्छा चिंतन, अच्छा भाव और अच्छे कार्य। कभी बुरा करता है—बुरा चिंतन, बुरा भाव और बुरा कार्य। यह द्वंद्व चलता है। एक ही व्यक्तित्व में ये विरोधी बातें चलती हैं। एक ही व्यक्तित्व कभी अच्छा और कभी बुरा होता है। ऐसा क्यों होता है? हमारे विचार क्यों बदलते हैं, हमारा मन बार-बार क्यों बदलता है, भाव क्यों बदलते हैं?

व्यक्तित्व को जानने के तीन साधन हैं—इंद्रियां, मन और बुद्धि। हम इंद्रियों से काम लेते हैं, मन और बुद्धि से काम लेते हैं। इनके अलावा हमारे पास और कोई साधन नहीं। इंद्रियों को हम जानते हैं। मन और मस्तिष्क का अध्ययन भी चिकित्सक और मनोवैज्ञानिक कर रहे हैं किन्तु इनके आगे हमारी पहुंच नहीं होती। आज के डॉक्टर शरीर के एक-एक अंग को चाहे वह स्थूल हो या सूक्ष्म देख चुके हैं। हृदय को देखा, मस्तिष्क के यंत्र को देखा, आंतों और गुर्दे को देखा, नसों के बिछे हुए जाल को देखा, पर मानव इतना ही नहीं है, अदृश्य बहुत ज्यादा है। उसे देखने के लिए डॉक्टर के पास साधन नहीं हैं। बाहरी आंखों से और बड़े शक्तिशाली सूक्ष्म माइक्रोस्कोप से तो यहीं तक देखा जा सकता है। हमारे ऋषियों ने जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



आत्मा के विज्ञानी थे, देखने की एक दूसरी प्रक्रिया बताई जहां बाहरी आंखें काम नहीं देतीं, जिसे उन्होंने अंतर्दृष्टि कहा। इस ध्यान की प्रक्रिया में आंखें बन्द, मन समाप्त और बुद्धि के दरवाजे बंद हो जाते हैं। ऐसा करने के बाद जो दीखेगा वह नया होगा और जो शल्यचिकित्सा के द्वारा देखा नहीं गया होगा। इस शरीर के भीतर अनंत-अनंत परमाणुओं के इतने पिंड हैं कि जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

आँखें केवल स्थूल को ही पकड़ पाती हैं, सूक्ष्म को नहीं। प्रकृति की यह व्यवस्था है कि स्थूल माध्यम के द्वारा स्थूल को ही पकड़ा जा सकता है। यदि आँखों में सूक्ष्म को देखने की क्षमता आ जाती तो आँखों के सामने इतने रूप आ जाते कि उनकी भीड़ हो जाती। आँखें कुछ कर ही नहीं पातीं। अच्छा हुआ कि हम एक निश्चित आवृत्ति (फ्रिकवेंसी) को ही देखते हैं और सुनते हैं। यह मर्यादा बहुत अच्छी है। सूक्ष्म जगत् न इंद्रियों से दिखाई देता है न चिंतन से उपलब्ध होता है और न बुद्धि के द्वारा गृहीत होता है। चेतना का जगत् इंद्रियातीत और मन और बुद्धि से परे है। इसीलिए अध्यात्म विज्ञानियों ने कहा कि उस जगत् के दर्शन का एक अनूठा मार्ग है, एक महायान है, एक नैसर्गिक विधि है जो मानव में ही अंतर्निहित है और वह है आत्मा को आत्मा के द्वारा जानना।

तीन प्रकार के मानव इस संसार में मिलते हैं। जब भगवान महावीर से गौतम ने पूछा कि जीव कितने प्रकार के होते हैं, तो भगवान महावीर ने कहा कि जिनका आकर्षण विषयों के प्रति है, जिनकी चेतना बाहर की ओर दौड़ रही है वे सोते हैं, सोए हुए हैं। जिनकी चेतना निरंतर आत्मा की ओर प्रवाहित हो रही है, जिनका आकर्षण टूट चुका है वे जागते हैं, जागे हुए हैं। जिनकी चेतना कभी बाहर की ओर दौड़ती है और कभी रुक जाती है और कभी भीतर की ओर प्रवाहित है वे सोते जागते हैं, वे सोए हुए भी हैं और जागे हुए भी हैं।

अर्जुन भगवान कृष्ण से गीता में पूछते हैं कि न चाहते हुए भी जीव से पाप क्यों हो जाता है? कई बार हमसे ऐसा व्यवहार हो जाता है जिसके लिए हमें बाद में पछताना होता है और हम कहते हैं कि ऐसा क्यों हो गया? ऐसा तो मैंने कभी सोचा भी नहीं था। हम क्षमा याचना करते हैं और कहते हैं कि न चाहते हुए भी न जाने यह व्यवहार क्यों हो गया? हम हर रोज

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



कसमें खाते हैं और फिर स्वयं ही उसे तोड़ देते हैं। हमारा चेतन मन कुछ और चाहता है लेकिन अवचेतन मन की आकांक्षा कुछ और होती है। इसलिए व्यक्ति चेतन मन से संकल्प करता है कि वह बुरा न सोचे, बुरा न करे परंतु उसका अवचेतन मन इतना बलशाली होता है कि वह उस पर हावी हो जाता है, उसके संकल्प टूट जाते हैं और वह फिर वैसा ही करने लगता है। यंत्रवत् हो जाता है व्यक्ति का व्यवहार और आदतें। मानव की चेतना प्रकृति के तीन गुणों से सदैव संप्रेषित होती रहती है और उन्हीं गुणों के प्रभाव से भीतर का प्रवाह व्यक्ति से सब कुछ करवाता है। यही अच्छा बुरा प्रवाह, काम, क्रोध और लोभ का संवेग मनुष्य को प्रेषित करता है बुरा करने के लिए या अच्छा करने के लिए। इसलिए अच्छे बुरे के लिए भीतर से आने वाले प्रवाह एवं वेग जिम्मेवार हैं। जैसा प्रवाह वैसा ही व्यक्तित्व। इसीलिए कई बार कहा जाता है कि व्यक्ति माया और गुणों के हाथ में कठपुतली है और हर व्यक्ति उसी से प्रेरित होकर नाच रहा है। सूरदास ने भी एक भजन में मानव की दयनीय स्थिति बताते हुए कहा—

अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।
काम क्रोध का पहर चोलना, कण्ठ बिषय की माल।।
महा मोह का नूपुर बाजत, निन्दा शब्द रसाल।
भरम भर्‌यो मन भयो पखावज, चलत कुसंगत चाल।।
तृष्णानाद करत घट भीतर, नाना विधि दै ताल।
माया को कर फेंटा बांध्यो, लोभ तिलक दियो भाल।।
कोटिक कला काछ दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या दूर करो नन्दलाल।।

लेकिन यह मूर्च्छित व्यक्ति की पहचान है जिसकी चेतना जागृत नहीं है, जो सोया हुआ है वही मन और माया से और गुणों से प्रेरित होकर कठपुतली की तरह नाच रहा है। पर जो जाग गया है ज्ञान में और ध्यान में वह आत्मशोधन एवं आत्म नियंत्रण के द्वारा अपने भाग्य का स्वयं विधाता बनता है और जानते हुए, जागते हुए कर्म करता है।

## स्नायु-संस्थान

नाड़ी संस्थान में दो प्रकार के स्नायु हैं—ज्ञानवाही स्नायु और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



क्रियावाही स्नायु—जो ज्ञानवाही स्नायु हैं उनके माध्यम से हम जानते हैं, संवेदन करते हैं। पैर में कांटा चुभा, तत्काल पैर के स्नायु उस उत्तेजना को मस्तिष्क तक पहुंचा देते हैं और तत्काल क्रियावाही स्नायु दूसरे स्नायु को कांटा निकालने का आदेश देते हैं। सिर और हाथ की मांसपेशियां सक्रिय हो जाती हैं और अंगुलियां कांटा निकालने लग जाती हैं। सब कुछ स्नायु के द्वारा घटित होता है। मनुष्य शांत बैठा है, अचानक उसमें क्रोध उभरा। जब तक क्रोध की तरंग नाड़ी संस्थान के द्वारा स्नायु पर नहीं दौड़ेगी, मनुष्य का क्रोध अभिव्यक्त नहीं होगा। भीतर में कितना ही क्रोध उभरा किन्तु स्नायु में यदि नहीं उतरा तो वह भीतर ही भीतर रह जाएगा, प्रगट नहीं होगा। क्रोध तभी प्रगट होता है जब शरीर के स्नायु उसका सहयोग करें, हमारा नाड़ी संस्थान उसका सहयोग करे, अन्यथा वह भीतर ही समाप्त हो जाता है। उपनिषदों में कहा है—"मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।" मन ही बंधन का कारण है और मन ही मुक्ति का कारण है। किन्तु वास्तविकता यह है कि केवल मन से कुछ नहीं बनता, शरीर का भी अपना महत्व है। जब शरीर में फैले हुए नाड़ी संस्थान में इसी प्रकार का संस्कार बन जाता है, वे सक्रिय हो जाते हैं तब मन बेचारा बैठा रह जाता है। बुद्धि बेचारी सोच भी नहीं पाती और आदमी यंत्रवत् व्यवहार करता रहता है। अभ्यास हो गया है शरीर को। वहां शरीर मुख्य हो जाता है और व्यक्ति का शरीर कंडिशन्ड हो जाता है अर्थात् भावित हो जाता है और बिना सोचे समझे यंत्रवत् वैसे ही करता रहता है। नाड़ी संस्थान में जो उत्तेजनाएं, जो वासनाएं और जो तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं, जिन्हें वह कई बार दोहरा चुका होता है, फिर न चाहने पर भी वह घटना घटित हो जाती है क्योंकि नाड़ी संस्थान को अभ्यास बन जाता है। मन बेचारा कुछ नहीं कर सकता। इसलिए हमारे संतों ने कहा कि यम और नियमों के द्वारा शरीर को साधो। एक संत ने कहा है—"मन जाता है तो जान दे, दृढ़ कर राख शरीर"। इसलिए शरीर बहुत महत्वपूर्ण माध्यम है। जो प्रवाह शरीर के बाहर जाता है वह भी शरीर के माध्यम से और जो प्रवाह भीतर आता है वह भी शरीर के माध्यम से। इसीलिए यह अतिशयोक्ति नहीं होगी यदि हम कहें कि शरीर ही बंधन और मुक्ति का कारण है। इसलिए शरीर के प्रति जागरूक होना चाहिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



शरीर की मूर्च्छा को तोड़ने के लिए हमें शरीर के प्रति जागरूक होना चाहिए। जो अपने शरीर के प्रति उदासीनता के भाव रखते हैं, जिनका अपनी वाणी और आदतों पर नियंत्रण नहीं है वे मन पर नियंत्रण क्या कर सकेंगे? इसलिए कैसे बैठा जाय, कैसे उठा जाय, कैसे खाया जाय, कैसे सोया जाय, यह शरीर-विज्ञान व्यक्ति के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि चेतना की गहराइयों में जाना।

शरीर का इतना महत्व होने पर भी इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता कि यह शरीर अनित्य है, नश्वर है, पानी का बुलबुला या कांच का घड़ा है। यह शरीर एक रस नहीं रहता, इसमें अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। कभी इसमें बचपन, कभी जवानी और कभी बुढ़ापा। एक अंग्रेज नाटककार ने मानव शरीर की बदलती हुई स्थितियों का वर्णन बड़े सुन्दर ढंग से किया है। नश्वर होते हुए भी मानव शरीर साधना का धाम और मोक्ष का द्वार है। मानव में कुछ विशिष्टताएँ हैं जो और जीव जंतुओं में नहीं पाई जाती हैं। उसमें अपनी शक्तियों को, अपने ज्ञान को, अपने सुख को विकसित करने की सहज क्षमता है। मानव जैसा है वैसा ही नहीं रहना चाहता। वह सतत साधनाशील है। अप्राप्त को प्राप्त करना चाहता है। असीम आनंद, असीम शक्ति, असीम ज्ञान और असीम स्वतंत्रता को प्राप्त करने की सहज अभीप्सा मानव में है। फ्रांस के एक दार्शनिक रूसो ने कहा है—"Man is born free, but he is everywhere in chain." मानव मुक्त जीवन के लिए पैदा हुआ है लेकिन वह सब जगह जंजीरों से जकड़ा हुआ है।

शरीर मन और चित्त का आपस में गहरा संबंध है। शरीर और मन जड प्रकृति के परमाणुओं से बने हुए हैं और चित्त चेतना का एक स्तर है जो कि शरीर और मन के साथ काम करता है। शरीर मन और चित्त सापेक्षता के सूत्र में बंधे होने के कारण परस्पर एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। आज मनोविज्ञान की एक नई शाखा विकसित हुई है जिसे व्यवहारवादी मनोविज्ञान कहते हैं। वे शरीर और चित्त को अलग-अलग नहीं मानते बल्कि उन्हें आपस में संबंधित और सापेक्ष मानते हैं। स्थूल व्यवहार का प्रभाव हमारे चेतन और अर्द्धचेतन मन पर पड़ता है जो कि हमारे मस्तिष्क की गहरी परतों में अंतर्निहित है। जैसे यदि मेरी आंखें लाल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



हो जाएँ, माथा तमतमाने लगे और मैं क्रोध की मुद्रा में आ जाऊं तो व्यवहारवादी मनोविज्ञानी कहते हैं कि इन क्रियाओं का हमारे मन पर प्रभाव आता है और हमारे अर्द्धचेतन मन में क्रोध के भाव जागृत होने लगते हैं। ऐसे ही जब भीतर से अवचेतन मन अथवा अर्द्धचेतन मन में दबी हुई संवेदनाएं या वेग किसी बाहरी परिस्थिति या स्मृति के कारण जागृत होते हैं तो वे हमारे शरीर पर भी प्रभाव डालते हैं। इसलिए शरीर और मन दो न होकर एक ही चैतन्य प्राणी (living Organism) के भाग हैं। इन दोनों को अलग-अलग नहीं किया जा सकता। कई बार हम कुछ कहना या करना नहीं चाहते लेकिन हमारे (अनकानशियसमाइंड) अवचेतन मन में वेग इतना प्रबल होता है कि वह हमारे चेतन मन को काबू कर लेता है और हमारे न चाहने पर भी वह कर्म हमसे हो जाता है। इसलिए केवल बाहरी रूप से अंतर्मन के वेगों का नियंत्रण संभव नहीं है। चित्त पर मल, विक्षेप और आवरण की धूल संस्कारों के रूप में पड़ी हुई है जो उसका अवरोध करती है। यदि इसको वहां से साफ नहीं किया जाए तो केवल बाहर की सफाई से काम नहीं हो सकता। इसलिए संतों ने कहा है—निकालनी थी बिल्ली और घुसेड़ लिया ऊंट। अंतःकरण में पड़े हुए संस्कारों को अंतरमुखता से साफ करना था। लेकिन प्रवृत्ति के द्वारा, भोगों की लालसा के द्वारा अपने अंदर संस्कारों के ऊंट को घुसेड़ लिया।

साधारणतः व्यक्ति व्याधि, आधि और उपाधि से घिरा हुआ है। त्रि-तापों से पीड़ित मानव इस संसार में क्या केवल दुख भोगने के लिए ही जन्म लेता है? धर्मशास्त्रों में मानव शरीर की महिमा अनंत रूपों से गाई गई है लेकिन जब हम इस संसार में रहते हुए लोगों को देखते हैं तो सभी दुखी, विकृत और परेशान से दिखाई देते हैं। कोई शारीरिक कष्टों से पीड़ित है तो कोई मानसिक रोगों से ग्रसित है। कोई सामाजिक परिस्थितियों से दबा हुआ है तो कोई आर्थिक अभाव से पीड़ित है। सभी लोग तनाव का जीवन जी रहे हैं। किसी के जीवन में सहज आनंद और संगीत नहीं है। "नानक दुखिया सब संसारा" की उक्ति सही प्रतीत होती है। क्या यही मानव की नियति है और इसी के लिए मानव शरीर की इतनी महिमा गाई गई है? कई बार प्रकृति के सौंदर्य को, पक्षियों के चहचहाने को और जंगल के जानवरों की निश्चितता को देखकर व्यक्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


विस्मय में पड़ जाता है कि क्या भगवान ने सारी विकृति और कुरूपता, चिंता और उद्वेग, दुख और तनाव इन्सान के लिए ही बनाए हैं?

वर्तमान युग में घनी आबादी वाले नगरों में यातायात, महंगाई, दैनिक आवश्यकताओं के पदार्थों की कठिनता से उपलब्धि, जल और वातावरण-प्रदूषण आदि समस्याओं के कारण व्यक्ति का जीवन निरंतर तनावपूर्ण बनता जा रहा है। अनेक लोग और विशेषकर नवयुवक निराश होकर नशीली वस्तुओं एवं मादक पदार्थों में जैसे शराब, स्मैक, एल.एस.डी. आदि में इनका समाधान ढूंढने का व्यर्थ प्रयत्न करते हैं। इससे समस्या और जघन्य होती जा रही है। अनेक प्रकार के असाध्य रोग, पागलपन और प्रतिवर्ष आत्म-हत्या की संख्या में वृद्धि होती जा रही है।

व्यक्ति की साधारण स्थिति बड़ी सोचनीय है और वह नारकीय जीवन जीता है। यद्यपि उसमें शाश्वत और अनंत सुख को, अनंत ज्ञान और अनंत शक्ति को प्राप्त करने की इच्छा है किन्तु व्यावहारिक जीवन उसका बिलकुल उसके विपरीत होता है। व्यक्ति यदि चाहे तो क्या इस आधि, व्याधि और उपाधि के जीवन से मुक्त होकर आनंद और सुख का जीवन व्यतीत कर सकता है या नहीं? क्या वह नियति से पूरा बंधा हुआ है या वह अपने आप को बदल सकता है? परिस्थितिवादी ऐसा मानते हैं कि व्यक्ति परिस्थिति के अधीन है और वह अपने आप को बदल नहीं सकता। उसे अपने को बदलने की बहुत कम स्वतंत्रता और क्षमता है किन्तु अध्यात्मवादी का यह अभिमत है कि चैतन्य प्राणी होने के नाते व्यक्ति को कर्म की स्वतंत्रता है और मानव में बदलने की क्षमता भी है क्योंकि व्यक्ति में चुनाव की क्षमता और स्वतंत्रता होती है। वह अपने आपको विकसित व अपना रूपांतरण कर सकता है। यही साधक के रूप में मानव की गौरव गरिमा है कि वह कर्म के द्वारा, साधना के द्वारा यदि चाहे तो असंभव को भी संभव कर सकता है क्योंकि मानव शरीर कर्मयोनि भी है और भोगयोनि भी है। परम आनंद, परम सुख और परम ज्ञान की संभावना केवल मानव ही चरितार्थ कर सकता है यदि साधक के रूप में उसकी संकल्पशक्ति दृढ़ हो। ऋषियों ने कहा है कि जिसके निश्चय में छिद्र नहीं है वह इस संसार में क्या नहीं कर सकता है? मानव की इसी क्षमता को देखते हुए उपनिषदों के ऋषियों ने मानव को आह्वान दिया—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



**उत्तिष्ठत, जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधयत्।**

मानव प्राणी चेतन है, उसमें चैतन्य है, आनंद है और शक्ति है। यह त्रिपुटी उसका निज-स्वभाव है। जो इनको प्राप्त कर लेता है वह अपने आप को जान लेता है। अपने सहज स्वभाव में स्थित हो जाता है, ध्यानस्थ हो जाता है, समाधि को प्राप्त कर लेता है। अचेतन में चैतन्य नहीं है। जड़ में आनंद कहां? उसमें शक्ति है किन्तु स्वतंत्रता से जिसका प्रयोग किया जा सके वह शक्ति नहीं है। प्राणी में आनंद, चैतन्य और स्वतंत्रता से प्रयोग की जाने वाली शक्ति है। यही व्यक्ति का अस्तित्व है, स्वभाव है। फिर प्रश्न उठता है कि यदि प्राणी चैतन्य है तो फिर यह आवरण क्यों? सीमाएं क्यों? क्योंकि चैतन्य तो अनंतता का गुण लिए हुए है फिर यह क्यों होता है कि कुछ तो व्यक्ति जानता है और कुछ नहीं जानता। चैतन्य है लेकिन बीच में यह पर्दा कहां से आ गया? व्यक्ति स्थूल को तो जान लेता है पर सूक्ष्म को नहीं जान पाता। नजदीक को तो देख लेता है पर दूर को नहीं जान पाता। जो आंख की रेंज में है उसे देख सकता है, जो आंख से परे है उसे नहीं देख पाता। चैतन्य होने पर भी वह देश काल की सीमा से बंधा हुआ क्यों है? इंद्रिय ज्ञान की सीमा, मन की सीमा, चित्त की सीमा, बुद्धि की सीमा सभी प्रकार के ज्ञान की सीमाएं हैं, ये क्यों? ये आवरण कैसे मिटें? जब सुख है, आनंद है तो बाधा क्यों? रोग हो गया, सुख नहीं रहा। मन की उलझन कोई आई, सुख नहीं रहा। मानव का सुख निर्बाध क्यों नहीं है? न चाहने पर भी यह दुख कहां से आता है? मानव में शक्ति है लेकिन यह शक्ति स्खलित क्यों हो जाती है? एक काम करने की शक्ति है तो दूसरे काम करने की शक्ति क्यों नहीं है? सभी कलाओं में मानव क्यों नहीं पूर्ण हो जाता? इसलिए यह प्रश्न सहज में उठता है कि चैतन्य पर आवरण क्यों? आनंद में बाधा क्यों? शक्ति में स्खलन क्यों?

गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है कि—

**घट में है सूझे नहीं लानत ऐसी जिन्द ।**
**तुलसी या संसार को भयो मोतिया बिन्द ।।**

परम चैतन्य, परम ज्ञान, परम आनंद और परम शक्ति मानव के भीतर लहरें मार रही हैं, लेकिन फिर भी इनसान दुख से कराह रहा है, यह कैसी विडम्बना, यह कैसी भूलभुलैया? पारसमणि पास होते हुए भी व्यक्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



कंगाल है। मानव की इस सोचनीय स्थिति को दर्शाते हुए कबीर एक भजन में कहते हैं—

**पानी में मीन पियासी मोहे सुन सुन आवे हाँसी।।**

एक बहुत सुन्दर रूपक है। देवताओं ने असुरों से युद्ध किया तो आनंद का घट उनके हाथ लग गया। उन्होंने सोचा—इसे रखें कहां? आनंद का घट खुले में तो रखा नहीं जा सकता। अगर वह असुरों के हाथ लग गया तो वे आनंद में मग्न हो जाएंगे। असुरों से बचाकर रखना है तो कहां रखें? खोजते-खोजते उन्हें जब कोई अनुकूल स्थान नहीं मिला तो उन्होंने खोजा एक सुरक्षित स्थान और वह था मनुष्य का हृदय। वह सुरक्षित क्यों है? मनुष्य और सब कुछ देखता है, अपने हृदय को नहीं देखता। इसलिए यह स्थान सबसे अधिक सुरक्षित है। देवताओं ने आनंद का घट लाकर मनुष्य के हृदय में रख दिया।

मनुष्य और सब कुछ खोजता है, ढूंढ़ता है, भटकता है परंतु अपने हृदय को नहीं खोजता। इसलिए आनंद का घट आज भी सुरक्षित वहीं का वहीं पड़ा है। यह रूपक हो सकता है परंतु इसका तात्पर्य यह है—आनंद का घट आज भी हमारे हृदय में सुरक्षित है। यह हमारे आनंद का केन्द्र है और इस स्थान पर ध्यान करने से आनंद की अभिव्यक्ति होती है, आनंद प्रकट होता है।

श्रेय और प्रेय का मार्ग, योग और भोग का मार्ग, अ-मन और मन का मार्ग बंधन और मोक्ष का मार्ग सदैव हर प्राणी के सामने आते हैं और मनुष्य की स्वतंत्रता इतनी विकसित है कि वह अपने मार्ग का चुनाव कर सकता है। यदि वह चाहे तो व्याधि आधि और उपाधि का जीवन जी सकता है और यदि वह चाहे तो इनसे मुक्त भी हो सकता है। अपने कर्म के द्वारा ही व्यक्ति अपने आप को सुख और दुख देता है। सामाजिक परिस्थितियां निमित्त हो सकती हैं पर मूलतः प्रकृति की सारी व्यवस्था, सुख और दुख की सारी व्यवस्था कर्म के सिद्धांत पर ही आधारित है।

**कर्म प्रधान विश्व रचि राखा ।**
**जो जस करहिं सो तस फल चाखा।।**

साधारणतः व्यक्ति आधि, व्याधि और उपाधि का जीवन व्यतीत नहीं करना चाहता लेकिन अपनी वासना और इच्छा के वशीभूत होकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अज्ञानवश और मिथ्या दृष्टि के कारण वह ऐसे कर्म करता है जो अंततोगत्वा उसे भवसागर में डाल देते हैं। यदि उसमें राग-द्वेष न हो, इच्छा न हो, माया न हो, मेरी और तेरी, प्रिय और अप्रिय की भावना न हो तो वह इन त्रि-तापों से मुक्त होकर अपनी सहज आनंदमय स्थिति में रह सकता है। चाह या काम ही सब दुखों का मूल कारण है। काम, क्रोध, लोभ के वशीभूत व्यक्ति मूर्च्छित और अज्ञान का जीवन जीता है जो कि चेतना के प्रकाश को आवृत्त कर देता है। राग और द्वेष ही मानव को सुख-दुख के झूले में झुलाते रहते हैं।

मानव जीवन का लक्ष्य और ध्येय यही होना चाहिए कि अज्ञान मिटे, मूर्च्छा मिटे और हमारी सक्रियता, हमारे वीर्य और पराक्रम की ज्योति जो बुझी पड़ी है वह प्रज्ज्वलित हो उठे। माया के संस्कारों के कारण हमारी चेतना मलिन हो रही है, आवृत्त हो रही है। जब चेतना मलिन हो रही है तो सूक्ष्म शरीर में ऐसी व्यवस्था है कि स्थूल शरीर में जितने केन्द्र बने हैं वे केन्द्र भी मलिन बने हुए हैं। हमारी चेतना मोह में ग्रसित है, मूर्च्छित है, इसलिए हमारा आनंद का केन्द्र भी मूर्च्छित है, सोया पड़ा है। अनंत आनंद का सागर भीतर में लहरा रहा है। हम इसका एक कण भी उपलब्ध नहीं कर पा रहे हैं।

**आनन्द सिंधु मध्य तब बासा, बिन जाने कत मरत पियासा।**

आनंद का केन्द्र भीतर मौजूद है पर वह उद्घाटित नहीं हो रहा। हमारी असीम शक्ति है पर इतना अवरोध है कि वह शक्ति काम नहीं कर रही है, अभिव्यक्त नहीं हो रही है। ध्यान-साधना के द्वारा एक साधक या ध्याता अपने चैतन्य केन्द्र को निर्मल कर सकता है, जगा सकता है। शरीर-शास्त्र की भाषा में जब एड्रिनल ग्रंथि के आस-पास चेतना काम करती है तब व्यक्ति में कामवासना की वृत्तियां जागतीं हैं। जब तक एड्रिनल सक्रिय नहीं होता तब तक ये वृत्तियां नहीं जाग सकतीं। मनुष्य का चित्त ज्यादा नाभि के नीचे ही काम करता है, ऊपर काम नहीं करता, ऊपर नहीं रहता। उसे पता ही नहीं कि नीचे रहने से क्या होता है। हम इस सच्चाई को जान लें कि चित्त को अधिक से अधिक हृदय के ऊपर, कण्ठ से ऊपर सिर तक रखना लाभदायक होता है। इससे हमारी वृत्तियां बदल सकती हैं, स्वभाव बदल सकता है, व्यवहार बदल सकता है और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



चरित्र बदल सकता है। यह बहुत बड़ा रहस्य है व्यवहार और आचरण को बदलने का, स्वभाव और आदतों को बदलने का। चित्त का यह स्वभाव है कि वह सिर से लेकर पैर तक चक्कर लगाता है कभी ऊपर, कभी नीचे। कभी हमें अचानक हिंसा की स्मृति आ जाती है, कभी घृणा का विचार आ जाता है, कभी अच्छा विचार जाग जाता है और कभी ऐसी परमार्थ की भावना आ जाती है कि सब कुछ त्यागने की इच्छा हो जाती है। ऐसा क्यों होता है? वृत्तियां क्यों बदलती हैं? कौन अंदर बैठा इनको बदल रहा है? यह चित्त ही है। चित्त की यात्रा जब-जब होती है और चित्त जिस ग्रंथि से, जिस केन्द्र से, जिस साइकिक सेंटर से स्पर्श करता है, जिसके साथ संपर्क करता है, जिसके साथ लीन होता है, उस समय उसी का रूप धारण कर लेता है। चित्त के इस स्वभाव को जान लेने के बाद साधक का रास्ता बहुत सीधा हो जाता है। जो साधक अपने स्वभाव और चरित्र को बदलना चाहता है उसके लिए बहुत आवश्यक है कि वह उन चैतन्य केन्द्रों पर चित्त को स्थिर करे जो हमारे स्वभाव, आचरण का नियंत्रण कर रहे हैं। विशुद्धि केन्द्र, ज्योति केन्द्र, दर्शन केन्द्र, शांति केन्द्र, ये केन्द्र हमारे व्यवहार को पवित्र बनाते हैं और असत् आचरण पर नियंत्रण करते हैं। आज्ञा चक्र ही ज्योति केन्द्र और ज्ञान केन्द्र है। यही ध्यान या दर्शन केन्द्र माना गया है। इसे ही तीसरा नेत्र भी कहा गया है। ये केन्द्र सारा शासन कर रहे हैं किन्तु जब तक इनकी आराधना नहीं होती, हमारा ध्यान इन पर केन्द्रित नहीं होता, इन्हें हम सक्रिय नहीं बना लेते तब तक ये हमारा पूरा सहयोग नहीं करते। इसलिए एक साधक को सदैव अपने चित्त को ऊर्ध्वमुखी बनाना चाहिए, अधोमुखी नहीं। यह इतना बड़ा रहस्य है कि इसे जान लेने पर समूचा व्यक्तित्व बदल जाता है। इसे जाने बिना आदमी असली आदमी नहीं बनता, नकली आदमी ही रह जाता है।

एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण होना चाहिए जो शक्ति सपन्न, चेतना संपन्न और आनंद संपन्न हो। ऐसा व्यक्ति मिलना बहुत कठिन है जो इस त्रिपुटी से संपन्न हो। पशु में शक्ति बहुत होती है परंतु वह अपनी शक्ति का उपयोग नहीं कर सकता क्योंकि उसकी चेतना विकसित नहीं है। उसकी शक्ति का उपयोग भी मनुष्य करता है, क्योंकि उसकी चेतना विकसित है। शारीरिक शक्ति की अपेक्षा बुद्धि बड़ी होती है। जिसके पास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



बुद्धि है उसके पास बल है। मनुष्य के पास शक्ति है, चेतना है किन्तु उसके पास आनंद नहीं है। मनुष्य अपनी चेतना के द्वारा शक्ति का उपयोग करता है किन्तु वह भी शक्ति का सम्यक् उपयोग करना नहीं जानता है। इस शक्ति के दुरुपयोग के कारण वह कभी स्वयं दुखी होता है और कभी दूसरों को दुखी करता है। मनुष्य में चेतना का विकास है पर वह उसका सही उपयोग एवं मार्गीकरण नहीं करता। इसलिए आनंद को उपलब्ध नहीं होता। पशु के लिए परमानंद का प्रश्न ही नहीं उठता। जिसमें चेतना का विकास नहीं होता उसमें आनंद को अनुभव करने की क्षमता भी नहीं होती।

ध्याता के रूप में व्यक्ति ध्यान के द्वारा अपनी चेतना का इस प्रकार नियोजन कर सकता है जिससे कि सारी शक्ति आनंद की दिशा में प्रवाहित हो और वह आनंद को उपलब्ध हो सके। आनंद का बाधक तत्व है शक्ति और आनंद का साधक तत्व भी है शक्ति। ऊर्जा ही बाधा है और ऊर्जा ही साधक सामग्री है। यदि ऊर्जा को, शक्ति को ठीक दिशा में प्रवाहित किया जाय तो आनंद प्राप्त होता है और शक्ति को विपरीत दिशा में प्रवाहित किया जाय तो आनंद नष्ट हो जाता है। मूल प्रश्न है ऊर्जा के प्रवाह का। किस दिशा में शक्ति प्रवाहित करना है यह जानना ध्याता के लिए बहुत आवश्यक है। इसलिए अध्यात्मवादी और भौतिकवादियों में ऊर्जा के प्रवाहित करने की दिशा में ही मतभेद है। एक प्राण ऊर्जा को अंतर्मुखी और ऊर्ध्वमुखी बनाते हैं और दूसरे अधोमुखी और बहिर्मुखी बनाते हैं। सांसारिक और भौतिकवादी लोग राग-द्वेष से प्रेरित होकर सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति में और विषयों की पूर्ति में अपनी शक्ति को लगाते हैं। जब हमारी ऊर्जा काम-केन्द्र की ओर प्रवाहित होती है तो काम उभर आता है। जब क्रोध की दिशा में प्रवाहित होती है तो क्रोध उभर आता है क्योंकि हमारे शरीर में क्रोध के केन्द्र हैं, काम-वासना के केंद्र हैं, ज्ञान के केन्द्र हैं। ऊर्जा जिस केन्द्र की ओर प्रवाहित होती है वह केन्द्र सक्रिय हो जाता है और वही प्रवृत्ति उभरकर सामने आ जाती है।

ध्यान है माध्यम ऊर्जा के रूपांतरण का, ऊर्जा को ऊर्ध्वमुखी बनाने का, उसकी दिशा को बदलने का और जैसे ही ऊर्जा का प्रवाह बाहर से अंदर को और नीचे से ऊपर को होने लगता है, वैसे ही ध्याता का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



रूपांतरण होने लगता है। ध्यान मानव की अंतर चेतना का निज स्वभाव है। ध्यानहीन व्यक्ति ही दिशा हीन व्यक्ति है। और दिशाहीन व्यक्ति ही विकृत है। विकृत व्यक्ति परलोक में तो क्या इस लोक में भी सुख और शांति का जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। व्यक्ति के जीवित और विकसित होने के लिए जैसे पानी, हवा, रोटी, कपड़ा व मकान चाहिए वैसे ही ध्यान भी व्यक्ति की मूल आवश्यकता है। राजनीतिज्ञों ने केवल रोटी, कपड़ा और मकान को मनुष्य की मूल आवश्यकताएं मानकर बहुत बड़ी भूल की है। क्योंकि यदि हम बहुत गहराई में देखें तो क्राइस्ट की यह उक्ति सत्य प्रमाणित होती है कि आदमी केवल रोटी से ही जीवित नहीं रहता। पूर्ण विकसित और जीवित प्राणी के लिए जैसे रोटी आवश्यक है वैसे ही ध्यान भी उसकी मूल आवश्यकता है और जब-जब मानव-समाज ध्यान से च्युत हुआ, ध्यान से दूर हुआ तब-तब ही हिंसा, मानसिक विकृति और पशुता का ताण्डव नृत्य इस समाज में बढ़ा है। मानव को त्रि-तापों से मुक्त करने के लिए बाहरी उपचार उपयोगी हो सकते हैं लेकिन वह अपने आप में पर्याप्त नहीं हैं, जब तक कि इनके समाधान का हमारे भीतर ही अंतर्निहित जो नैसर्गिक उपाय विद्यमान है उसका प्रयोग न किया जाए। वह है ध्यान की नैसर्गिक प्रक्रिया। यदि हर व्यक्ति अपने भीतर विद्यमान आत्मशक्ति का ध्यान के माध्यम से सही विकास कर ले तो वह अपने आप को मानसिक एवं शारीरिक व्याधियों एवं तनावों से मुक्त कर सकता है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने ध्यान की शक्ति को न केवल स्वीकार किया है बल्कि उसे वैज्ञानिक आधार भी दिया है। शरीर विज्ञान एवं मनोविज्ञान के नवीनतम् विकास के माध्यम से अब हम यह जानने लगे हैं कि भावनात्मक भय, घृणा, क्रूरता और ऐसी अन्य पाशवी-वृत्तियों का मूल स्रोत क्या है। ग्रंथि-तंत्र और नाड़ी-तंत्र की संयुक्त प्रणाली का प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक दशाओं और वृत्तियों पर प्रगाढ़ प्रभाव पड़ता है। अब वैज्ञानिक और चिकित्सा-शास्त्री भी मानते हैं कि ध्यान के द्वारा इन भीतरी प्रणालियों को प्रभावित किया जा सकता है, जिनके द्वारा व्यक्तित्व का रूपांतरण हो सकता है। इसलिए ध्यान अब केवलमात्र रहस्यात्मक, एक धार्मिक क्रिया या अंध मान्यता ही नहीं रह गई है बल्कि एक वैज्ञानिक पद्धति है जो एक व्यक्ति को तलहटी से उठाकर व्यक्तित्व के शिखर तक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



पहुंचा सकती है।

## ध्याता अथवा साधक के लक्षण

अध्यात्म के रहस्यों को, आंतरिक चेतना को और परम आनंद को जो अपने अंदर उद्घाटित करना चाहता है उसी का मानव शरीर सार्थक है। जिसमें ज्ञान को प्राप्त करने की तीव्र अभीप्सा है, जो ब्रह्म जिज्ञासा से ओत-प्रोत है वही व्यक्ति ध्यान के मार्ग पर चल सकता है। जिसकी जिज्ञासा कुण्ठित है, आस्था विचलित है और विश्वास अटल नहीं है वह अंधकार के जगत् को चीरकर आत्मा के आलोक को प्राप्त नहीं कर पाता। भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं कि हजारों में से कोई एक इस ज्ञान के मार्ग की ओर अग्रसर होता है, उन हजारों में से कोई एक इस पर दृढ़ता से चलता है और उन हजारों में से कोई एक इसमें पूर्णत्व को प्राप्त करता है। ध्यान का मार्ग सहज होते हुए भी इस पर व्यक्ति क्यों नहीं चल पाता, क्योंकि उसकी अनेक जन्मों की प्रवृत्ति बहिर्मुखी है। यद्यपि ध्यान का मार्ग सबसे सहज और सरल है लेकिन फिर भी यह माया की विडम्बना है कि जो व्यक्ति के बिलकुल पास है, उसकी अंतरात्मा में निहित है वह उसी से दूर रहता है। कबीर साहब ने कहा है—"घट में है दूर बतावें, दूर की बात निरासी" इसलिए ध्याता का पहला लक्षण है तीव्र जिज्ञासा, दृढ़ संकल्प और सतत विवेक। जो ध्याता मानव शरीर की गौरव गरिमा को नहीं जानता, जिस ध्याता का दृढ़ निश्चय नहीं है और जिसका अनुराग विषयों के प्रति है वह ध्यान के मार्ग में सुगमता से नहीं चल पाता। इसलिए आत्म-निरीक्षण की परम आवश्यकता है। ये सारे लक्षण ध्याता में तब पैदा होते हैं जब उसे सत्संगति और स्वाध्याय प्राप्त होता है। इसलिए ध्याता को सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए कि वह सत्संग के द्वारा अपनी आस्था को, अपने विवेक को सशक्त बनाता रहे। आदि गुरु शंकराचार्य जी ने तीन वस्तुओं को दुर्लभ माना है—मानव शरीर की प्राप्ति, सत्पुरुषों की संगति और ब्रह्म-जिज्ञासा।

शरीर से मोह बड़ा सहज और स्वाभाविक है। सच तो यह है कि शरीर के अतिरिक्त मेरा कोई और भी अस्तित्व है यह भाव व्यक्ति में गहरा नहीं होता! ध्याता का यह लक्षण है कि वह शरीर की अनित्यता को ठीक प्रकार से समझे और उसकी अंतरात्मा की गहराइयों में यह भाव दृढ़

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



हो कि शरीर और शरीर से संबंधित सारे रिश्ते अनित्य हैं, नश्वर हैं, आने और जाने वाले हैं। महात्मा बुद्ध ने कहा कि जो कुछ भी दृश्य है वह शाश्वत नहीं है, प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहा है, सब क्षणिक है। साधक की विवेक दृष्टि यदि खुल जाय तो उसे सत्य का दर्शन संसार का प्रत्येक पदार्थ दे सकता है। मन पर मैल तब जमता है जब हम अनित्य को नित्य मानकर चलते हैं। जो संयोग मिला है उसका निश्चित ही वियोग होगा।

ध्याता को शरीर के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण रखना चाहिए क्योंकि इसी शरीर के माध्यम से वह परम सत्य को प्राप्त कर सकता है। इसलिए शरीर की शक्ति का व्यर्थ व्यय न करें, दुरुपयोग न करें। जहां तक हो सके उसे संयमित करने का प्रयत्न करें।

अनित्य अनुप्रेक्षा अर्थात संसार की नश्वरता का चिंतन एक प्रयोग है श्रुत ज्ञान का, आत्मज्ञान का। जब श्रुत ज्ञान की लगाम हाथ में होती है तो मन का घोड़ा दुख नहीं देता। श्रुत ज्ञान के द्वारा हमें मन को एकाग्र करना है, मन को वश में करना है। हम मन के दास न बनें बल्कि मन को अपना दास बनाएं। जो मन में आया वह करने वाला मन का दास होता है। जब विवेक की लगाम हाथ से छूट जाती है तब आदमी आंखों वाला होकर भी अंधा हो जाता है और मन की स्थिति विचित्र बन जाती है। इसलिए आत्मचिंतन, आत्मबोध और विवेक को एक ध्याता सदैव जागृत रखता है ताकि वह मन के घोड़े को सत्य के मार्ग पर चला सके। अपने विषय में जानना, सोचना, अपने बारे में चिंतन करना, गहराई में उतरकर अपने आप को अनुभव करना यह है अनुप्रेक्षा।

ध्याता को भाव और श्रद्धायुक्त होना चाहिए। जब तक व्यक्ति में श्रद्धा जागृत नहीं होती वह ज्ञान का पात्र नहीं हो पाता। "श्रद्धावान् लभ्यते ज्ञानम्" जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वैसी ही उसकी आस्था होती है। श्रद्धा और आस्था के अनुरूप ही ध्यान फलित होता है। इसलिए भावना से भावित होना आवश्यक होता है। ज्ञानदाता गुरु ही वह भाव्य पुरुष है जिसके प्रति तन्मय और एकाग्र भाव होना श्रद्धा कहलाती है। भावित आत्मा आश्रित आत्मा हो जाती है और आश्रित आत्मा होने के बाद जो होना होता है वह हो जाता है। यह सारा एकाग्रता का चमत्कार है। तन्मयता और एकाग्रता के साथ ध्याता जो भी भावना करता है वह वैसा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



ही हो जाता है। इसलिए ध्याता को भावना और संकल्पवान होना चाहिए। भावना हमारी चेतना को और वातावरण को बदलती है। भावना के द्वारा हमारी चेतना बदलना शुरू कर देती है। इसके द्वारा हम आदतों को बदल सकते हैं। जटिल से जटिल आदतों को भावना के द्वारा बदला जा सकता है। जापान में ध्यान-संप्रदाय ज़ेन (Zen) के साधक भावना के अनेक प्रयोग करते हैं। अखाड़े में निहत्थे उतरकर खूंखार बैल के साथ लड़ते हैं और उसे परास्त कर भूमि पर पटक देते हैं क्योंकि उनकी दृढ़ भावना और विश्वास होता है कि मैं बैल को अवश्य परास्त करूंगा। भावना दूसरों तक पहुंचाई जा सकती है। दूसरों पर भी उसका प्रभाव डाला जा सकता है। दूसरों की कठिनाइयों को शांत करना, रोग मिटाना, हृदय परिवर्तन करना, दूसरों के विचारों को बदलना ये सारे भावना के ही प्रयोग हैं। भावना के माध्यम से अपने को बदला जा सकता है, दूसरे को बदला जा सकता है, आस पास के व्यक्ति को बदला जा सकता है, वातावरण को बदला जा सकता है। भावना आत्मा की विधायक शक्ति है।

ध्याता को अपने अस्तित्व में ही विश्वास रखना चाहिए। जिसका अपने पर विश्वास नहीं वह दूसरों पर विश्वास नहीं कर सकता। बहिर्मुख-मनुष्य अपूर्ण है। वह बाह्य वस्तुओं के द्वारा पूर्ण होने का प्रयत्न करता है। उसे दुख, अशांति, दरिद्रता आदि अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उनके ऊपर विजयी होने के लिए वह दूसरों का सहारा ढूंढ़ता है। सामाजिक जीवन में दूसरों की सहायता तात्कालिक होती है। ध्याता को अपने पुरुषार्थ पर भरोसा रखना चाहिए। व्यक्ति धन, परिवार, स्त्री, पुत्र, मित्र, मकान आदि सब में सहारा ढूंढ़ता है लेकिन धर्म कहता है कि क्यों व्यर्थ ममत्व और पाप का संग्रह करते हो? अपनी ही शरण में जाओ, अपनी आत्मा को ही आधार बनाओ।

जड़ और चेतन दोनों सदा विद्यमान रहते हैं और नाना रूपों में प्रगट होते रहते हैं। भगवान कृष्ण गीता में अर्जुन को समझाते हैं कि ऐसा कोई समय नहीं था जब मैं नहीं था या तुम नहीं थे या ये दूसरे योद्धा लोग नहीं थे। जीव अनेक योनियों में जन्मता है और अनेक अनुभवों में से गुजरता है। मनुष्य यदि यह अनुभव कर ले कि ऐसी कोई योनि नहीं है जहां मैं जन्मा नहीं हूं और फिर मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ हूं तो इस संसार के प्रति उसमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



उदासीनता की भावना जागृत होती है और वह अपनी चेतना की ओर विकसित होने लगता है। आत्मा का मौलिक स्वरूप चेतना है। उसके दो उपयोग हैं—देखना और जानना। हमारी चेतना शुद्ध स्वरूप में हमें उपलब्ध नहीं है, इसलिए हमारा दर्शन और ज्ञान ढका हुआ है। यह आवरण अपने ही मोह के द्वारा डाला हुआ है। हम केवल जानते और देखते ही नहीं हैं बल्कि उसके साथ-साथ प्रियता या अप्रियता का भाव भी जोड़ देते हैं जो राग-द्वेष को जन्म देते हैं। राग और द्वेष मोह को उत्पन्न करते हैं। मोह ज्ञान और दर्शन को अवरुद्ध करता है,जो लोग स्वयं अपने मोह को तोड़कर जागृत नहीं होते उन्हें श्रद्धा के बल पर जागृत करने का प्रयत्न किया जाता है। भगवान महावीर ने कहा—तुम्हारा दर्शन तुम्हारे ही मोह के द्वारा ढका हुआ है। इसलिए तुम सत्य को देख नहीं पा रहे हो। उसके लिए तुम उस पर श्रद्धा करो जो द्रष्टा है, तत्वदर्शी है और जो उसके द्वारा बताया जा रहा है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अकेला जीवन नहीं जी सकता। सामाजिक प्राणी सहयोग लेता है और सहयोग देता है क्योंकि इस सहयोग के आदान-प्रदान से समाज चलता है किन्तु सामाजिक जीवन जीते हुए भी ध्यान करने वाला साधक इस सच्चाई को नहीं भूलता कि अंततः व्यक्ति अकेला है। अकेला ही इस जगत् में आया है और अकेला ही इस जगत् से जाएगा। यह तो बीच-बीच का मेला है। जहां एकत्व भाव है वहां मोह कैसा और शोक कैसा? उपनिषदों का स्वर है—'तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः' जो एकत्व को देखता है उसे क्या मोह होगा और क्या शोक होगा?

समाज में रहना हमारी व्यावहारिक सच्चाई है। हम उसका अतिक्रमण नहीं कर सकते किन्तु इस वास्तविकता को भी नहीं भूल सकते कि अंततः आत्मा इन सबसे भिन्न है और अकेली है। अध्यात्म का महान सूत्र है—समूह में रहते हुए भी एकांत का अनुभव करना। एक ध्याता को आंतरिक और बाहरी शुद्धि पर सदैव ध्यान देना चाहिए। अंतःकरण की शुद्धि पर्याप्त नहीं है, बाहरी व्यवहार भी शुद्ध होना चाहिए। वह अंतस् का प्रतिफल है। केवल बाहरी व्यवहार का शुद्ध होना ही पर्याप्त नहीं है। अंतस् की शुद्धि के बिना वह कोरा दमन बन जाता है। इसलिए अंतस् और बाहर दोनों की शुद्धि धार्मिक जीवन की पूर्णता है। एक साधक को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अंतर्मुखी होना चाहिए। जो केवल बाहर के विषयों में रस लेता है वह ध्यानस्थ नहीं हो सकता। जिसे एकांत में रहने की सहज वृत्ति हो वही ध्यान के संस्कार अपने अंदर बटोर सकता है। जो सदैव बाहरी वातावरण में ही व्यस्त रहता है वह आत्मचिंतन के योग्य नहीं है। साधारणतः हम देखते हैं कि व्यक्ति कुछ पल भर के लिए भी अकेला रहना पसंद नहीं करता। वह अकेलेपन में बोरियत महसूस करता है, बेचैन हो जाता है। यदि किसी व्यक्ति को बहुत दिनों के लिए बिलकुल अकेला रख दिया जाय तो वह पागल तक हो सकता है। जो अंदर से खाली हैं और जिनका अंतर अंधकार से भरा हुआ है वह बाहर के उजाले और बाहर की रौनक से ही जीवित रहते हैं पर जिनके अंदर आत्मा का प्रकाश जागृत होता है या उसे प्राप्त करने की अभीप्सा होती है वे अकेले में ही आनंदित होते हैं। व्यक्ति के मस्तिष्क में विचारों की भीड़ है। यदि वह जंगल में भी चला जाए तो भी वह अकेला नहीं हो पाता। इस संसार में जो अकेला हो सकता है, अपने में आनंदित हो सकता है वही कैवल्य पद को प्राप्त कर पाता है।

एक साधक को वर्तमान क्षण में जीने की आदत डालनी चाहिए। अतीत बीत गया, भविष्य अज्ञात है, अभी आया नहीं है। जीवित क्षण वर्तमान होता है। जो भविष्य की चिंता में और अतीत की स्मृति में इस क्षण की संपदा को खो देता है वही सबसे बड़ा मूरख है। भगवान महावीर ने कहा—तुम इस क्षण को जानो। अतीत के संस्कारों की स्मृति से भविष्य की कल्पनाएं और वासनाएं होती हैं। वर्तमान क्षण का अनुभव करने वाला स्मृति और कल्पना दोनों से बच जाता है। स्मृति और कल्पना राग-द्वेषयुक्त चित्त का निर्माण करती है। जो वर्तमान क्षण का अनुभव करता है वह सहज ही राग-द्वेष से बच जाता है। राग-द्वेष शून्य वर्तमान क्षण को जीने वाला अतीत में अर्जित कर्म संस्कार के बंध का निरोध करता है। इस प्रकार वर्तमान क्षण में जीने वाला अतीत का प्रतिक्रमण, वर्तमान संवरण और भविष्य का प्रतिख्यान करता है। वर्तमान को जानना और वर्तमान में जीना ही ध्यान है। यांत्रिक जीवन जीना, काल्पनिक जीवन जीना और कल्पना लोक में उड़ान भरना माया है। यह चित्त का विक्षेप है और साधना व ध्यान का विघ्न है।

ध्याता को अपनी इंद्रियों के प्रति सचेत होना चाहिए। यद्यपि इंद्रियां

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



बाहरी कर्म और ज्ञान की माध्यम हैं और मुख्य मन है क्योंकि विषयों के संपर्क से जो ज्ञान इंद्रियों के द्वारा प्राप्त होता है वह मन के द्वारा ही संभव है। इसलिए मन को समझे बिना इंद्रियों के साथ आने वाली मूर्च्छा को समाप्त नहीं किया जा सकता। मन ही राग-द्वेष और मूर्च्छा को जन्म देने वाला है। संयम एक साधक का सर्वोत्तम लक्षण है। जो मन, वाणी और इंद्रियों का संयम नहीं कर सकता वह कभी भी ध्यान में निपुणता प्राप्त नहीं कर सकता। संयम के द्वारा ही व्यक्ति अपनी शक्ति को जागृत कर सकता है। हमारे भीतर शक्ति का अनंत कोष है। उस शक्ति का बहुत बड़ा भाग ढका हुआ है! कुछ भाग सत्ता में है और कुछ भाग उपयोग में आ रहा है। शक्ति का जागरण संयम के द्वारा किया जा सकता है। हम अपने मन की अनेक मांगों को पूरा करते चले जाते हैं। फलतः हमारी शक्ति स्खलित होती जाती है। जागरण का सूत्र है—मन की मांग का अस्वीकार जिसका अर्थ है संकल्प शक्ति का विकास। यही संयम है। जिसका निश्चय, संकल्प और संयम दृढ़ होता है उसके लिए कुछ भी दुष्कर नहीं होता। जो अपने निश्चय में एकनिष्ठ होते हैं वे महान् कार्य सिद्ध कर लेते हैं। संयम एक प्रकार का कुम्भक है। कुम्भक में जैसे श्वास का निरोध होता है वैसे ही संयम में इच्छा का निरोध होता है। जब ध्येय के प्रति ध्याता पूरी तरह निष्ठावान होता है, एकाग्रचित्त होता है तो अपने आप संयम हो जाता है। फिर मन, वचन और शरीर की मांग आपको विचलित नहीं करेगी। मन, वचन और शरीर का संयम अपने आप सध जाएगा।

जब चैतन्य के प्रति ध्याता समर्पित होता है तो भीतर के प्रवाह और आवेग अपने आप शांत हो जाते हैं। मूढ़ता, मोह और विकृति, चैतन्य के साथ मन के वेगों के कारण ही जुड़ती हैं लेकिन यह चैतन्य का निज-स्वभाव नहीं है। साधना है चैतन्य का अनुभव, चैतन्य का ध्यान। जब चैतन्य का अनुभव होता है तब कोई आवेग हो नहीं सकता। इसलिए साधना-ध्यान का सूत्र है चैतन्य का सतत अनुभव।

ध्याता को धैर्यवान होना चाहिए। धृति वह तत्व है जो व्यक्ति के मन में सदाचार के प्रति आस्था को दृढ़ करता है। व्यक्ति कोई अच्छा काम करता है और शीघ्र ही उसका फल चाहता है, फल नहीं मिलता तो वह सदाचार छोड़ बैठता है। आज ही बीज बोया और आज ही उसका फल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



मिल जाय, ऐसे अधीर पुरुष ध्यान के योग्य नहीं हैं। साधना के मार्ग में जल्दबाजी खतरनाक होती है। धीरे-धीरे अभ्यास को बढ़ाना चाहिए। तभी कहा है कि—

**धीरे धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय ।**
**माली सींचे सौ घड़ा ऋतु आए फल होय ।।**

ध्याता को सरल हृदय होना चाहिए। ध्यान उसका लगता है जो सरल और पवित्र होता है। ईसा ने कहा है कि धन्य हैं वे लोग जो सरल और पवित्र हैं क्योंकि वे ही ईश्वर के साम्राज्य को प्राप्त कर सकते हैं। जो अंतरमन में कपट रखता है वह कभी ध्यान नहीं कर सकता। भारतीय परंपरा में हृदय की शुद्धि के लिए पाप की भावना से निवृत्त होने के लिए प्रायश्चित का कथन किया गया है। ईसाई धर्म में भी एक व्यक्ति यदि पाप करता है तो वह परमात्मा के सामने कनफेशन करता है जिससे वह शुद्ध हो जाता है। प्रायश्चित की पहली शर्त है कि व्यक्ति बच्चे जैसा सरल होकर अपने दोषों को गुरु के समक्ष रखे, बिना कुछ छिपाए गुरु को सब कुछ बता दे। फिर आगे गुरु जाने। फिर साधक को कोई चिंता नहीं रहती। कुछ भी छिपाओगे तो शुद्धि नहीं होगी और जिसकी शुद्धि नहीं होती उसमें धर्म नहीं टिक सकता। सरल आत्मा शुद्ध होती है और शुद्ध आत्मा में धर्म टिकता है। कपटी मनुष्य का मन कभी निर्मल नहीं होता। बच्चे का मन सरल होता है। इसलिए बच्चे को भगवान का रूप माना जाता है। सरलता सुई की तरह होती है। सुई सरल होती है इसलिए जोड़ती है, दो को एक करती है और कैंची टेढ़ी होती है इसलिए वह काटती है, एक को दो करती है। सरलता दो मनों को जोड़ती है। माया कैंची का काम करती है। लोगों के हृदयों के टुकड़े-टुकड़े कर डालती है।

ध्याता को अपने में अनासक्ति भाव को विकसित करना चाहिए। आवश्यकता पूर्ति एक बात है और आसक्ति दूसरी बात है। अपने जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना यह तो अनिवार्यता है किन्तु पदार्थों के प्रति आसक्त हो जाना अनिवार्य नहीं है। यह तो मोह है और मोह ही सब दुखों का कारण है। जीवन सुख और दुख का सम्मिश्रण है। व्यक्ति इनसे बच नहीं सकता लेकिन सुख और दुख की होने वाली इन घटनाओं से जो दुखद संवेदन होते हैं यदि व्यक्ति चाहे तो उनसे अपने आप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



को अनासक्त कर सकता है। अनासक्ति का अर्थ है पदार्थ के साथ जुड़ी हुई चेतना का छूट जाना, तटस्थ भाव को प्राप्त कर लेना और राग द्वेष रहित हो जाना। योगिराज कृष्ण ने कहा—मैं उदासीन की भांति आसीन हूं, कर्मों में अनासक्त हूं इसलिए वह कर्म मुझे बांध नहीं पाते।

एक ध्याता को प्रमाद और आलस्य से अपने आप को सचेत रखना चाहिए। जिसका अपने आहार पर नियंत्रण नहीं है, निद्रा पर नियंत्रण नहीं है और इंद्रियों पर संयम नहीं है वह ध्यान के मार्ग में उन्नत नहीं हो पाता। एक साधक में कर्त्तव्यपरायणता की भावना होनी चाहिए। जब तक ध्याता ध्यान को एक परम पुरुषार्थ नहीं मानता, अपने जीवन के कल्याण के लिए मुख्य नहीं मानता तब तक वह ध्यान में संलग्न नहीं हो सकता। ध्यान ही जिसके जीवन की प्राथमिकता है, मूल है और बाकी सब कुछ गौण है, वही ध्याता ध्यान की गहराई में जा सकता है। साधक को निराशा और भय से मुक्त होना चाहिए और उसे किसी प्रकार के प्रलोभन के प्रवाह में नहीं बहना चाहिए। भय और प्रलोभन से चित्त विक्षिप्त होता है। इसलिए सच्चे सद्गुरु से ध्यान विधि को सीख कर सतत अभ्यास में रत रहने से ध्याता न केवल अपना कल्याण करता है बल्कि समूची मानवता का भला कर सकता है। "संशयात्मा विनश्यति" यदि ध्याता आशंकित है या उसे ध्यान में आस्था नहीं है तो वह ध्यान में सफल नहीं हो सकता। संशय की स्थिति में ध्यान होना कठिन है। ध्याता को मनगढ़ंत ध्यान विधि को नहीं अपनाना चाहिए। उससे कई बार हित की बजाय अनहित हो जाता है। इसलिए ध्यान में भावित होने के लिए, स्थित होने के लिए यह आवश्यक है कि ब्रह्मनिष्ठ और ब्रह्मश्रोत्र आचार्य या गुरु के द्वारा ध्यान दीक्षा लेकर ही वह ध्यान में अग्रसर हो। ध्यान-विधि, शास्त्र और आगम के अनुकूल होनी चाहिए। नैसर्गिक और आंतरिक होनी चाहिए और सबके लिए समान रूप से होनी चाहिए। तभी वह ध्यान-विधि तत्काल फल देने वाली होती है। आज भिन्न-भिन्न प्रकार की ध्यान-विधियों को आचार्य प्रचलित कर रहे हैं। लेकिन सनातन, पुरातन ध्यान-विधि जिसे सभी महापुरुषों ने अपनाया और जिसके द्वारा उनका रूपांतरण हो गया, उनका जीवत्व समाप्त होकर वे परम चैतन्य को प्राप्त हो गए वह ध्यान की शाश्वत नैसर्गिक सर्वव्यापक सार्वभौमिक, मानव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



मात्र के लिए एक ही विधि है जिसे क्राइस्ट ने 'The Way कहा, बुद्ध ने 'मध्य मार्ग' कहा, गीता में 'राजविद्या' कहा। वही महायान, वही महाप्राण की अखण्ड विधि है जिसे सभी सन्तों व ऋषियों ने अपनाया है। □

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# ध्यान

ध्येय, ध्यान व ध्याता की त्रिपुटी सर्वविदित है। ध्येय के बिना ध्यान संभव नहीं है और ध्याता के बिना ध्येय और ध्यान का कोई अस्तित्व नहीं है। ध्यान मानव व्यक्तित्व का केन्द्रबिन्दु है। यह वह सुषुप्त निधि है जिसे उजागर करके ध्याता पूर्णत्व को प्राप्त कर सकता है। प्राचीन काल से लेकर आज तक जितने भी महामानव इस धराधाम पर हुए हैं उनकी सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियां भले ही अलग-अलग हों लेकिन ध्यान की प्रक्रिया में से गुजरने के पश्चात् वह चैतन्य होकर आनंदविभोर हो उठे। ध्यान ही वह पारसमणि है जिसे छूकर हर प्रकार का व्यक्ति स्वर्ण के समान उज्ज्वल हो जाता है। भारतीय दर्शन में शिव ध्यान के प्रतीक हैं। वे शाश्वत ध्यान में मग्न रहते हैं। इसलिए वे अमृत का पान करके अमृतमय हो गए हैं। इसलिए उन्हें सदाशिव कहते हैं। त्रितापों की तो कौन कहे मृत्यु को लांघने की शक्ति ध्यान में अंतर्निहित है। इसलिए वैदिक ऋषियों ने जो ध्यान विज्ञानी थे, यह उद्घोष किया कि हमने मृत्यु पर विजय पाई है। चाहे कबीर जुलाहा हों, या चाहे राजा जनक हो, चाहे ईसामसीह हों या चाहे मोहम्मद, चाहे महावीर हों या बुद्ध, सभी ध्यान की मस्ती में मस्त हुए उस एक अनंत शक्ति का ही राग अलाप रहे हैं। समाजशास्त्री या इतिहासकार भिन्न-भिन्न धर्मों के उद्गम के कारण भले ही बाहरी सामाजिक और राजनैतिक स्थितियों में ढूंढें पर वास्तविकता यह है कि धर्म का उद्गम ध्यान से हुआ है। वैदिक ऋषियों ने जो ध्यान में प्राप्त किया वही प्रस्फुटित होकर वैदिक धर्म की धारा में बहने लगा। बुद्ध ने ध्यान के द्वारा जो बोधितत्व प्राप्त किया वही उजागर होकर बुद्ध धर्म का प्रकाश बन गया। मोहम्मद ने जो इलाही नूर के दिग्दर्शन किए और गैबी आवाज का अलहाम सुना, वही इसलाम के रूप में लोगों के लिए पथ-प्रदर्शक बन गया। कौन सा ऐसा धर्म है जिसके मूल में ऐसा महामानव प्रवर्तक के रूप में न हो जो ध्यान की भूरि भूरि प्रशंसा न करता हो। ध्यान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



ही जीवन के रूपांतरण की धुरी है। जो ध्यान के मर्म को समझ गया वही अति-मानस होकर आनंदित हो गया। ध्यान है धर्म का प्राण, धर्म की शक्ति।

## धर्म और ध्यान

उपनिषदों में एक बड़ा मार्मिक वृत्तांत है। किसी ऋषि के आश्रम में कुछ साधक और सिद्ध इकट्ठे हुए और सहज में ही ब्रह्म जगत् के दर्शन के संबंध में वार्तालाप शुरू हो गया। उन गुह्यतम् तत्वों की चर्चा होने लगी जो अनादि काल से प्रश्न बनकर मानव के मस्तिष्क को आन्दोलित करते रहे हैं, वाद विवाद शुरू हुआ, भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण रखे गए लेकिन किसी भी तथ्य के बारे में किसी निश्चय तक पहुंचना संभव न हो सका। अंत में सिद्ध और साधकों ने यही निर्णय किया कि यह विषय केवल तर्क से नहीं जाना जा सकता। गहरे ध्यान में जाकर ही इसका उद्घाटन होना संभव है। इसलिए वे सब गहरे ध्यान में लग गए। स्वयं बुद्ध ने कहा है कि सत्य अतर्क्य विचार है। सत्य तर्क से नहीं मिलता। आचार्यों का अभिमत है कि वाद और प्रतिवाद से तत्व प्राप्त नहीं होता। इस वाद और प्रतिवाद के क्रम में एक नहीं अनेक जन्म बीत जाएं पर सत्य तक नहीं पहुंचा जा सकता। जैसे कोल्हू का बैल घण्टों तक घूमता रहता है और कहीं नहीं पहुंचता ऐसे ही तर्क और प्रतितर्क के द्वारा तत्वज्ञान हाथ नहीं लगता। इसलिए सभी ऋषियों एवं आचार्यों ने परामर्श दिया कि यदि सत्य को पाना है तो वाद और प्रतिवाद के अखाड़े को छोड़कर अध्यात्म का अनुचिंतन करो।

महावीर के शिष्य गणधर गौतम ने धर्म के संबंध में कहा कि यदि धर्म के परम अर्थ को जानना है, तत्व के निश्चय को जानना है तो प्रज्ञा के द्वारा उसकी समीक्षा करो। प्रज्ञा के द्वारा देखो। उसके भीतर को देखो। बाहर के रूप को मत देखो। प्रज्ञा के द्वारा गहरे में उतरकर देखो। उसकी अटल गहराई में जाकर देखो। तब तुम जान पाओगे कि परम धर्म क्या है। बाहरी वेषभूषा का अलग अलग होना या चार-पांच महाव्रतों की भिन्नता, बाहरी कर्मकांड एवं पूजा पद्धति धर्म नहीं हैं। धर्म इनमें नहीं मिलेगा। प्रज्ञा द्वारा गहरे ध्यान में उतरो और देखो, धर्म वहां मिलेगा। उसमें कोई

Rajguru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



भिन्नता प्रतीत नहीं होगी। सब एक ही प्रतीत होगा।

भारत में अनेक धार्मिक परंपराएं हैं। उनकी भिन्न-भिन्न धारणाएं और मान्यताएं हैं। परंतु एक बात उन सबके साथ जुड़ी हैं और वह है ध्यान पद्धति या साधना पद्धति। भारतीय चिंतन ने केवल दर्शन और धर्म तत्व को ही मान्यता नहीं दी। ज्ञान केवल ज्ञान के लिए नहीं और न ही बौद्धिककौशल के लिए बल्कि जीवन के रूपांतरण के लिए रहा। इसलिए दर्शन केवल तत्व की व्याख्या ही नहीं है बल्कि व्यक्तित्व के रूपांतरण की पद्धति भी है। इन पद्धतियों का नाम कहीं मोक्ष मार्ग है तो कहीं विशुद्धि मार्ग है और कहीं योग दर्शन है। इन सबका उद्देश्य है चित्त को निर्मल करना। विश्व की जितनी साधना पद्धतियां हैं वे सारी की सारी मनुष्य को अंतर की गहराई में, ध्यान में ले जाने की पद्धतियां हैं। वे जहां से शुरू होती हैं वहां छोटी होती हैं। आगे जाकर वह विस्तीर्ण हो जाती हैं और इतनी विस्तीर्ण कि वहां नाम का भेद भी समाप्त हो जाता है।

ध्यान के महत्व को बताते हुए एक ध्यानी संत ने कहा है कि जैसे मनुष्य का सिर काट देने पर उसकी मृत्यु हो जाती है वैसे ही ध्यान को छोड़ देने पर धर्म चेतना-शून्य हो जाती है। जैसे मनुष्य की चेतना का केन्द्र मस्तिष्क है वैसे ही धर्म की चेतना का केन्द्र ध्यान है।

धर्म का अर्थ है आत्मा का निज स्वभाव और वह साधन जिससे व्यक्ति स्वयं में प्रतिष्ठित होता है, वही ध्यान है। धर्म हमारे जीवन का वह आलोक है जो हमारी इंद्रियों को, मन को और बुद्धि को आलोकित करता है, प्रकाश से भर देता है। धर्म है अनंत की खोज लेकिन आज मानव का यह दुर्भाग्य है कि धर्म जिज्ञासा अथवा ब्रह्म जिज्ञासा उत्पन्न होने से पहले ही व्यक्ति के गले में उसके जन्म के साथ ही धर्म का पट्टा बांध दिया जाता है और उसे अपने धर्म की सीमाओं व दीवारों में ही रहने के लिए बाध्य किया जाता है। हिन्दू, बौद्ध, जैन, ईसाई, सिख, मुसलमान आदि का चोला जन्म के साथ ही धारण हो जाता हैं और धर्म—मोक्ष का कारण न बनकर मान्यता और बंधन का कारण बन जाता है। धर्म का प्रयोजन था सत्य की जिज्ञासा को जगाना, सत्य की ओर व्यक्ति को आकर्षित करना, लेकिन व्यक्ति की स्वतंत्र खोज की भावना को भी आज धर्म की मान्यताओं, रूढ़ियों और रीति-रिवाजों ने कुण्ठित कर दिया है और धर्म के ठेकेदार इन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



मान्यताओं को व्यक्ति पर थोपे जा रहे हैं। सत्य अथवा तत्व एक होते हुए भी आज अनेक हो गए हैं। ईसाइयों की सत्य और ईश्वर के बारे में अवधारणाएं और हैं। हिन्दुओं की सत्य और ईश्वर के बारे में अवधारणाएं और हैं। मुसलमानों का अल्लाह और सत्य जैनियों का सत्य और मत अलग हो गया है। आज सभी ने अपना ईश्वर, अपना अल्लाह और अपना खुदा गढ़ लिया है, निर्मित कर लिया है। आज इन्हीं भिन्न-भिन्न मतों के और धर्म संप्रदायों के विचारों से व्यक्ति विचलित है, भ्रमित है। केवल ध्यान ही एक ऐसा मार्ग है जो इन धर्मों की सीमाओं से व्यक्ति को निकालकर असीम से जोड़ सकता है। बुल्लेशाह ने ठीक ही कहा है—

**धर्मा दे दरवाजे बड्डे बड्डे तंग अल्ला दी मोरी ।**
**मुल्ला काजी बढ़न न देवें जो बढ़े सो चोरी चोरी ।।**

धर्म वैज्ञानिक तत्व है। वैज्ञानिक तत्व वह होता है जो देशकाल से परे हो, जिसका निष्कर्ष सब देशकाल में समान हो। अमेरिका में प्रयोग करने से सफलता मिलती है तो भारत में भी प्रयोग करने से सफलता मिलेगी। सर्वत्र और सर्वदा जो प्रयोग में एक रूप रहता है वह वैज्ञानिक तत्व होता है। धर्म इस कसौटी के आधार पर परम वैज्ञानिक तत्व है। धर्म के द्वारा प्रतिपादित ध्यान-साधना लंदन में, भारत में या अमेरिका में कहीं पर भी की जाय और किसी के द्वारा भी की जाय तो वह सबको आनंद देगी। आज, कल या परसों कभी उसकी आराधना की जाय तो उसके परिणाम में कोई अंतर नहीं आएगा। इसलिए धर्म-तत्व काल्पनिक या दार्शनिक नहीं है। वह एक व्यावहारिक तथ्य है जो प्रयोग में लाया जा सकता है। धर्म के दो मुख्य तत्व हैं—ज्ञान और कर्म। पंछी जैसे दो पंखों के बिना उड़ नहीं सकता ऐसे ही धर्म-ध्यान और अनुभव के बिना व्यक्ति का भला नहीं कर सकता। आज धर्म के इन दोनों तत्वों पर बल नहीं दिया जा रहा। धर्म रूढ़िवादी हो गया है। केवल शास्त्रों का पठन-पाठन सुनने और मानने की बात और कर्मकाण्ड—धार्मिक क्रियाएं बनकर रह गई हैं, धर्म-कथा बनकर रह गया है। ऐसा धर्म व्यक्ति का रूपांतरण नहीं कर सकता।

धर्म की सबसे बड़ी शक्ति है त्याग की शक्ति। एकमात्र धर्म की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



चेतना से व्यक्ति में त्याग करने की क्षमता आती है। दुनिया में और कोई तत्व नहीं जो त्याग की शक्ति पैदा कर सके। इतिहास इस बात की गवाही देता है कि धार्मिक पुरुषों ने बड़ी से बड़ी कुरबानी हंसते हंसते दे डाली। गुरु तेग बहादुर और गुरु अर्जुनदेव धार्मिक पुरुष थे, ईसा मसीह धार्मिक पुरुष थे। अनेक धार्मिक पुरुषों की कुरबानी की गाथा हमें रोमांचित कर देती है। संसार के सारे शास्त्र और विद्याएं भोग की बातें सिखाती हैं, बटोरने की और इंद्रिय विषयों के सेवन की बात सिखाती हैं। पदार्थ ही उनका आनंद है। सांसारिक सुख संपदा से अधिक वे और किसी सुख संपदा को नहीं मानते। लेकिन धर्म-पदार्थ लोलुपता को क्षीण करता है,व्यक्ति में त्याग की भावना को जागृत करता है और व्यक्ति के चरित्र को ऊंचा उठाता है। जब व्यक्ति का चरित्र शुद्ध होता है तो उसका संकल्प अपने आप फलित होता है। चरित्र की शुद्धि के आधार पर संकल्प की क्षमता जागती है और जिसका संकल्प दृढ़ है उसके लिए कुछ भी अप्राप्य नहीं रहता।

धर्म शब्द धृ धात से बना है जिसका अर्थ है धारण करना। धर्म वह सर्वव्यापी चेतनतत्व है जिसे ध्याता ध्यान के द्वारा अपनी अंतरात्मा में धारण कर सकता है। इसलिए धर्म का मूल है ध्यान। ध्यान-प्रक्रिया की खोज विश्वकी महानतम् खोज है। जो व्यक्ति इस दिशा में चलते हैं वही सत्य का साक्षात्कार उपलब्ध करते हैं। अध्यात्म की चेतना को जगाना अपने आप पर आस्था केन्द्रित करना, अपने आप को जानना, अपनी खोज करना, खोज के संदर्भ में आने वाले कष्टों को सहना, यह सारी प्रक्रिया ध्यान की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया से केवल शारीरिक संस्थान ही प्रभावित नहीं होते, केवल शरीर के रसायन ही नहीं बदलते बल्कि यह प्रक्रिया सूक्ष्म जगत तक पहुंचकर हमारे सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर को भी प्रभावित करती है। मल विक्षेप और आवरण के संस्कारों को क्षीण कर ध्याता को मोक्ष का सुख और आनंद प्रदान करती है।

धर्म और विज्ञान दो नहीं वस्तुतः एक ही सत्य-खोज की दो प्रक्रियाए हैं। धर्म स्वयं विज्ञान है। विज्ञान भौतिक वस्तु को जानने की प्रक्रिया है और धर्म आत्मा को पाने की प्रक्रिया है, साधन है। उस साधना का नाम ही ध्यान है। ध्यान के बिना कोई भी व्यक्ति अध्यात्म में प्रवेश नहीं कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



सकता है और बिना अध्यात्म के धर्म निरर्थक हो जाता है। इस वैज्ञानिक युग में धर्म मखौल बना हुआ है। आदमी रोज धर्म करता जाता है और बुराइयां भी वैसे ही करता जाता है। धर्म तोता रटन बन गया है—केवलमात्र कुछ श्लोकों को रट लेना। आज शैतान भी धर्मशास्त्रों का हवाला दे रहा है। कोई जुआ खेल रहा है तो कहता है कि युधिष्ठिर महाराज ने भी तो जुआ खेला था। कोई शराब पी रहा है तो वह कहता है कि वेदों में भी तो सोमरस की चर्चा है। हमारे ऋषि भी तो सोमरस पिया करते थे। धर्मशास्त्रों को पढ़कर व्यक्ति कुछ और चतुर हो जाता है और अपनी बुराइयों पर भी आवरण डालने का ढंग सीख जाता है। धर्म एक मुखौटा नहीं है जिसे व्यक्ति अपने चेहरे पर लगाकर अपनी मान-प्रतिष्ठा को बटोरता रहे। धर्म का काम है रूपांतरण। यदि धर्म साधना से रूपांतरण नहीं हो रहा है तो साधना बेकार है। धर्म को अपनाने का, ध्यान-साधना का एकमात्र प्रयोजन है कि जीवन की बुराइयां समाप्त हों, आदमी बदलना चाहिए, बुरी आदत छूटनी चाहिए। व्यक्ति का रूपांतरण होना चाहिए। यदि वह घटित नहीं होता तो धर्म और ध्यान अर्थ-शून्य हो,जाते हैं। इसलिए चित्त बदले, स्वभाव बदले और व्यवहार बदले तभी धर्म और ध्यान सार्थक हैं। ऋषियों ने कहा कि जिसका अपनी इंद्रियों और मन पर नियंत्रण नहीं है उसे धर्म शिक्षक होने का अधिकार नहीं है।

महावीर से पूछा गया—"क्या ज्ञान मोक्ष का मार्ग है?"

"नहीं, कोरा ज्ञान मोक्ष का मार्ग नहीं है।"

"क्या दर्शन मोक्ष का मार्ग है?"

"नहीं।"

"क्या चरित्र मोक्ष का मार्ग है?"

"नहीं।"

महावीर ने कहा—अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन और अकेला चरित्र मोक्ष की ओर नहीं ले जा सकता। जब तीनों का योग होता है तब मोक्ष घटित होता है। ज्ञान, दर्शन और चरित्र की त्रिपुटी, ध्यान, ध्येय, ध्याता की त्रिपुटी के समान हैं। जिसमें यह त्रिपुटी फलित नहीं होती उसमें रूपांतरण होना संभव नहीं है।

आज धार्मिक लोग आत्मा परमात्मा, सृष्टि, अद्वैत, स्वर्ग, नर्क,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



पुनर्जन्म, मोक्ष, जीव और ब्रह्म इत्यादि विषयों को लेकर वाद विवाद एवं शास्त्रार्थ करने में लगे हुए हैं किन्तु इस प्रकार के विषयों के मर्म को समझने के लिए जो चित्त की स्थिरता एवं ध्यान की गहराई चाहिए वह उन्हें प्राप्त नहीं है। ध्यान और विचार की गहराई के बिना गूढ़तम रहस्यों का उद्घाटन नहीं हो सकता। मजबूत मकान के लिए मजबूत नींव की आवश्यकता होती है। गहराई के बिना ऊंचाई संभव नहीं है। अध्यात्म में विकसित होने के लिए गहराई की बहुत जरूरत है और गहराई ध्यान के बिना नहीं आ सकती है। आज तक के इतिहास में आप देखेंगे कि जहां विचारों में गहराई नहीं किसी भी व्यक्ति ने विकास नहीं किया। चाहे भौतिक क्षेत्र में चाहे आध्यात्मिक क्षेत्र में। आध्यात्मिक क्षेत्र में जिन लोगो ने ध्यान की गहराई में जाने का प्रयत्न नहीं किया उन्होंने कोई भी नई बात नहीं दी। आज तत्वज्ञान का जितना विकास हुआ है, सत्य का जितना प्रकटीकरण हुआ है और दुनिया के सामने सत्य साहित्य प्रस्तुत किया गया है, वह उन आध्यात्मिक पुरुषों के द्वारा किया गया जो ध्यान की गहराई में चलते चले गए। भौतिक क्षेत्र में भी उन व्यक्तियों की ही अपूर्व देन है जो अध्ययन और विचार की गहराई में गए।

**जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ ।**
**मैं बाचरी ढूंढ़न गई रही किनारे बैठ।।**

"धर्मो रक्षति रक्षितः" जो धर्म को धारण करता है धर्म उसकी रक्षा करता है। भगवान राम जब वनवास जाने लगे तो उनकी मां कौशल्या ने कहा—हे राम ! तुम सदैव धर्म की शरण ग्रहण करना क्योंकि वनवास में धर्म ही तुम्हारी रक्षा करेगा। धर्म की शरण सर्वोत्तम है। धर्म के रथ पर जो सवार है उसकी सदैव विजय होती है। धर्म एक दीप है, एक प्रकाशपुंज है और मानव मूल्यों का मापदण्ड है, मर्यादाओं का रक्षक है। ध्यान ही धर्म का रथ है, नाव है। धर्म की शरण मिले और रूपांतरण न हो, ध्यान में व्यक्ति उतरे और उसका कायाकल्प न हो तो या तो हमें वास्तविक धर्म और ध्यान विधि ही उपलब्ध नहीं हुई और या हमने धर्म की शरण ही ठीक ढंग से ग्रहण नहीं की और ध्यान विधि को व्यावहारिक रूप में नहीं अपनाया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



## ध्यान रूपांतरण का माध्यम

हर व्यक्ति रूपांतरण चाहता है, अपने व्यक्तित्व को बदलना चाहता है। जो जैसा है वैसे में संतुष्ट नहीं होता। वह अच्छा बनना चाहता है, विकसित होना चाहता है। वह कौन सा केन्द्र है जहां पहुंचकर व्यक्ति रूपांतरित हो सकता है, अपने व्यक्तित्व को बदल सकता है? साधारणतः लोग बाहरी रूप से एक दिखावे का आचरण और व्यक्तित्व अपने ऊपर आरोपित कर लेते हैं, लेकिन उनके भीतर का व्यक्तित्व कुछ और ही होता है। राजनीतिज्ञों में तो यह खास बात मिलती है कि वे केवल छाया का जीवन जीते हैं और उनके एक चेहरे पर अनेक चेहरे होते हैं। लेकिन कई बार बाहर से संन्यासी का जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति भीतर से शैतान हो सकता है। इसलिए व्यक्तित्व का आवरण और व्यक्तित्व का रूपांतरण ये दो बातें हैं। एक क्रोधी व्यक्ति अपने आप को अत्यंत शांत व क्षमाशील प्रदर्शित करना चाहता है और वह व्यक्ति क्षमाशीलता का मुखौटा लगाकर लोगों को धोखा दे सकता है। वह क्षमाशीलता को, शांति को केवलमात्र बाहरी रूप से ओढ़ लेता है। इसलिए व्यक्ति को समझना और पहचानना बड़ा कठिन कार्य है। पदार्थ को समझने में कोई धोखा नहीं होता, क्योंकि पदार्थ जैसा है वैसा है लेकिन व्यक्ति को सही रूप में पहचानने में धोखा होता है। केवल बाहरी रूप से अपनी प्रवृत्तियों का दमन कर लेने से या सामाजिक भय से उन्हें छिपकर पूरा करने की आदत से कई बार लोगों का वास्तविक व्यक्तित्व सामने नहीं आता। ऐसे चतुर व्यक्ति जो अपनी अंतर-भावनाओं या आंतरिक व्यक्तित्व पर परदा डाल लेते हैं, केवल दिखाऊ लोग हैं। उनका रूपांतरण, रूपांतरण नहीं है, क्योंकि रूपांतरण में व्यक्ति बिल्कुल बदल जाता है। व्यक्ति नया हो जाता है फिर आवरण डालने की जरूरत नहीं होती है। ध्यान रूपांतरण की वह प्रक्रिया है जो ध्याता के व्यक्तित्व में मूल परिवर्तन लाती है, जैसे एक बगुला वृत्ति का व्यक्ति हंस हो जाता है और कौआ वृत्ति का व्यक्ति कोयल हो जाता है। आचार्यों का अभिमत है कि ध्यान में दीक्षित होने से साधक का दूसरा जन्म होता है। ध्यान में कायाकल्प की शक्ति है।

हमारे व्यक्तित्व के तीन पहलू हैं—भाव, विचार और व्यवहार। व्यवहार हमारा शारीरिक आचरण एवं प्रवृत्ति है। विचार हमारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



मानसिक प्रवृत्ति है और भाव हमारी अन्तर आत्मा से सम्बन्धित है। कई बार बहुत प्रयास करने पर भी व्यक्ति के बाहर से नियंत्रण कर लेने पर भी उसके अंतर का रूपांतरण नहीं होता। बाहरी नियंत्रण केवल हमारी आदतों और व्यवहार को नियंत्रित कर सकता है किन्तु जब तक ध्यान के द्वारा अपनी अंतर-चेतना को नहीं जगाते तब तक नियंत्रण तो हो सकता है लेकिन शोधन नहीं हो सकता और जब तक शोधन नहीं होता तब तक रूपांतरण नहीं होता। रूपांतरण के बाद नियंत्रण समाप्त हो जाता है क्योंकि रूपांतरित व्यक्ति के लिए नियंत्रण की जरूरत नहीं होती। मायावी व्यक्ति कई बार बुरा होते हुए भी बाहर से अच्छा होने का ढोंग रचकर लोगों को ठगते हैं। व्यक्तित्व की पहचान की कसौटी व्यवहार-जगत् नहीं है बल्कि अंतर-भाव का जगत् है जहां कोई धोखा नहीं हो सकता। जो जैसा है वैसा रूप ही वहां मिलेगा। प्राचीन काल में साधना के आचार्य अपने शिष्य को ध्यान की प्रक्रिया जनाने से पहले उसकी योग्यता की परख उसके आभा मण्डल या भाव मण्डल के आधार पर करते थे। वे उसके भावों को देखकर उसे जान लेते थे कि इसका व्यक्तिगत स्वभाव कैसा है। भाव से ही व्यक्ति का वास्तविक बोध होता है क्योंकि भाव का संबंध हमारी चेतना से है। जिसकी जितनी शुद्ध चेतना होती है उसका भाव-मण्डल भी उतना ही शुद्ध होता है। श्री हंसजी महाराज कई बार शिष्यों को विस्मय में डाल देते थे। कई जिज्ञासुओं को कई महीनों तक सत्संग सुनने और प्रार्थना करने पर भी ध्यान-दीक्षा (उपदेश) की आज्ञा नहीं देते थे और कोई-कोई ऐसा भाग्यशाली होता था कि जिसे देखकर स्वयं ही उसे तत्काल उपदेश देने की आज्ञा दे देते थे। जब शिष्य पूछते थे कि महाराज जी, आप ऐसा क्यों करते हैं, तो वे कहते थे—तुम नहीं जानते, मैं जानता हूँ कि किस जीव का भाव कैसा है। गुरु महाराज जिज्ञासु की बाहरी बातों से प्रसन्न नहीं होते, वे तो उसके हृदय के भाव से प्रसन्न होते हैं।

आज की दुनिया में ऐसे वैज्ञानिक उपकरण प्राप्त हैं जिनके द्वारा व्यक्ति के अंतर-मन को देखा जाता है, अपराधों की जांच की जाती है। वह मशीन बता देती है कि अमुक व्यक्ति ने चोरी की या नहीं की। वह झूठ बोला या सच बोला। व्यक्ति से पूछने की जरूरत नहीं है। मशीन के सामने उसे बैठा दिया जाता है। यंत्र की सुई घूमती है, ग्राफ उतरता है, पता चल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



जाता है अपराध का और अपराधी का। लेकिन इसमें भी कई बार धोखा हो सकता है। किन्तु भाव-मण्डल में धोखा होने की कोई संभावना नहीं है और व्यक्ति का जैसा भाव होता है वैसा ही उसका वास्तविक व्यक्तित्व होता है। व्यवहार व विचार तो व्यक्ति के बदलते रहते हैं और बाहरी हैं लेकिन भाव उसकी अंतरात्मा की वास्तविक तरंग है। इसलिए भक्ति में भाव ही प्रधान है। महावीर ने कहा—जो साधक, भावना योग से शुद्ध आत्मा बन जाता है वह जल में नौका की तरह हो जाता है। ध्यान हमारे भाव-तंत्र को शुद्ध करता है। जब भाव शुद्ध होता है तो विचार शुद्ध होते हैं और विचार शुद्ध होता है तो व्यवहार शुद्ध होते हैं। ध्यान की प्रक्रिया के बिना रूपांतरण संभव नहीं है। बिना मार्ग पर चले जो जहां है वहीं रहेगा क्योंकि उसे प्रक्रिया उपलब्ध नहीं है। यदि प्रक्रिया उपलब्ध भी हो और यदि वह उसका अभ्यास नहीं कर रहा है तो ऐसी स्थिति में भी कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। ध्यान का समूचा मार्ग रूपांतरण की प्रक्रिया है और प्रक्रिया का अभ्यासक्रम है। जो व्यक्ति इस अभ्यासक्रम को स्वीकार कर लेता है वह निश्चित ही अपने को बदल लेता है।

ध्यान अलौकिक है। लौकिक पदार्थ से जो नहीं मिलता वह ध्यान से मिलता है। अपराधों की बाढ़ सी आ रही है। क्या अपराध गरीबी की वजह से बढ़ रहे हैं? लौकिक संपदा के विकास से अपराधों को नहीं मिटाया जा सकता, मनुष्य को नहीं बदला जा सकता। अध्यात्म के बिना रूपांतरण संभव नहीं है। अध्यात्म अलौकिक और पदार्थातीत तत्व है जिसके ध्यान द्वारा हम व्यक्तित्व का रूपांतरण कर सकते हैं। एक संत ने कहा है कि संसार में चारों ओर दुख है पर मुझे दुख नहीं हो रहा है क्योंकि मेरा मन शांत है। जिसका चित्त शांत होता है उसको दुख नहीं होता। भले ही उसके आस-पास दुख हो किन्तु दुख उसके भीतर प्रवेश नहीं कर सकता। ध्यान के द्वारा उसके शरीर का एक-एक कण इतना वज्रमय बन जाता है कि दुख को भीतर घुसने का अवकाश ही नहीं मिल पाता। संसार में वास्तविक ऋद्धि-सिद्धि बाहरी धन और संपदा नहीं हैं बल्कि आंतरिक ध्यान की संपदा है।

ध्यान का शाब्दिक अर्थ है—चिन्तन करना, स्मरण करना। 'ध्यंड् चिन्तायाम्' धातु से ध्यान शब्द बना है। ध्यान है प्रत्यक्ष

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



दर्शन। किन्तु ध्यान के बाद अनुप्रेक्षा या चिंतन और मनन का भी उतना ही महत्व होता है। जिस विषय का चिंतन बार-बार किया जाता है या जिस प्रवृत्ति का बार-बार अभ्यास किया जाता है उससे मन प्रभावित होता है। गहराई में पहुंचने पर यही चिंतन-भावना का रूप ले लेता है। जिस व्यक्ति की जैसी भावना होती है, जिस प्रकार के अभ्यास को वह बार-बार दोहराता है उसी के अनुरूप उसके संस्कार बनते चले जाते हैं। आत्मा की भावना करने पर व्यक्ति धीरे-धीरे आत्मा की ओर बढने लगता है और एक दिन आत्मा में स्थित हो जाता है। ध्यान में सुमिरण सहायक होता है। सोऽहं के जप का यही महत्व और मर्म है। जो व्यक्ति जिस भावना से अपने को भावित करता है; उसकी भावना उसे उसी लक्ष्य की ओर ले जाती है।

ध्यान करने वाले साधक के लिए आवश्यक होता है कि वह इस संबंध में निरंतर चिंतन करे। ध्यान की गहराई में उतरने पर यह चिंतन अपने आप होने लगता है। सत्संग और स्वाध्याय इसमें बहुत सहायक होते हैं। शरीर के साथ,जो व्यक्ति का मोह या ममत्व होता है वह सरलता से नहीं टूटता। यह बार-बार सुनते और जानते हुए भी कि शरीर नाशवान है, अनित्य है, फिर भी व्यक्ति शरीर से चिपका रहता है। वह बराबर लोगों को मृत्यु की ओर बढ़ते हुए और मृत्यु को प्राप्त होते हुए देखता है किन्तु शरीर का मोह उसका नहीं टूटता। शरीर की अनित्यता का अनुभव करना, सच्चाई को जानना, शाश्वत् तत्व को अनुभूत करना तो ध्यान के द्वारा ही संभव है। साथ ही इसके ऊपर बार-बार विचार करना, चिंतन करना यह भी अत्यंत आवश्यक है। असत् से सत्य की ओर बढ़ने के लिए ध्यान के साथ-साथ सत्पुरुषों की संगत और अनुकूल वातावरण बहुत ही उपयोगी है। इससे अशुभ भावों के स्थान पर शुभ भाव और शुभ विचार मन में टिकने लगेंगे। भावधारा का बहुत बड़ा महत्व है। वह जिधर को बहेगी हम उधर को ही चल पड़ेंगे। सत्पुरुषों की संगत से यह भावधारा धीरे-धीरे बदलने लगती है। एकदम से एक दिन में कुछ भी नहीं होता। यह भावधारा एक ऐसी सीढ़ी के समान है जिससे ऊपर भी चढ़ा जा सकता है और नीचे भी आया जा सकता है। जब हमारी यह भावधारा सत् के साथ जुड़ेगी तब हम ऊपर चढ़ सकेंगे। किंतु यदि भावधारा जगत के साथ या असत् के साथ जुड़ी रहती है तो ऊपर की ओर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



चढ़ाई नहीं हो सकती। आदमी नीचे ही नीचे उतरता चला जाएगा।

साधना के दो महत्वपूर्ण तत्व हैं—ध्यान और स्वाध्याय। समाधि के लिए ध्यान बहुत आवश्यक है और ध्यान के लिए स्वाध्याय अत्यंत अपेक्षित है। निर्विकल्प समाधि की उपलब्धि ध्यान से संभव है। किन्तु इसको प्राप्त करने के लिए कई बार विचार का भी सहारा लेना पड़ता है। जैसे कांटे को कांटे से ही निकाला जाता है ऐसे ही विचारों को विचार से ही काटा जाता है। और इसमें स्वाध्याय बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है। स्वाध्याय एक सोपान है। वह मन की जड़ता को दूर करने में और जिज्ञासा को बढ़ाने में बड़ा लाभदायक होता है। ध्यान के पश्चात् स्वाध्याय और स्वाध्याय के पश्चात् ध्यान एक दूसरे की पुष्टि करते हैं। एक ही चित्त की दो अवस्थाएं हैं—ध्यान और स्वाध्याय। एक तरल अवस्था है और एक जमी हुई अवस्था है। स्वाध्याय हमारे ध्यान की तरल अवस्था है। एक बिन्दु पर हम चित्त को केंद्रित करते हैं। चित्त वहां स्थित हो जाता है। वह तरल चित्त ध्यान हो जाता है। जब तक ध्यान की स्थिति नहीं बनती, आत्म-अनुभूति नहीं होती तब तक स्वाध्याय ध्यान में सहायक होता है क्योंकि हमसे पहले जो ध्यान के मार्ग पर गए हैं, सिद्धों और साधकों की वाणी का अध्ययन करने से मन की बहुत सी उलझनें सुलझ जाती हैं।

शास्त्र भार भी है और दीप भी है। जिसका अंतरविवेक जागृत नहीं होता उसके लिए शास्त्र, भार बन जाते हैं और जिसका अंतरविवेक गुरु कृपा से जागृत होता है उसके लिए शास्त्र, दीप बन जाते हैं और वह उनका गूढ़ रहस्य समझ जाता है। वास्तव में तो ध्यान का मार्ग गुरु की कृपा से ही प्राप्त होता है और गुरु का मार्गदर्शन न हो तो साधक भटक जाता है। शास्त्र कहते हैं कि ध्यान में सिद्धि, गुरु कृपा से ही प्राप्त होती है। क्योंकि ध्यान के द्वारा तेजस् शक्ति जागती है। हठयोग की भाषा में कुण्डलिनी का जागरण होता है। ऊर्जा की ऊर्ध्व-यात्रा होती है। तब वासना का प्रबल उभार आता है। विकल्पों का ज्वार आता है और तब साधक सोचता है कि चला था ध्यान करने, मन को स्थिर करने, आत्मा को उपलब्ध करने किन्तु जितनी वासना पहले नहीं थी उतनी आज उभर रही है। काम जितना पहले नहीं सताता था उतना आज सता रहा है। चले थे परमात्मा का दीदार करने, आत्मा का साक्षात्कार करने और फंस गए वासना-भँवर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



में। हमारे धार्मिक इतिहास में ऐसी अनेक कथाएं आती हैं कि जब कोई अचल ध्यान के लिए संकल्पशील होता है और जैसे ही वह माया के गुरुत्वाकर्षण को पार करने लगता है तो मायावी शक्तियां पूरे वेग से उसे गिराने की कोशिश करती हैं। इसे ही माया की नकारात्मक शक्ति कहा है। यही शक्ति विशुद्ध चेतना की प्राप्ति में बाधा खड़ी करती है। पौराणिक कथाओं में मेनका और उर्वशी का ध्यानी ऋषियों को अपनी ओर आकर्षित करना और उनके ध्यान को भंग करना इत्यादि का वृत्तांत प्रतीक मात्र हो सकता है लेकिन सभी धर्मों में और ध्यान की गहराई में जाने वाले सभी साधकों ने यह अनुभव किया कि जब वे ध्यान में विकसित होने लगते हैं तो एक नेगेटिव फोर्स जिसे शैतान की शक्ति या सैटेनिक फोर्स या माया की शक्ति कहा जाता है, उसका गुरुत्वाकर्षण इतना प्रबल होता है कि वह साधक को अपनी ओर खींचता है, इससे ध्याता डगमगा जाता है और पथभ्रष्ट हो जाता है।

यदि हम वैज्ञानिक ढंग से सोचें तो शरीर संरचना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि हमारे शरीर में शक्ति केन्द्र और काम केन्द्र दोनों सटे हुए हैं, दोनों में कोई अंतर नहीं है। हमारे नाभि के नीचे मूलाधार चक्र है और इसके आसपास ही एड्रिनल ग्रंथि है। मूलाधार चक्र जब ध्यान के द्वारा सक्रिय होता है तो वह सुषुप्त शक्ति को जागृत करता है लेकिन उसके साथ ही एड्रिनल ग्रंथि भी सक्रिय हो जाती है जो सैक्स हारमोन्स का स्राव करती हैं जिससे वह अतिरिक्त शक्ति जो ध्यान से पैदा हुई है वह सैक्स (काम) के माध्यम से बाहर निकल जाना चाहती है। इसीलिए शक्ति केन्द्र की सक्रियता के साथ साथ काम-वासना का तूफान आएगा। वही प्रतीक रूप में पुराणों की मेनका और उर्वशी हैं। ऐसी स्थिति में एक ध्याता को और भी दृढ़ होना होगा और जैसे शिव ने अपने तीसरे नेत्र की अग्नि द्वारा काम को भस्म कर दिया वैसे ही एक साधक को शिव को आदर्श बनाकर ध्यान में ध्रुव और शिव के समान अचल होना चाहिए। वास्तव में हर साधक शिव है लेकिन उसका शिवत्व सोया हुआ है। यदि वह उसे जागृत कर ले, अपने ज्ञान नेत्र को प्रगट कर ले तो वह काम वासना पर विजय प्राप्त कर सकता है। वैज्ञानिक भाषा में यदि एक ध्याता (साधक) अपने दर्शन केन्द्र (आज्ञा चक्र) को सक्रिय बनाकर अर्थात् अपने पिच्यूटरी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



ग्लैण्ड को सक्रिय कर एड्रीनल ग्रंथि को प्रभावित करता है और उसके स्राव को नियंत्रित करता है तो वह काम वासना को नियंत्रित और समाप्त कर सकता है। साधारणतः एक साधक गुरु कृपा के बिना और गुरु के पथ-प्रदर्शन के बिना इस तूफान को पार नहीं कर सकता। इसलिए ऐसी स्थिति में अपने गुरु से बाहरी रूप से और आंतरिक रूप से प्रार्थना करनी चाहिए। गुरु सदा शिव हैं। वे तो शिव मूर्त्ति ही हैं, ध्यान मूर्ति हैं। उनके चिंतन मात्र से और ध्यान मात्र से काम वासना शांत हो जाती है। साधक को चाहिए कि वह भृकुटि के मध्य में श्वेत वस्त्र धारण किए हुए पद्मासन में विराजमान अपने गुरु का ध्यान करे तो काम-वासना शांत हो जाती है, ऐसा ध्यानी संतों का मत है, क्योंकि काम-वासना के केन्द्र, अहम् के केन्द्र हमारे शरीर के निचले भाग में हैं और जब हम अपनी सुरति को हृदय से ऊपर और आज्ञा-चक्र में स्थित रखते हैं तो हमारा चित्त मांया के गुरुत्वाकर्षण से बच जाता है। इसीलिए कहा जाता है कि एक सच्चे ध्याता को अपने ध्यान को, अपनी सुरति को सदैव भृकुटि के मध्य में रखना चाहिए। तब कभी भी माया उस पर प्रहार नहीं कर सकती क्योंकि यह स्थान गुरु का स्थान है। यह एक प्रकार से भगवान की बैठक है जहां एक ध्याता, ध्यान में अपने इष्टदेव से प्रेम-वार्तालाप करता है।

आत्म साक्षात्कार की दो पद्धतियां हैं—सविचार ध्यान और निर्विचार ध्यान। जिस प्रकार की मानसिक कल्पना व्यक्ति करता है, एकाग्रता के कारण वह कल्पना प्रगट होते-होते सामने आ जाएगी। जिस व्यक्ति के चित्त में अपने इष्ट के प्रति श्रद्धा एवं समर्पण भाव है, ध्यान करते करते वही इष्ट उसी रूप में उसके सामने प्रस्तुत हो जाता है। जिस इष्ट का जिस रूप में ध्यान करेंगे, चित्त को एकाग्र करेंगे और जब एकाग्रता एक निश्चित बिंदु पर पहुंचेगी तब वह प्रतिमूर्ति साकार होकर सामने प्रस्तुत हो जाएगी। मनोविज्ञान की भाषा में यह मानसिक प्रक्षेपण एवं काल्पनिक आकृति है जो ध्याता अपने मनोबल से पैदा कर लेता है। इससे यह पता नहीं चलता कि क्या यह इष्टदेव का वास्तविक साक्षात्कार है या काल्पनिक? बहुत लोग यह कहते हैं कि हमें परमात्मा या गुरु का साक्षात्कार हो गया। हमें अमुक देवी या अमुक देवता का साक्षात्कार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



हो गया। वह उनका साक्षात्कार नहीं है बल्कि उन लोगों का प्रक्षेपण है, कल्पना का चमत्कार है। हम स्वयं मन में एक कल्पना कर लेते हैं, एक आकार बना लेते हैं और वही आकार पुष्ट होते-होते एक दिन साकार हो जाता है। कई बार इस पद्धति का आलम्बन इसलिए लिया जाता है कि व्यक्ति में श्रद्धा एवं आस्था का निर्माण हो। उसमें सूक्ष्म सत्यों को जानने की तीव्र जिज्ञासा पैदा हो। लेकिन इससे चैतन्य का अनुभव नहीं होता। जब तक दो हैं तब तक चैतन्य कहां? चैतन्य के अनुभव का एकमात्र उपाय है निर्विचार ध्यान निर्विकल्प ध्यान। जब हम अपने आप को सब विचारों से शून्य कर देते हैं, खाली कर देते हैं, बुद्धि को, चित्त को एवं मन को पूर्ण खाली कर देते हैं तब चेतन का अवतरण हृदय में होता है। कहते हैं कि खाली में भगवान होता है। रिक्त मन में, रिक्त चित्त में और रिक्त इंद्रियों में सचमुच भगवान होता है, अपनी आत्मा होती है। संसार में भले ही भरे हुए का मूल्य है लेकिन अध्यात्म में खाली होना ही श्रेयष्कर माना जाता है।

जैसे मकड़ी जाला बुनती है और उसी में बंदी हो जाती है वैसे ही व्यक्ति अपने ही विचारों से आवृत्त है। संकल्प और विकल्प की तरंगें सदैव मानव के मस्तिष्क में उठती रहती हैं। भीतर का प्रवाह इतना प्रबल है, विचारों की भीड़ मस्तिष्क में इतनी अधिक है कि इसे खाली करना या उसका रेचन करना आसान नहीं है। जैनी इसे 'निर्जरा' कहते हैं। निर्जरा और 'संवर' एक ध्याता को सीखना चाहिए। संवर का अर्थ है जो इंद्रियों के द्वारा बाहर से भीतर आ रहा है उसे बंद कर दिया जाए और निर्जरा का अर्थ है कि जो पहले ही अंदर संचित है उसे ध्यान के द्वारा समाप्त कर दिया जाय, क्षीण कर दिया जाय, खाली कर दिया जाय। इसलिए निर्विकल्प ध्यान में न केवल बाहरी द्वारों को बंद करना होता है ताकि चेतना बर्हिमुखी न हो सके बल्कि अंतरात्मा से आत्मा का ही ध्यान करना होता है जिससे चेतना पर पड़े हुए मल विक्षेप और आवरण को शुद्ध किया जा सके। तभी ध्याता चेतना को ही चेतना के द्वारा जानता है। जैसे शीशे के द्वारा ही हम अपने चेहरे को देख सकते हैं, और कोई उपाय नहीं है ऐसे ही चेतना को हम चेतना रूपी शीशे में ही देख सते हैं। मानव आत्माएं तीन प्रकार की हैं—एक बहिरात्मा जो बर्हिमुखी हो चुकी है, और सदैव पदार्थ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


और विषयों का चिन्तन करती है। दूसरी है अंतरात्मा, जो अंतरमुखी हो चुकी है और सांसारिक कार्य करते हुए भी अंतर में, ध्यान में स्थित रहती है। तीसरी है वीतराग आत्मा, जो केवल ज्ञान स्वरूप हो चुकी है। इसे ही मुक्त-आत्मा कहते हैं जो ध्यान में सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर चुकी है।

साधारणतः व्यक्ति यह प्रश्न करते हैं कि निर्विकल्प चेतना और निर्विकल्प ध्यान में स्थित होने से हम सांसारिक कार्यों को कैसे चलाएंगे? कहीं हमारी जीवन-यात्रा में विघ्न तो नहीं आएगा, क्योंकि जीवन यात्रा के लिए विकल्प जरूरी है। विकल्प जरूरी है तो निर्विकल्प साधना क्यों? यही तो अध्यात्म का कमाल है और ध्यान का कमाल है और यही हमारे ऋषियों की खोज है कि जीवन की यात्रा भी चले, विकल्प भी चले और साधना भी चले। ध्यान शुद्ध चेतना और ज्ञान के लिए है। यदि ज्ञान के साथ संवेग और संवेदन न हो, राग और द्वेष न हों केवल द्रष्टाभाव हो तो कर्म करते हुए भी निर्विकल्प ध्यान के द्वारा व्यक्ति अकर्म की स्थिति में रह सकता है। जब जब जिस क्षण में राग-द्वेष मुक्त चेतना व्यक्ति में जागती है तो समझिए कि वह अहिंसा है, ध्यान है, समाधि है। यदि सम्यक् चेतना जाग जाय तो समाधि की साधना पूरे दिन हो सकती है।

किसी भी कालबद्ध, देशबद्ध और सीमाबद्ध ध्यान साधना-पद्धति को जीवन की पद्धति नहीं बनाया जा सकता किन्तु प्रतिक्षण हर देश और हर काल में जो ध्यान पद्धति अपनाई जा सके और राग-द्वेष से मन को मुक्त रखकर ध्यान में स्थित रहा जा सके वही हमारी अभ्यास-विधि बन सकती है और होनी चाहिए, क्योंकि इस विधि से ध्याता में सदैव अप्रमाद का भाव जागता है और जागरूकता बनी रहती है। ध्यान है आत्म-जागरण की स्थिति। इस ध्यान पद्धति से जो नैसर्गिक है, सहज है, स्वाभाविक है और हर देश और हर काल में संभव है, साधक उस सहज-समाधि को प्राप्त कर सकता है। इसे ही संतों ने अपने जीवन में अपनाया और यही वैष्णव जीवन प्रणाली कहलाती है। इस साधना-पद्धति से आदमी जीवन यात्रा को चलाते हुए भी, व्यवहार की भूमिका पर करने योग्य कार्य करते हुए भी एक अच्छे साधक का जीवन जी सकता है। साध्य भी वही और साधना भी वही, ध्येय भी वही और ध्यान भी वही। जहां ध्येय ध्यान और ध्याता की त्रिपुटी समरस हो जाती है, एकरस हो जाती है वही वास्तविक ध्यान पद्धति है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



ध्यान-साधना की पद्धति वही हो सकती है जो आत्मा का निज-स्वभाव है और आत्मा का स्वभाव है दर्शन अर्थात् ध्यान और ज्ञान, देखना और जानना। आत्मा को उपलब्ध होना समाधि है और यही आत्मा का निज-स्वभाव है कि वह ध्यानस्थ रहे, समाधिस्थ रहे, अपने में स्थित और आनंदित रहे। आत्मा के स्वभाव से हटकर उसे उपलब्ध करने की कोई पद्धति नहीं हो सकती और यदि कोई साधक ऐसी पद्धति को अपनाता है तो वह आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता, चैतन्य में स्थित नहीं हो सकता। जब साध्य और साधक एक होता है तब ध्येय प्राप्त होता है। चैतन्य की उपलब्धि चैतन्य ही करा सकता है। जो व्यक्ति चैतन्य की आराधना करता है वही चैतन्य को प्राप्त हो सकता है। चैतन्य, आनंद और शक्ति की आराधना किए बिना कोई भी व्यक्ति ध्यान में स्थित नहीं हो सकता और ध्यान की प्रगाढ़ता ही समाधि है, ज्ञान स्वयं समाधि है, आनंद स्वयं समाधि है, शक्ति स्वयं समाधि है। ये सब सहज-समाधि हैं, क्योंकि ये चेतना के स्वभाव हैं। जब और जहां ध्याता आत्मा से दूर होता है तब और तहां वह ध्यान से च्युत होता है। और जब और जहां-जहां आत्मा से निकटता होती है तब और तहां-तहां ध्यान में स्थित होता है। यह सहज और सरल लगता है लेकिन व्यक्ति इतना उलझ गया है, इतना भारी हो गया है कि सहज और सरल को उपलब्ध करना सहज और सरल नहीं रहा है। यद्यपि संतों ने अनेक बार गाया—साधो सहज समाधि भली। सुनने में अच्छा लगता है लेकिन यदि समाधि की उपलब्धि सहज होती तो दुनिया असमाधि में क्यों रहती? रोटी खाने से भूख मिटती है लेकिन रोटी को उपलब्ध करने में कितनी उलझनें हैं? ध्यान करो, समाधि प्राप्त हो जाएगी, आत्मा को जानो आत्मज्ञानी हो जाओगे, बात सीधी है किन्तु देखने और जानने की क्षमता कैसे उपलब्ध हो यह जटिल बात है। चंदन को ललाट पर लगाने से मस्तिष्क को ठंडक मिलती है, शांति मिलती है लेकिन चंदन का रगड़ना काफी पुरुषार्थ मांगता है। ध्यान में बहुत सी रुकावटें होती हैं और जब तक व्यक्ति अपने में ऐसी क्षमता विकसित न कर ले कि वह इन अवरोधों और रुकावटों को समाप्त कर सके तब तक इसके लिए उसे सतत् अभ्यास की भूमिका में से गुजरना पड़ता है।

ध्यान साधना में अनेक कठिनाइयां आती हैं। जैसे स्मृतियां उभरती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



हैं, ध्यान टूट जाता है और आदमी उस स्मृति की महानदी में डूब जाता है। ध्याता ध्यान के लिए प्रयत्न करता है परंतु कल्पनाएं उसे भटका देती हैं। एक के बाद दूसरी कल्पनाओं का ताँता लग जाता है और आदमी इन कल्पनाओं को तोड़ नहीं पाता। आज हम सभी शेखचिल्ली बने हुए हैं। हमें दिन में स्वप्न देखने का शौक है। सभी कल्पना के मायाजाल में फँसे हुए हैं। संकल्प और विकल्प के व्यूह-चक्र से सभी ग्रसित हैं। एक कथा आती है कि एक महंत जी ने एक तालाब बनवाया क्योंकि उनका ऐसा विचार था कि पुण्य कार्य करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। वह तालाब इतना सुन्दर था कि स्वयं इन्द्र का हाथी ऐरावत वहां पर नहाने आया करता था। उसके पांव से उस तालाब के कुछ किनारे टूट जाते थे। एक दिन महन्त जी ने सोचा कि देखें रात में कौन नहाने आता है जो तालाब को तोड देता है। रात को बैठे-बैठे जब देख रहे थे तो ऐरावत हाथी आया। जल क्रीड़ा करने के पश्चात् जब हाथी आकाश में उड़ने लगा तो महन्त जी ने उसकी पूंछ पकड़ ली और इस तरह वह स्वर्ग जा पहुंचे। वहां जाने पर उन्हें हर तरह का सुख मिला। कुछ दिन रहने के पश्चात एक दिन महन्त जी को अपने आश्रम व चेलों की याद आई तो हाथी की पूंछ पकड़कर नीचे आए। जब चेलों ने महन्त जी को देखा तो उन्हें वे महन्त जी का भूत समझकर डरने लगे। इस पर महन्त जी ने सारी बातें बताईं और कहा कि मैं भूत नहीं हूं, मैं वही महन्त हूं और इस-इस तरह से स्वर्ग पहुंच गया था। स्वर्ग की महिमा सुनकर उसके चेलों ने भी स्वर्ग ले चलने की प्रार्थना की। एक दिन महन्त जी चेलों सहित तालाब पर पहुंचे। हाथी आया और ज्यों ही आकाश की ओर उड़ने लगा तो महन्त जी ने हाथी की पूंछ पकड़ ली तथा चेलों ने महन्त जी के पैर पकड़ लिए। वे स्वर्ग की ओर आकाश में उड़ने लगे। उड़ते-उड़ते एक चेले से न रहा गया। वह महन्त जी से तरबूज का आकार पूछने लगा। यद्यपि महन्त जी ने मना किया फिर भी वह न माना। हार कर उसकी जिद्द पर महन्त जी ने ज्यों ही "इतना बड़ा" कहकर हाथ फैलाए त्यों ही सब-के-सब धरती पर आ गिरे। यही गति प्रायः साधना में बैठे साधक की होती है।

साधना में जब साधक बैठता है और मन को चैतन्य-स्वरूप परमात्मा के नाम में लगाता है तो मन स्वभाववश माया से प्रेरित विचारों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



में जाता है और नाम को छोड़ देता है, जिस कारण उसे चैतन्य-स्वरूप परमात्मा का बोध नहीं होता। यही कारण है कि योग में प्रत्याहार का महत्व है जिसका अर्थ है कि इंद्रियों तथा मन को भिन्न-भिन्न मायावी विचारों से हटाकर परमात्मा के नाम में, स्वयं प्रकाश में स्थिर करना। इसी के लिए भगवान कृष्ण ने अर्जुन को बताया कि इस चंचल मन को अभ्यास और वैराग्य के द्वारा ही शब्द-ब्रह्म में लगाया जा सकता है। इसी प्रक्रिया को ध्यान कहा जाता है।

आचार्यों ने अपने अनुभव के द्वारा बताया कि ध्यान के लिए देश और काल की कोई मर्यादा नहीं हो सकती। अमुक स्थान और अमुक काल में ही ध्यान किया जाय यह निर्धारण नहीं हो सकता। ध्यान के लिए एक ही नियम पर्याप्त है कि वह हर स्थिति में, हर काल में और हर स्थान में होना चाहिए। गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं कि :—

**मामनुस्मर युद्ध च।**

हर काल में मेरा सुमिरण करते हुए युद्ध कर। भगवान कृष्ण ने यह आदेश केवल अर्जुन को नहीं दिया बल्कि अर्जुन को निमित्त बनाकर सभी साधकों को दिया है। गुरु नानकदेव जी कहते हैं—

**उठत बैठत सोवत जागत नाम, कह नानक सद भए तिनके काम ।**

जिस स्थिति में भी और जिस काल में भी ध्यान करने से चित्त की एकाग्रता सधती हो वह समय और स्थान ध्यान के लिए उपयुक्त है। जिस आसन में और जिस मुद्रा में ध्यान सधता हो वही आसन और मुद्रा उपयुक्त है। मूल बात स्थान और काल नहीं है, आसन और मुद्रा नहीं है। मूल बात है चित्त की समाधि या मन का समाधान। दर्शन और ज्ञान की शक्ति का विकास कैसे हो? आत्मा पर पड़े हुए आवरण कैसे छूटें? जब चित्त की निर्मलता होती है तब ध्यान और ज्ञान की शक्ति बढ़ती है। ध्यान-साधना की विभिन्न प्रक्रियाएं चित्त-शुद्धि की प्रक्रियाएँ हैं। चित्त निर्मल बने, उस पर जो मैल जमा है वह हट जाय और कांच की भांति निर्मल बन जाय।

ध्यान साधना का अधिकारी हर व्यक्ति है। ध्यान व्यक्ति का निज स्वभाव है। ध्यान के बिना मानव पशु के समान है। कुछ आचार्यों का अभिमत है कि ध्यान साधना अथवा योग साधना केवल कुछ विशिष्ट साधक ही कर सकते हैं, आम संसारी लोग नहीं कर सकते। तांत्रिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



साधना, हठयोग की साधना या भूत पिशाच की साधना के बारे में यह भले ही ठीक हो, लेकिन जिस ध्यान साधना को और भक्तियोग को हमारे संतों और ऋषियों ने अपनाया वह तो सबके लिए और सब काल में हितकारी है। उससे तो मंगल ही मंगल होता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है

**भाव कुभाव अनख आलसहू। नाम जपत मंगल दस दिशहू।।**

साधना कभी दुसाध्य या कठिन नहीं होती। यदि साधना हमारे जीवन की पद्धति नहीं बन सकती और केवल कुछ लोगों के लिए है तो ऐसी साधना का महत्व बहुत सीमित होगा। ध्यान साधना ऐसी होनी चाहिए जो हर स्थान में हो सके—जंगल में भी और गांव में भी। और साधना जंगल में भी नहीं हो सकती और गांव में भी नहीं हो सकती यदि व्यक्ति की रुचि साधना में नहीं है और उसका मन बहिर्मुखी है। जंगल में अकेला बैठा हुआ आदमी कई बार इतना बड़ा पाप कर सकता है कि गांव में बैठा हुआ आदमी भी उतना नहीं कर सकता। साधना अकेले में भी हो सकती है, साधना समूह में भी हो सकती है। ध्यान परिपक्व होने पर चाहे साधक अकेला रहे, समूह में रहे, जंगल में रहे साधना घटित होती है। ध्यान साधना के लिए चाहिए जागरूकता। जो जागा हुआ है वह ध्यान में है और जो सोया हुआ है वह मूर्च्छित है। आत्म-जागरण ध्यान है, आत्म-विस्मृति मूर्च्छा है।

चंचलता ध्यान में बाधा है। जब चित्त चंचल होता है तब यथार्थ दिखाई नहीं देता। चंचलता का हेतु है मन। मन का अर्थ है स्मृति, कल्पना एवं संकल्प-विकल्प। स्मृति, कल्पना और चिंतन के अतिरिक्त मन कुछ भी नहीं है। या तो मन होगा या नहीं होगा। मन होगा तो चंचलता अवश्य होगी। अशांत मन भार बन जाता है। व्यक्ति शरीर के भार को ढो सकता है पर मन के भार को ढोना उसके लिए सहज नहीं है। कई बार व्यक्ति मन के भार के नीचे दबकर समाप्त हो जाता है। सारी चंचलता मन की है और मन स्थिर किया जा सकता है। मन को स्थिर करने का अर्थ होगा कि मन को अ-मन बना देना। मन की तरंग बाकी सब तरंगों से सूक्ष्म है। किसी भी बाहरी उपकरण से मन स्थिर नहीं हो सकता। यदि एक व्यक्ति दस मील प्रति घंटे की रफ्तार से दौड़ रहा है और हम उसे पकड़ना चाहते हैं लेकिन हमारी रफ्तार केवल पांच मील प्रतिघंटा है तो क्या हम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



कभी उसे पकड़ सकेंगे, रोक सकेंगे? जवाब साधारण सा है कि नहीं। मन न केवल बलशाली है बल्कि अति चंचल है और बहुत ही तीव्र गति से चलने वाला है। इसे किसी भी बाहरी उपकरण से, जप से, माला फेरने से तीर्थ में जाने से, कर्मकाण्ड करने से, वेद पढ़ने से, शास्त्रों का अध्ययन करने से स्थिर नहीं किया जा सकता। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है।

इसलिए हमारे ऋषियों ने कहा कि मन प्राण से उत्पन्न होता है और प्राण में ही वह शक्ति है कि वह मन को अपने में समा सकता है। हमारा सारा शरीर ही प्रकंपनों का शरीर है, स्पंदनों का शरीर है। यह सारा जगत् ही स्पंदनमय है। मन के स्पंदन को, स्मृति के स्पंदन को, संकल्प-विकल्प के स्पंदनों को जो हमारे संचित संस्कारों से पैदा होते हैं या जो बाहरी विषयों के संपर्क से उत्पन्न होते हैं उन्हें विलय करने की, अपने में लीन करने की शक्ति केवल उसी ध्यान पद्धति में संभव हो सकती है जो प्राणों से संबंधित हो। इसलिए प्राणों में समायी हुई जो चैतन्य शक्ति है, जब हम उसका ध्यान प्राण-अपान को सम करके करते हैं तो उसमें मन का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। मन विलीन हो जाता है और इस सम-अवस्था में एक विस्फोट होता है जिससे वह आत्मिक शक्ति जागृत होती है। यह विस्फोट ध्यान की सघन अवस्था में ही संभव है और इसी को विशेष अनुभूति कहा जाता है। यह क्षण दुर्लभ है जब व्यक्ति की सुरति, निरति और काया सभी अचल हो जाएं, वे चंचल न रहें।

साधारणतः व्यक्ति चंचलता का जीवन ही व्यतीत करता है। यह चंचलता नाड़ी संस्थान में अभिव्यक्त होती है। नाड़ी संस्थान के बिना संस्कारजनित चंचलता अभिव्यक्त नहीं हो सकती। बिजली का बोल्टेज कितना ही हो, प्रकाश की अभिव्यक्ति बल्ब के बिना नहीं हो सकती। भीतर मोह के अथवा काम के परमाणु कितने ही सक्रिय हों, उत्तेजित हों किन्तु यदि नाड़ी संस्थान में चंचलता नहीं है तो उनकी चंचलता प्रगट नहीं होती। काम, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या अहंकार आदि की तरंगें हमारे श्वास की चंचलता को बढ़ा देते हैं, संतुलन को बिगाड़ देते हैं। क्रोध आता है, श्वास तीव्र हो जाता है। श्वास शांत हो जाता है तो आवेश शांत हो जाता है या जब आवेश शांत हो जाता है तो श्वास स्वयं शांत हो जाता है। चेतना की धारा और माया की धारा दोनों शरीर के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


इसलिए शरीर दर्पण हैं अंतरभावों का। जब व्यक्ति निर्मल होता है तो उसके भाव निर्मल होते हैं, उसकी चेतना शुद्ध होती है। ध्यान के द्वारा ध्याता के शरीर पर भी प्रभाव पड़ता है और उसके शरीर-तंत्र भी स्वस्थ, निर्मल और शांत होते हैं। जब माया की धारा और प्रवाह व्यक्ति में बढ़ता है तो उसका चित्त भी उद्विग्न और चंचल होता है और शरीर पर भी उसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

ध्यान है परम आनंद का झरना। जब ध्याता ध्यान में स्थित होने लगता है तो उसमें आनंद की तरंगे लहरें मारने लगती हैं। वैज्ञानिकों ने कहा है कि व्यक्ति के मस्तिष्क में एक प्रकार की एल्फा तरंगे हैं जो व्यक्ति को आनंद और शांति देती हैं। ये तरंगे तब पैदा होती हैं जब मन शांत होता है। आनंद की एक झड़ी सी लग जाती है। आनन्द की रिमझिम वर्षा होने लगती है। कबीर ने इसे—बरसे कम्बल भीगे पानी की उल्टी वाणी से व्यक्त किया है और एक भजन में गाया है कि—

शब्द झड़ लाग्योरी, बरसन लाग्यो रंग ।
जनम मरण की दुविधा भागी ।
समरथ नाम भजन लव लागी।।
मेरे सतगुरु दीन्हीं सैन, सत्यघर पाय गयो री।।
चढ़ी सुरत पश्चिम दरवाजा ।
त्रिकुटी महल पुरुष एक राजा।।
अनहद की झनकार, बजे जहां बाजा री।।
अपने पिया संग जाकर सोई ।
संशय शोक रहा नहिं कोई।।
कट गये करम कलेश, भरम भय भागारी।।
शब्द बिहंगम् चाल हमारी ।
कह कबीर सद्गुरु दई तारी।।
रिमझिम रिमझिम होय, काल बस आ गयोरी।।

ध्यान से अनिर्वचनीय सुख प्राप्त होता है। सूरदास ने इसे गूंगे के गुड़ खाने जैसा कहा है। आश्चर्य होगा कि न कुछ खाया, न सूंघा, न सुना, न देखा और न स्पर्श किया फिर कैसा सुख और आनंद और कहां से मिला? व्यक्ति इस भ्रांति में उलझा हुआ है कि शायद इंद्रियों के विषयों में ही सुख

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



है। रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श के अतिरिक्त व्यक्ति के लिए और कोई आनंद की कल्पना ही नहीं। वास्तविकता यह है कि विषयों में सुख नहीं है, पदार्थ में सुख नहीं है। आनंद पदार्थ का लक्षण नहीं है, स्वभाव नहीं है, वह तो केवल चैतन्य का गुण और लक्षण है। आज वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि हमारे भीतर एक विद्युत धारा है, प्राण-धारा है जो सुख का निमित्त बनती है।

वैज्ञानिक प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि विद्युत के प्रकंपनों के बिना कोई सुख का संवेदन नहीं हो सकता। जो सुख इंद्रिय-विषयों के उपभोग से उपलब्ध किया जाता है वही सुख इंद्रिय-विषयों के बिना कल्पना से भी उपलब्ध किया जाता है। स्वप्नकाल में व्यक्ति इंद्रियों के बिना भी आनंद का अनुभव करता है। इसलिए लोग कहते हैं कि प्रभु करे तुम्हें मीठे स्वप्न आएं। (May you have sweet dreams) और वही सुख केवल विद्युत के प्रकंपन पैदा करके भी लिया जा सकता है। कान के बिन्दु पर या स्वाद के बिन्दु पर एलेक्ट्रोड लगाकर प्रकंपन पैदा किया जाय तो पदार्थ के बिना भी उसके उपभोग की सी सुख की संवेदना का अनुभव होता है। वस्तु के संयोग से जो प्रतिक्रियाएं पैदा होती हैं वे प्रतिक्रियाएं वस्तु के बिना भी विद्युत के प्रकंपनों से पैदा की जा सकती हैं। इसलिए यह तथ्य प्रमाणित हो गया कि सुख का संवेदन विद्युत-प्रकंपन से होता है, प्राण-प्रवाह से होता है। जब व्यक्ति में तेजस् शक्ति जागती है तब प्राण-प्रवाह बलशाली हो जाता है और विद्युत के प्रकंपन बहुत बढ़ जाते हैं। इसलिए ध्यान के द्वारा जब व्यक्ति की प्राण शक्ति विकसित होने लगती है, संचित होने लगती है और उसका क्षय रुक जाता है तो उसमें विद्युत के प्रकंपन बढ़ जाते हैं और उसमें स्वतः ही आनंद और सुख का अनुभव होता है। उसे ही आत्म-आनंद कहते हैं जिसे व्यक्ति छोड़ना नहीं चाहता, क्योंकि इंद्रिय विषयों को भोगनें से जो सुख या आनंद प्राप्त होता है वह न केवल क्षणिक है बल्कि वह और भी कठिनाइयां पैदा करता है। गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं कि इंद्रियों के सुख शुरू में तो अमृत समान होते हैं लेकिन बाद में विष के समान होते हैं। व्यक्ति शक्तिहीनता का अनुभव करता है और कभी संताप से भर जाता है लेकिन ध्यान के द्वारा प्राण शक्ति को नियोजित और संचित करके जो प्रकंपन पैदा होते हैं वे केवल सुखद होते हैं, वे अपने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



पीछे दुखद परिणाम नहीं छोड़ते। इसलिए ध्यान के द्वारा पदार्थ को भोगे बिना भी अपूर्व सुख का अनुभव हो सकता है। जब व्यक्ति आदि स्पंदन के साथ जुड़ता है, जब व्यक्ति ज्योति में स्नान करता है तब व्यक्ति में प्रज्ञा निर्मलता बढ़ती है जो हजारों ग्रंथों के अध्ययन से भी उपलब्ध नहीं होती और एक ऐसी अंतरदृष्टि मिल जाती है कि साधक समस्या को तत्काल सुलझाने में सक्षम हो जाता है। जब शुक्ल प्रकाश के प्रकंपन में उसका मन स्थिर होने लगता है जिसे आत्म ज्योति कहते हैं, तब अनिर्वचनीय शांति प्राप्त होती है। मन में कोई संताप शेष नहीं रहता। सफेद रंग शांति का प्रतीक है जो आत्मा का द्योतक है। इसलिए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

**रामभक्ति मणि उरें बस जाके। दुख लवलेश न सपनेहुं ताके।।**

यह जगत् विरोधी युगलों का जगत् है। स्पर्धा और प्रतिस्पर्धा, लाभ और हानि इस जगत् के व्यवहार हैं। विरोधी युगलों के जगत् में तनाव न हों, समस्या न हों यह कैसे संभव हो सकता है? व्यक्ति अकेला ही नहीं जीता, वह एक सामाजिक प्राणी है, सामाजिक संबंधों से जकड़ा हुआ है। आंतरिक व्यक्ति मूर्च्छा और आसक्ति का व्यक्ति है। उसके संचित कर्म, संस्कार भीतर के संवेग, आसक्ति और ममत्व ही उसे तनाव में नहीं डालते, सामाजिक परिस्थितियां भी उसके लिए तनाव का निमित्त बनती हैं। आज व्यक्ति के लिए सारी दुनिया बहुत छोटी हो गई है। घटना कहीं होती है और तनाव यहां बैठे हुए व्यक्ति को हो जाता है। भुट्टो को फांसी पाकिस्तान में दी गई, घटना वहां घटित हुई और कश्मीर में गांव जला दिए गए, वहां के आदमी घटना से प्रभवित हो गए। क्रिकेट कहीं खेला जा रहा है और यहां का आदमी उससे प्रभावित हो रहा है। ओलंपिक सियोल में हो रहा है और तालियां यहां बज रही हैं। पक्ष और प्रतिपक्ष में लोग सदैव बंटे रहते हैं। व्यक्ति केवल रोटी से संतुष्ट नहीं होता और वह केवल चिकित्सा की सुविधा और पढ़ लिख लेने से भी संतुष्ट नहीं होता। संसार की संपदा और सुखों को प्राप्त करने पर भी उसके अंतः करण में एक बेचैनी रहती है, एक अभाव रहता है। अमेरिका और यूरोप के विकसित देशों में भी जहां स्वर्ग तुल्य सुख प्राप्त हैं व्यक्ति बेचैन है और मानसिक बीमारियों से ग्रसित है, तनाव का जीवन जी रहा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



आत्महत्याएं दिन प्रतिदिन इन देशों में बढ़ रही हैं। नशीली वस्तुओं का सेवन बढ़ रहा है। भोग विलास ने व्यक्ति को दुखी कर दिया है। वास्तविकता तो यह है कि व्यक्ति मूर्च्छित है और जब तक मूर्च्छा का इलाज नहीं होगा, आदमी संतुष्ट नहीं होगा तब तक वह तनाव से मुक्त नहीं होगा। मूर्च्छा और अज्ञान ही मूल कारण है व्यक्ति के अंसतुष्ट होने का, तनाव में रहने का और सबसे महत्त्व की बात यही है कि इस मूल कारण पर ही सारा ध्यान केंद्रित किया जाए और व्यक्ति की मूर्च्छा को समाप्त किया जाय। अध्यात्म की यही महत्वपूर्ण देन है। धर्म की समूची आराधना, अध्यात्म की संपूर्ण प्रक्रिया और ध्यान का अभ्यास यह सब मूर्च्छा को, तनाव को समाप्त करने के साधन हैं।

ध्यान का प्रयोजन है आस्था और श्रद्धा को विकसित करना। जैसी आस्था और श्रद्धा होती है वैसा ही व्यक्ति हो जाता है। हमारे जीवन की समस्त क्रियाएं आस्थाओं के द्वारा संचालित होती हैं। जैसी आस्था होगी उसी ओर हमारी सारी शक्ति बहने लगेगी। आस्थाओं से आदत का निर्माण होता है। ध्यान का लक्ष्य है आस्थाओं का परिमार्जन। मूर्च्छित व्यक्ति चिंता में जीता है और जागरूक व्यक्ति चिंतन और ध्यान में जीता है। जब एक साधक ध्यान के द्वारा चैतन्य के साथ जुड़ जाता है तो उसका दृष्टिकोण बदल जाता है और भौतिक पदार्थों से संयोग और वियोग जो सुख दुख का कारण बनते हैं, या तनाव का कारण बनते हैं, उनके प्रति उसमें प्रतिरोधात्मक शक्ति पैदा हो जाती है। हम संसार में से द्वंद्वों को तो दूर नहीं कर सकते, समस्याओं को तो पूरी तरह से नहीं मिटा सकते। सभी युगों में चाहे वह सतयुग हो या कलियुग हो, व्यक्ति को समस्याओं का सामना करना पड़ा है। आदमी सदा समस्या के साथ जीता रहा है, जी रहा है और जीता रहेगा। यदि कोई यह कल्पना करे कि ऐसा युग आएगा जिसमें कोई समस्या ही नहीं रहेगी तो यह भी अति-कल्पना होगी। इस परिवर्तनशील समाज में कुछ भी टिकाऊ नहीं है। परिस्थितियां बदल रही हैं, समस्याओं के रूप बदल रहे हैं। एक बीमारी पर चिकित्सक विजय प्राप्त करते हैं तो दूसरे प्रकार की बीमारी जन्म ले लेती है। सामाजिक विषमता को भी पूर्ण रूप से मिटाना असंभव सा प्रतीत होता है। इसलिए हम ध्यान साधना के द्वारा प्रतिरोधात्मक शक्ति को विकसित करना चाहते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



हैं। हम ऐसी शक्ति पैदा करें जो समस्या की शक्ति के सामने घुटने न टेके बल्कि समस्या का प्रतिरोध कर सके और उस पर विजय प्राप्त कर सके। हमारे शरीर में जब रोग-प्रतिरोधक शक्ति प्रबल होती है तब किसी प्रकार के रोग के कीटाणु आक्रमण नहीं कर सकते। वे आते हैं और प्रतिरोधात्मक शक्ति से पराजित होकर भाग जाते हैं। जिस व्यक्ति की प्राण-शक्ति कम हो जाती है, रोग-निवारक शक्ति क्षीण हो जाती है उसे कीटाणु अधिक सताते हैं।

लौह और इस्पात दो हैं। लौह कमजोर होता है और इस्पात बहुत मजबूत होता है। लौह पर जंग जमता है, इस्पात पर जंग नहीं जमता। लौह ही इस्पात में बदलता है। धातु को मजबूत करने के लिए उसे तेज तापमान दिया जाता है। और जितने ही विजातीय कण उससे निकाल दिए जाते हैं उतना ही वह धातु मजबूत बन जाता है। अन्तरिक्ष-यान के लिए लौह-धातु को बहुत मजबूत बनाया जाता है जिससे कि वह हर झटके को झेल सके। किन्तु मजबूती तब आती है जब विजातीय कण निकाल दिए जाते हैं और मूल कण अधिक से अधिक विकसित होते हैं।

हमारे चित्त की भी यही प्रक्रिया है। जब चित्त में विजातीय तत्व या मायावी तत्व ज्यादा होते हैं तब चित्त इतना कमजोर बन जाता है कि वह परिस्थिति के झटके को सहन नहीं कर सकता, तत्काल टूट जाता है। यदि उसी चित्त को ध्यान की तेज अग्नि के द्वारा तपाया जाता है, उसे लौह से फौलाद बना दिया जाता है, उसके सारे विजातीय तत्वों, संस्कारों को निकाल दिया जाता है तो वह बहुत मजबूत बन जाता है। उस स्थिति में केवल चित्त रह जाता है, विशुद्ध चित्त मात्र। वह प्रत्येक तूफान का सामना कर सकता है और भयंकर से भयंकर बवंडर में अविचल खड़ा रह सकता है। इसीलिए संतों ने कहा कि अपने मन को आदि स्पंदन के साथ अविरल भाव से जोड़ दो। Hook your mind with the "shabd Brahm", the cosmic vibration and then float in pure consciousness.

ध्यान की प्रक्रिया समस्याओं को समाप्त करने की प्रक्रिया नहीं है। ध्यान-साधक ये भ्रांति न रखें कि ध्यान से सारी समस्याएं शांत हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



जाएंगी। ऐसा कभी नहीं होगा। ध्यान के द्वारा समस्याएं या परिस्थिति नहीं मिट सकती। जगत् में विभिन्न प्रकार के लोग हैं। उनकी ग्रंथियों के आंतरिक स्राव भी भिन्न-भिन्न हैं, उनकी विद्युतधाराओं के प्रवाह भी भिन्न-भिन्न हैं। क्या-क्या मिटा पाएंगे? ध्यान के द्वारा रोटी की और आजीविका की समस्या को नहीं सुलझाया जा सकता। कितना ही ध्यान करें उससे रोटी प्राप्त नहीं हो सकती। रोटी के लिए खेती आवश्यक है, रोटी के लिए श्रम और व्यवसाय अपेक्षित है। ध्यान के द्वारा जो प्राप्तव्य है वह ध्यान से मिल सकता है। जो ध्यान के द्वारा नहीं हो सकता उसको ध्यान के द्वारा प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना एक भ्रान्ति है। ध्यान के द्वारा मिलता है—मनोबल, चित्तशक्ति, शुद्ध-चेतना का पराक्रम। ध्यान के द्वारा व्यक्ति में ऐसी शक्ति जग जाती है जो प्रत्येक परिस्थिति का हँसते-हँसते सामना करने में सक्षम है और बड़ी से बड़ी समस्या में वह मानसिक संतुलन को बनाए रखता है। संतुलन को बनाए रखना बहुत बड़ी बात है। कष्ट को झेलने की शक्ति एकाग्रता से प्राप्त होती है। जिस व्यक्ति या समाज में एकाग्रता की शक्ति नहीं होती वह कंगाल बन जाता है। आज भारत और जापान की स्थिति को देखें। जापान ने जितना विकास किया है, भारत उससे काफी पीछे है। ध्यान की प्रक्रिया से जापानी लोगों ने सभी क्षेत्रों में विकास किया है लेकिन भारत ने एकाग्रता की शक्ति को और उस विद्या को भुला दिया है जो ध्यान से प्राप्त होती है। प्रायः व्यक्तियों की यही स्थिति है कि वह एक समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करते हैं और ध्यान दूसरी समस्या पर चला जाता है। फिर तीसरी और चौथी समस्या। ध्यान कहीं टिकता नहीं इसलिए समस्याएं जटिल होती जाती हैं। ध्यान व्यक्ति को केन्द्रित होना सिखाता है। साधक ध्यान के द्वारा एकाग्रता और संकल्पशक्ति का विकास करे और समस्याओं के समक्ष एक प्रतिरोधात्मक शक्ति खड़ी करे जिससे कि चित्त समस्या से डरे नहीं किन्तु उसके सामने एक पर्वत की भांति अचल खड़ा रह सके।

मानस शास्त्री मानते हैं कि जीवन में काम आवश्यक है, यह मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है। जीवन की स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति यदि नहीं होती तो एक प्रकार का उन्माद या पागलपन उत्पन्न हो जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



है। सैक्स इन्सटिंट (Sex-Instinct) को व्यक्ति की सबसे बड़ी भूख कहा गया है। इसके लिए लोग बड़े से बड़ा अपराध करते हैं। यह किसी हद तक सही है। काम जीवन का एक भाग है। इस सच्चाई को स्वीकार करते हुए भी हम इस बात को न भूलें कि जिस व्यक्ति ने काम के आनंद से भी बड़े आनंद की ऊर्जा को उत्पन्न कर लिया उसके लिए काम निकम्मा बन गया। जो आनंद के महासागर में डुबकियां लगा रहा हो वह ताल तलैयों में क्या स्नान करेगा? जो व्यक्ति काम के आनंद के स्रोत को बंद कर देता है किन्तु आनंद के महा स्रोत का द्वार उद्घाटित करना नहीं जानता वह ब्रह्मचारी नहीं बन सकता, हां पागल बन सकता है। ब्रह्मचारी वही हो सकता है जो काम-जनित सुख के द्वार को रोकने के साथ साथ सुख के एक महाद्वार को उद्घाटित कर देता है जिससे आनंद का सतत् प्रवाह बना रहता है। तब काम-सुख की सार्थकता समाप्त हो जाती है। शरीर में एक ग्रंथि है एड्रिनल और दूसरी है पिट्यूटरी। ये दोनों ग्रंथियां बहुत महत्वपूर्ण हैं। ये हमारे व्यवहार और आचरण को संचालित करती हैं। एड्रिनल ग्रंथि के कारण ही काम-वासना, उत्तेजना, आवेग आदि जागृत होते हैं। पिट्यूटरी ग्रंथि आनंद और शांति की ग्रंथि है और मास्टर ग्रंथि है। यदि इसके द्वारा एड्रिनल ग्रंथि को नियंत्रित और निष्क्रिय बना दिया जाए तो सारी काम वृत्तियां समाप्त हो जाती हैं, आवेग कम हो जाते हैं और अपूर्व आनंद की वृत्ति जागृत हो जाती है। तब काम अकाम बन जाता है। किन्तु जो व्यक्ति पिट्यूटरी या दर्शन केन्द्र को जागृत करना नहीं जानता और ब्रह्मचारी बनने की बात करता है वह बाहरी नियंत्रण की वजह से भीतर के प्रवाह को रोक नहीं सकता और तनाव के कारण पागल तक हो सकता है।

ध्यान-साधक के लिए आहार का संयम भी बहुत अपेक्षित है। जो व्यक्ति अपनी सारी शक्ति भोजन के पाचन आदि में खपा देता है वह व्यक्ति ध्यान नहीं कर सकता। अधिक भोजन करने वाले साधक की सारी ऊर्जा आंतों में खप जाती है। आहार केवल मुंह से ही नहीं लिया जाता है। आहार लेने के और भी बहुत माध्यम हैं। सूर्य की किरणों से भी व्यक्ति आहार ले सकता है, वायु से भी व्यक्ति को आहार और शक्ति प्राप्त होती है। पहले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



लोग सूर्य स्नान करते थे क्योंकि सूर्य की किरणों में बहुत से तत्व और विटामिन पाए जाते हैं। अमेरिका जैसे ठंडे देश में सूर्य-स्नान (Sun-bath) का बड़ा रिवाज है।

इस जगत में आत्मा भी ज्ञेय है और पदार्थ भी ज्ञेय है। आत्मा भी जानने योग्य है और पदार्थ भी जानने योग्य है। आत्मा भी ध्येय है और पदार्थ भी ध्येय है। दोनों को जानने की जिज्ञासा मानव में रही है और दोनों को जानने के लिए ध्यान ही माध्यम है। ध्यान के लिए कोई आलम्बन चाहिए। बाहरी जगत् में वैज्ञानिकों ने जो आविष्कार किए हैं, अनुसंधान किए हैं वे भी ध्यान की शक्ति के चमत्कार हैं। न्यूटन के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वह अपनी खोज में इतना तन्मय हो जाता था, विचारों में खो जाता था कि उसे यह भी सुध नहीं रहती थी कि उसने खाना खाया है या नहीं। आइन्सटाइन के बारे में भी यह प्रसिद्ध है कि वह जिस तत्व का चिंतन करते थे उसमें पूरी तरह से एकाग्र हो जाते थे। इस जगत् में कोई भी व्यक्ति महान नहीं बन सकता जिसमें ध्यान की क्षमता न हो। चाहे वह बाहरी जगत् हो और चाहे वह आंतरिक जगत् हो। खिलाड़ी वही स्वर्ण-पदक लेते हैं जो एकाग्रचित्त वाले होते हैं। विद्यार्थी वही कक्षा में प्रथम आता है जो एकाग्रचित्त होकर पढ़ता है। सरकस को देखकर ध्यान की एकाग्रता की महत्ता और भी प्रगट होती है। एक रस्सी पर नृत्य करती हुई नट और नटी की एकाग्रता का कमाल है। बाहरी पदार्थ या वस्तुओं पर एकाग्रता व्यक्ति को न केवल उस पदार्थ पर नियंत्रण करने की शक्ति देती है बल्कि वह पदार्थ के गुण और स्वभाव को भी बारीकी से समझने की क्षमता पैदा करती है। परंतु यह वस्तु या पदार्थ का ध्यान है, चेतन आत्मा का नहीं। इसमें एक वैज्ञानिक या साधक जो निपुणता प्राप्त करना चाहता है, अपने विचारों को और ऊर्जा को सब ओर से हटाकर उस वस्तु या पदार्थ पर केन्द्रित करता है और जैसे जैसे उसके विचार केन्द्रित होने लगते हैं वैसे वैसे उस वस्तु का स्वभाव, गुण और अंतर्निहित प्रकृति उसके सामने प्रगट होने लगती है। आयुर्वेद के प्रवर्त्तक ऋषि चरक के बारे में कहते हैं कि वे पौधों और जड़ी-बूटियों के पास खड़े हो जाते थे और उन्हें एकाग्रचित्त होकर देखते रहते थे, उनसे प्रार्थना करते थे कि तुम मुझे बताओ तुम्हारा गुण क्या है? एकाग्रता के क्षण में वे उस जड़ी बूटी के सूक्ष्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



गुण, तत्व शक्ति और प्रयोग को समझ जाते थे। इसे विचय ध्यान कहते हैं। इसमें विचार, मनन और चिन्तन के आधार पर किसी वस्तु या तथ्य पर ध्यान किया जाता है। साधारणतः व्यक्ति के विचार बिखरे रहते हैं लेकिन एक साधक या वैज्ञानिक अपने मनोबल एवं संकल्प से अपने चिंतन और विचारों को एक दिशा में प्रवाहित करता है और उस वस्तु पर केन्द्रित करता है जो उसकी अध्ययन-वस्तु है या ध्येय-वस्तु है। यह ध्यान सविचार है।

आज के वैज्ञानिक और दार्शनिक विचय ध्यान के द्वारा ही सत्य तक पहुंचते हैं। वस्तु जगत् में जितनी घटनाएं घटित होती हैं उनका ज्ञान विचय ध्यान के द्वारा ही हो सकता है। विचय का अर्थ है तथ्यों एवं विचारों को तरतीब में रखना और कारण और कार्य के संबंध को स्थापित करके किसी वस्तु के तथ्य को जानना। वैज्ञानिक इसी प्रक्रिया को अपनाते हैं। प्राचीन साधकों और अध्यात्म योगियों ने वस्तु सत्यों की, वस्तु के सूक्ष्मतम रहस्यों की खोज इसी विचय ध्यान के माध्यम से की थी जिसमें निरीक्षण और परीक्षण अंतर्निहित होते हैं। वस्तु का स्थूल रूप हमारे सामने होता है। उसे हम देख सकते हैं, जान सकते हैं किन्तु उसका सूक्ष्म स्वरूप ज्ञात नहीं होता। उस पर ध्यान केन्द्रित करने पर ही उसके अंतर-स्वरूप का ज्ञान हो सकता है। ऊपर केवल छिलका होता है, उसका ज्ञान हर व्यक्ति को हो सकता है। जब तक छिलके के भीतर नहीं देखा जाता तब तक सार वस्तु का पता ही नहीं चलता। जो दिखाई देता है वह वस्तु का ऊपरी भाग होता है। वस्तु उतनी ही नहीं होती, उसकी गहराई उतनी ही नहीं होती जितनी इन चर्म चक्षुओं से दीखती है। सारी गहराइयों को नापने के लिए बहुत गहराइयों में जाना पड़ता है। विचय ध्यान सिद्ध होने पर व्यक्ति जिस किसी पदार्थ, चेतन या अवचेतन पर एकाग्र होगा उस वस्तु के नए-नए पर्याय उद्घाटित होते जाएंगे। उसका स्वरूप बहुत स्पष्ट होता जाएगा और जिस विषय पर साधक केन्द्रित होता है वह उस विषय पर धीरे धीरे पूर्णता को भी प्राप्त कर लेता है। बौद्धिक संघर्षों का यही कारण है। वाद और प्रतिवाद इसीलिए खड़े होते हैं। किसी वस्तु के विषय में जितने विचार हैं वे सब अपनी-अपनी भूमिका में सत्य हैं। विचय ध्यान एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है और प्रायोगिक है। विज्ञान और ध्यान की एक ही प्रक्रिया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



जहां तक सत्य की खोज का प्रश्न है वहां तक दोनों में कोई अंतर नहीं है। विज्ञान ध्यान की प्रक्रिया है और ध्यान स्वयं विज्ञान की प्रक्रिया है। अंतर है उपयोगिता के क्षेत्र में। प्रयोग काल में जो वैज्ञानिक ध्यान का अभ्यास नहीं करता, एकाग्रचित्त नहीं होता वह नए तत्वों की खोज नहीं कर सकता।

विचय ध्यान क्योंकि तत्वों का ध्यान है अतः वह आत्मतत्व का ध्यान नहीं कहला सकता। आत्मा की साधना करने वाला, चैतन्य की साधना करने वाला पदार्थ की साधना कर रहा है या ध्यान कर रहा है, तत्वों की साधना या ध्यान कर रहा है, तो फिर वह चैतन्य का ध्यान कैसे हुआ? आज समाज में बहुत सी ऐसी ध्यान-पद्धतियां प्रचलित हैं जिन्हें हम चैतन्य के ध्यान की पद्धति नहीं कह सकते, केवल वस्तु की या केवल पांच तत्वों की पूजा आराधना ही कह सकते हैं। कोई हवन कर रहा है, वह पृथ्वी तत्व को अग्नि तत्व में स्वाहा कर रहा है। कोई निराकार चेतन सत्ता का आकाशरूप में ध्यान कर रहा है और उसे ही निराकार परमात्मा माने हुए है। आकाश तत्व का तो गुण शब्द है और उसका रंग भी है लेकिन फिर भी लोग निराकार की पूजा या निराकार का बोध दो हाथों के बीच में रिक्त आकाश को दिखाकर उससे ही साधकों को निराकार सत्ता का दिग्दर्शन कराते हैं। जितनी भी बाहरी ध्यान पद्धतियां हैं या मन की कल्पना पर आधारित हैं और व्यक्तियों के द्वारा निर्मित की गई हैं अपने-अपने ढंग से अधकचे-पके आचार्यों के द्वारा, जो स्वयं पूर्ण ज्ञान के अधिकारी नहीं हैं, वे सब पद्धतियां शास्त्र मत के अनुकूल नहीं हैं और न ही ऋषियों और पूर्ण ज्ञानियों और संतों के द्वारा प्रतिपादित की गई हैं। ऐसी ध्यान-पद्धतियों से भले ही कुछ बाहरी लाभ हो जाय लेकिन आत्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता।

आत्मा निराकार, निरंजन और विशुद्ध होते हुए भी प्रकृति-जन्य तीन गुणों से आवृत्त हो गई है। इस चेतना का प्रवाह सूक्ष्म रूप से प्राणों में समाया हुआ है। प्राण-ऊर्जा के ऊर्ध्व गमन के द्वारा ही हम चेतना के आवरणों को हटाकर विशुद्ध चेतना को प्राप्त कर सकते हैं। यही ध्यान की प्रक्रिया अनादि प्रक्रिया है, नैसर्गिक प्रक्रिया है जिसे सभी काल के और सभी देश के साधकों और सिद्धों ने अपनाया है यद्यपि इसका वर्णन भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न शैली और नाम से किया गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



सद्गुरुदेव श्री हंस जी महाराज ने अपने एक प्रवचन में कहा—बहुत से लोग कहते हैं कि अनेकों मत हैं भाई। अनेक छोड़ मुझे दो तो बता दो। भगवान कृष्ण गीता के अध्याय ८ के पांचवें श्लोक में कहते हैं कि जो मेरे को स्मरण करते देह त्यागता है वह मुझे प्राप्त करता है, यह तो एक रास्ता हुआ। अब जल में रहने वाले, तप करने वाले या पाठ करने वाले कोई भी विद्वान बतावें कि भगवान ऐसे भी मिल सकते हैं? गीता में भक्ति-योग अवश्य लिखा है, लेकिन योग का अर्थ कसरत नहीं। चित्तवृत्ति का निरोध करना योग है। बस, समझते हैं कान फड़ाकर, बड़ी-बड़ी जटाएं रखकर चित्तवृत्ति का निरोध हो जाएगा। परन्तु चित्तवृत्ति, बिना सुमिरण और ध्यान के निरोध हो नहीं सकती। फिर बतावें दूसरा मार्ग?

हमारी चेतना के अनेक स्तर हैं उनमें सबसे स्थूल स्तर है—इंद्रियां, उससे सूक्ष्म है मन, उससे सूक्ष्म है बुद्धि और उससे सूक्ष्म है चित्त। इंद्रियां बहुत स्थूल हैं इसलिए वे हमारे लिए स्पष्ट हैं। मन की चेतना सूक्ष्म है इसलिए इंद्रियों की अपेक्षा उसे समझना कठिन है। हम ध्यान करते हैं, उसका संबंध मन से है। इंद्रियों का ध्यान से सीधा संबंध नहीं है। यद्यपि वह ध्यान में सहायक भी हो सकती हैं और विघ्न भी डाल सकती हैं, क्योंकि इंद्रियां द्वार हैं, जिनके द्वारा माया के परमाणु हमारे भीतर जाते हैं और मन व चित्त को लुभायमान करते हैं। ध्यान वास्तव में एक प्रकार की मानसिक क्रिया है। यह मन को एकाग्र करने की विधि है। हमारे मन में निरंतर विकल्प उठते हैं और बाधाएं आती हैं। इसलिए इस चंचल मन को स्थिर करना ही ध्यान है।

योग की भाषा में मन की तीन अवस्थाएं हैं—अवधान, एकाग्रता या धारणा और ध्यान। मनोविज्ञान में भी इन्हीं तीन अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। अटेन्शन, कन्सेन्ट्रेशन और मेडीटेशन। ये मन की तीन अवस्थाएं हैं। मानसिक क्रियाएं इन तीन अवस्थाओं से गुजरती हैं। अवधान अथवा अटेन्शन, यह मन की वह क्रिया है जहां हम मन को किसी वस्तु के प्रति लगाते हैं। श्री हंस जी महाराज सत्संग प्रवचन में यह उदाहरण आम दिया करते थे कि मान लो यह फूल की माला ध्येय है, इसमें अपने मन को लगाना ध्यान और लगाने वाला ध्याता हुआ। जो मन घूमता रहता है उसे एक वस्तु के प्रति लगा देते हैं, एक ध्येय में लगा देते हैं। उस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



ध्येय के प्रति मन को सचेतन करना, चैतन्यवान बनाना यह है अवधान की अवस्था। किसी एक ध्येय के प्रति दत्तचित्त हो जाना और चित्त को उसमें लगा देना अवधान कहलाता है। अवधान जैसे बाह्य वस्तु के प्रति होता है वैसे ही अपने मूल आत्मा के प्रति भी होता है। जब मौलिक स्वरूप के प्रति अवधान होता है, उस स्थिति में ही प्रज्ञा का उदय होता है और आत्म ज्ञान की ज्योति जगती है, अतः अपने प्रति मन का अवधान होना एक विशेष प्रकार की स्थिति है। इस स्थिति में प्रज्ञा का उदय होता है और आंतरिक चेतना प्रगट होती हैं। मन की दूसरी अवस्था है कनसेनट्रेशन—योग की भाषा में एकाग्रता या धारणा। यह अवधान से अगली अवस्था है। जिसमें हमने अपना चित्त लगाया, उसी में केन्द्रित हो जाना, स्थित हो जाना। जो मन चारों ओर भटक रहा था उसे सब तरफ से हटाकर एक वस्तु में केन्द्रित कर देना एकाग्रता या धारणा है। यह मन की धारण-अवस्था है। ध्यान से पहले धारणा करनी होती है। पातंजलि ने धारणा की यह परिभाषा की है—"देशबंधाचितस्धारणाः" चित्त को किसी देश में बांध देना, किसी के साथ उसका संबंध स्थापित कर देना कि वह उसी से बंधा रहे, अन्यत्र न जाए, यह है धारणा की अवस्था। मन की तीसरी अवस्था है ध्यान। अवधान के बाद धारणा और धारणा के बाद ध्यान। केन्द्रित मन की जो सघन अवस्था है वह है ध्यान, जहां कि मन स्थिर हो जाता है, जम जाता है। जैसे वायु विहीन स्थान में दीपक की लौ एकरस जलती रहती है; हवा से चलायमान नहीं होती, ऐसे ही जब लम्बे समय के लिए मन अचल अवस्था में रहता है, वह है ध्यान की अवस्था।

ध्यान है अकर्म का विज्ञान। जो कर्म में अकर्म को देखता है और अकर्म में कर्म को देखता है, वही ध्यानी है, योगी है और ज्ञानी है। कर्म का क्षय कौन कर सकता है? हमारे जो जमे हुए संस्कार हैं, उन संस्कारों को कौन मिटा सकता है? इस प्रश्न का समाधान देते हुए आचार्यों ने कहा है—

**"न कम्मुणा कम्म खवेंति बाला, अकम्मुणा कम्म खवेंति धीरा।"**

अज्ञानी आदमी सोचते हैं कि प्रवृत्ति के द्वारा प्रवृत्ति को नष्ट करेंगे, संस्कार के द्वारा संस्कार को काटेंगे। वे भूल में हैं, अज्ञान में हैं, अंधकार में हैं। वे सच्चाई को नहीं जानते। वास्तविकता से अनभिज्ञ हैं। प्रवृत्ति के द्वारा प्रवृत्ति को मिटाया नहीं जा सकता। संस्कार के द्वारा संस्कार को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



मिटाया नहीं जा सकता। प्रवृत्ति हमेशा रिपीट होती है। प्रत्येक प्रवृत्ति संस्कार छोड़ जाती है। वह संस्कार हमें दूसरी प्रवृत्ति करने के लिए प्रेरित करता है। हम दूसरी प्रवृत्ति करते हैं और वह प्रवृत्ति अपना संस्कार छोड़ जाती है और यह चक्र चलता रहता है। इसका कहीं अंत नहीं आता। प्रवृत्ति के द्वारा प्रवृत्ति के चक्रव्यूह को तोड़ा नहीं जा सकता। तब प्रश्न होता है कि इसे कैसे तोड़ा जा सकता है, इन संस्कारों को कैसे समाप्त किया जा सकता है? जो संस्कार हमें कर्म में लगाए रखते हैं और एक के बाद एक नया संस्कार निर्मित होता है और वह फिर हमें कर्म में प्रवृत्त करने की प्रेरणा देता है, उसे कैसे तोड़ा जा सकता है? उत्तर में कहा गया है कि जो ज्ञानी हैं सत्य को समझते हैं, अंधकार को चीरकर प्रकाश में आ गए हैं, जिन्हें तत्व का बोध है, वे जानते हैं कि अकर्म के द्वारा कर्म को क्षीण किया जा सकता है। अकर्म यानी निवृत्ति के द्वारा प्रवृत्ति को समाप्त किया जा सकता है। धीर पुरुष अकर्म के द्वारा ही कर्म को क्षीण कर देते हैं। वह पुराना संस्कार जब उभरता है तो उसे दुहराते नहीं और इस प्रकार उसे समाप्त कर देते हैं और नए संस्कारों को निर्मित नहीं होने देते क्योंकि वह अपनी आत्मा को बहिर्मुखी न रखकर अंतर्मुखी कर लेते हैं। जैसे कछुआ अपने सारे अंगों को अपने में समेट लेता है वैसे ही ध्यानी साधक अपनी चित्त की वृत्तियों को अंतर्मुखी करके अपनी निज आत्मा में ही समाहित कर लेता है। इसलिए ध्यान है अकर्म का वास्तविक अभ्यास। जो प्रवृत्ति, निवृत्ति में से जन्म लेती है, जो सक्रियता, निष्क्रियता में से निकलती है वह निर्दोष और स्वच्छ होती है। कर्म में सारे दोष इसलिए आए हैं कि वह कर्म में से निकल रहे हैं। व्यक्ति क्रिया नहीं बल्कि प्रतिक्रियाओं का जीवन जी रहा है। ध्यान सम्यक् दृष्टि प्रदान करता है जिससे व्यक्ति कर्म के साथ संवेदना को नहीं जोड़ता है, राग और द्वेष के भाव को नहीं जोड़ता है जिससे वह कर्म और पदार्थ के प्रति सम्मोहित नहीं होता। साधारणतः व्यक्ति पदार्थ के प्रति सम्मोहित है। जैसे ही पदार्थ या विषय हमारे सामने आता है, व्यक्ति की चेतना लुप्त हो जाती है, विवेक सो जाता है। जब ध्यान के द्वारा व्यक्ति अपने ही आत्मा में संतुष्ट होने लगता है तब बाहरी विषयों का आकर्षण सहज में ही टूट जाता है। ध्यान की प्रक्रिया दोहरी प्रक्रिया है। यह ध्याता को न केवल नए कर्म-बंधनों से बचाती है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



बल्कि पुराने कर्म बंधनों से छुड़ाती भी है। इसलिए पातंजलि ने कहा—"चित्तवृत्ति निरोधश्च योगः।" चित्त की वृत्ति को निरोध करना ध्यान योग में महत्त्वपूर्ण है।

साधारणतः विषयों के वेग इतने प्रबल होते हैं कि वे रोके नहीं रुकते और ध्यान के बंध को तोड़कर व्यक्ति को सांसारिक विषयों की ओर घसीटकर ले जाते हैं। राग और द्वेष युक्त चेतना, वासना के वेगों से भावित होकर सदैव विषयों में प्रवृत्त रहती है। इसीलिए ऋषियों ने कहा कि ध्यान के लंगर को इतना गहरा हृदयरूपी समुद्र में गाड़ो कि समुद्र में आने वाले लहरों के तूफान इसे हिला न सकें।

आज, करो-करो-करो की रटन लगाई जा रही है। सभी दिन-रात कर्म में प्रवृत्त हैं। आज का आदमी निशाचर बन गया है। वह सब कुछ रात को ही करता है। ध्यान का उसके लिए उपयोग नहीं है क्योंकि ध्यान को वह निठल्ले होकर बैठना मानता है। उद्योगपति और राजनेता प्रगति की रट लगा रहे हैं। औद्योगिक और भौतिक प्रगति ने व्यक्ति को पागल सा कर दिया है। मनुष्य स्वयं अपनी ही प्रवृत्ति का ग्रास बनता जा रहा है। सीमारहित प्रवृत्ति व्यक्ति को मौत के कगार पर खड़ा कर देती है। आज धन कमाने की होड़ में व्यक्ति न चैन से बैठ सकता है न खा सकता है, ध्यान तो दूर की बात रही। आज पदार्थ प्रमुख होता जा रहा है। चेतना उसके आवरण में छिपती जा रही है जबकि होना चाहिए था—चेतना विकसित रहे और पदार्थ उसका अनुगामी रहे। वर्तमान के संघर्षों का सबसे बड़ा कारण है प्रवृत्ति का एकाधिकार। सभी एक दूसरे से आगे बढ़ना चाहते हैं और दूसरों को छोटा दिखाना चाहते हैं। यदि प्रवृत्ति और निवृत्ति का संतुलन न रखा गया तो यह प्रतियोगिता की होड़, हथियारों की होड़ मानव जाति को तीसरे विश्व-युद्ध के कगार पर खड़ा कर देगी।

प्रत्येक कर्म के साथ दोष आते हैं। गीता में बहुत सुन्दर कहा है कि प्रत्येक प्रवृत्ति के साथ दोष आता है। ऐसी कोई भी प्रवृत्ति नहीं है जिसके साथ दोष नहीं। जैसे ईंधन से जलने वाली अग्नि के साथ धुआं होना अनिवार्य है, वैसे ही प्रवृत्ति के साथ दोष अनिवार्य है। इसलिए ध्यान के द्वारा प्रवृत्ति को संतुलित किया जाना चाहिए। ध्यान है कर्म में अकर्म। ध्यान के द्वारा हम इंद्रियों के द्वार बंद कर सकते हैं क्योंकि प्रवृत्ति के द्वारा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



जो दोष आते हैं वे इंद्रियों के द्वारा ही आते हैं। माया के परमाणु इंद्रियों के छिद्रों के द्वारा ही चेतना के साथ जुड़ते हैं। इसलिए आचार्यों ने ध्यान के तीन प्रकार बताए हैं—कायिक ध्यान, वाचिक ध्यान और मानसिक ध्यान। जैसा स्थिर मन ध्यान होता है वैसे ही संयत वाणी और स्थिर काया भी ध्यान होता है।

कर्म इतना नहीं होना चाहिए कि जिससे अकर्म (ध्यान) लुप्त हो जाय और कर्म की धूल से मानवीय चेतना आवृत्त और बोझिल हो जाय। कबीर साहब ने कहा है:—

**भूले मन समझ के लाद लदनियां ।**
**थोड़ा लाद बहुत मत लादे टूट जाय तेरी गरदनियां ।।**

आंतरिक बोध या अंतरदृष्टि ध्यान के क्षण में ही उपलब्ध होती है। अकर्म बहुत बड़ी उपलब्धि है। गीता में भगवान कहते हैं कि जो कर्म में अकर्म को देखता है और अकर्म में कर्म को देखता है वह संपूर्ण कर्मों को करने वाला होता है। अकर्म में से जो कर्म फलित होता है वह वास्तविक में बहुत निर्दोष और प्राणवान् कर्म होता है।

महात्मा बुद्ध विहार कर रहे थे, साथ में एक शिष्य था। शिष्य ने पूछा—भन्ते ! ध्यान शक्ति क्या है? मैं जानना चाहता हूं। बुद्ध ने सुना, उत्तर नहीं दिया। मार्ग में कुँआ आया। एक यात्री आ रहा था। वह प्यासा था। उसने देखा कुएं के पास एक बाल्टी पड़ी थी वह डोरी से बंधी हुई है। उसने उस बाल्टी को कुएं में डाला। डोरी खींची। बाल्टी ऊपर आई पर उसमें पानी नहीं था। फिर उसे कुएँ में डाला, ऊपर खींचा पर वह खाली ही ऊपर आई। वह पानी नहीं पी सका। उसकी प्यास वैसी ही बनी रही। बाल्टी की पेंदी में छेद था। जितना पानी भरता वह ऊपर आते आते खाली हो जाता। बुद्ध आगे चले। कुछ ही दूरी पर दूसरा कुँआ दीखा। वहां भी डोर से बंधी बाल्टी पड़ी थी। एक प्यासा पथिक आया, बाल्टी से पानी खींचा, पानी पिया, प्यास बुझ गई। बुद्ध ने शिष्य से कहा—वत्स ! तुम जानना चाहते थे कि ध्यान की शक्ति क्या है? जो ध्यान नहीं करता वह खाली रहता है। कभी नहीं भरता, वह फूटा रहता है। कभी नहीं भर सकता। जो कुछ अंदर आता है सारा का सारा निकल जाता है। जो ध्यान करता है, जितना अंदर जाता है उससे हजार गुना बढ़ता है। यह है ध्यान की शक्ति, यह है ध्यान का महत्त्व। तुम्हारी कितनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



ही शक्तियां हैं शरीर में, मस्तिष्क में, उनके विकास का मार्ग है 'ध्यान'। ध्यान के बिना उनको विकसित नहीं किया जा सकता। यह ध्यान-साधना का मार्ग शक्तियों के विकास का मार्ग है। हम रोटी का मूल्यांकन करते हैं क्योंकि रोटी हमारा जीवन है परंतु जो सचमुच जीवन है उसका हम कभी भी मूल्यांकन नहीं करते। वह है 'प्राण'। ध्यान है जीवन को प्राण-ऊर्जा से भर देना।

स्वभाव परिवर्तन का सूत्र है ध्यान। दर्शन केन्द्र पर जब ध्यान केन्द्रित होता है तो चेतना ऊर्ध्वमुखी हो जाती है, प्रकाशमय हो जाती है। चेतना की रश्मियां बदलने लगती हैं, सात्त्विक होने लगती हैं। माया के परमाणु क्षीण होने लगते हैं और चेतना का प्रकाश स्वतः प्रज्ज्वलित होने लगता है। जैसे सोने को तपाने से सोना मलरहित हो जाता है ऐसे ही दर्शन केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित करने से चेतना आवरण रहित और मल रहित हो जाती है। दोनों भृकुटियों के बीच का स्थान है दर्शन केन्द्र। यह हमारे अंतर ज्ञान का केन्द्र है। यह अंतरदृष्टि और सम्यक् दृष्टि का केन्द्र है। जितना आंतरिक ज्ञान प्रगट होता है वह इसी केन्द्र से प्रगट होता है। जब ध्यान, दर्शन केन्द्र पर स्थिर होता है तब भाव-तंत्र में चेतना की लेश्याओं और रश्मियों में अंतर आने लगता है और यही है मूल परिवर्तन। मनोविज्ञान मानता है कि जो बात हमारे स्थूल मन तक पहुंचती है वह स्थायी नहीं होती। उससे व्यक्तित्व का परिवर्तन नहीं हो सकता। जब हम दर्शन केन्द्र पर ध्यान करते हैं तो वह हमारी चेतना को सक्रिय करता है, निर्मल करता है जिसका प्रभाव हमारे भावों, विचारों और आचरणों पर पड़ता है। सद्गुरु एवं सत्पुरुषों के प्रति समर्पण भाव और उनकी शरण, ग्रहण करना भी स्वभाव परिवर्तन का सूत्र है। शरण में जाना बहुत महत्त्व का सूत्र है। अपनी ही शक्ति की शरण में जाना है या हमें उसकी शरण में जाना है जो अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनंद और अनंत शक्ति का धनी है। जिसमें ये चारों अनंत स्फुटित हो चुके हैं उसकी शरण में जाना है। जिसकी सारी क्षमताएं विकसित हो चुकी हैं, जिसमें ये बीज अंकुरित हो चुके हैं और फलित हो चुके हैं, जो कैवल्य-पद को प्राप्त कर चुका है, जो ब्रह्मनिष्ठ हो चुका है, जिसने अपने मन को मार लिया है, जो चैतन्य-स्वरूप है उसकी शरण में जाना है। कबीर साहब ने एक भजन में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



कहा है कि:—

**मैं तो उन संतों का दास जिन्होंने मन मार लिया।**

ऐसे महापुरुष की संगति, सान्निध्य और शरण जिसको उपलब्ध हो जाती है उस साधक की तेजस् शक्ति का विकास होने लगता है और विद्युत की इतनी तीव्र तरंगें उपलब्ध होती हैं कि रूपांतरण शुरू हो जाता है। सतगुरु की शरण ही धर्म की शरण है, निज आत्मा की शरण है। जो गुरु-आज्ञा में समर्पित है उसे तीन लोकों में भी भय नहीं लगता और काल भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

**गुरु समरथ सिर पर खड़े, कौन कमी तोहिँ दास ।**
**ऋद्धि सिद्धि सेवा करें, मुक्ति न छोड़े साथ।।**

सद्गुरु का गुण चुम्बक की भांति है। जिस प्रकार एक लोहे का टुकड़ा जब चुम्बक के पास जाता है, उसको छूता है तो वह भी चुम्बक बन जाता है इसी प्रकार से जब कोई सच्चा जिज्ञासु किसी तत्वदर्शी की शरण में जाता है तो उसकी सुषुप्त आत्मा भी जागृत होने लगती है। भारत में प्राचीन पद्धति है कि शिष्य जब अपने गुरु के पास जाता है तो वह गुरु के चरणों में माथा टेकता है। इससे उसमें सहज शक्ति अथवा विद्युत का प्रवाह होता है। सद्गुरु एक चैतन्य पुरुष है जिसमें चैतन्य का प्रवाह पूर्ण रूपेण हो रहा है, जिसके अंग-अंग और रोम-रोम में से वह चैतन्य का प्रवाह बह रहा है। जैसे ही एक शिष्य भाव से नतमस्तक होता हैं तो उनकी चेतना का प्रवाह शिष्य में होने लगता है क्योंकि विज्ञान का यह सिद्धांत है दक्षिणी ध्रुव उत्तरी ध्रुव में सहज आकर्षण होता है। जब सद्गुरु के चरण जो कि दक्षिणी ध्रुव के समान हैं और शिष्य का माथा जो कि उत्तरी ध्रुव के समान है, दोनों का मेल होता है तो चेतना का प्रवाह शिष्य में होने लगता है और उसकी विद्युत शक्ति बढ़ती है। हमारे पास देने के दो बड़े साधन हैं—हाथ और पैर। सिर ग्रहण करने का, लेने का बड़ा साधन है इसलिए यह प्राचीन पद्धति थी कि जब कोई गृहस्थी साधुओं के पास जाते थे तो अपने सिर को उनके चरणों में रखते थे और उनसे आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करते थे। यदि प्रसन्न होकर साधु उनके सिर पर हाथ रख देता था तो वे अपने आप को बड़ा भाग्यशाली मानते थे। सिन्धियों में अभी भी रिवाज है कि वे गुरु के चरणों में सिर नवाते हैं और जब उठते हैं तो वे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



चाहते हैं कि गुरु उनके सिर पर हाथ रखे, क्योंकि इससे शक्तिपात होता है।

एक सूफी संत थे संत खैयाद। बहुत बड़े साधक थे। वे एक घोर जंगल से जा रहे थे। शिष्य साथ में था। समय हुआ और वे नमाज पढ़ने बैठे। कंबल बिछाया। उस पर बैठ गए। शिष्य भी बैठ गया। इतने में शेर के दहाड़ने की आवाज आई। शिष्य डरा। उसने अपना कंबल समेटा और वह तत्काल पेड़ पर चढ़कर बैठ गया। किन्तु संत खैयाद अविचल भाव से वैसे ही बैठे रहे। नमाज पढ़ते रहे। शेर वहां आ पहुंचा। आस-पास में सूंघकर चला गया। नमाज पूरी हुई। शिष्य पेड़ से उतरकर नीचे आया। दोनों आगे बढ़ गए। जा रहे थे। इतने में एक जंगली कुत्ता सामने आ गया। जैसे ही कुत्ता सामने आया, संत खैयाद ने अपना डंडा संभाला और डंडा लेकर प्रतिरोध की मुद्रा में खड़े हो गए। शिष्य देखता रहा। वह पूछ बैठा—गुरुदेव ! यह क्या ! जब शेर आया तब तो आप अविचल भाव से बैठे रहे और एक कुत्ता सामने आया तो आप प्रतिरोध की मुद्रा में खड़े हो गए। मैं रहस्य समझ नहीं पाया। संत खैयाद बोले—"उस समय खुदा मेरे साथ था और अब तुम मेरे साथ हो। उस समय मैं परमात्मा की शरण में था, खुदा मेरी रक्षा कर रहा था। अब तुम मनुष्य मेरे साथ हो।"

आधुनिक मनोवैज्ञानिक आत्म नियंत्रण को, चित्तवृत्ति निरोध को दमन की भाषा देते हैं। वे कहते हैं कि मनोभावों का दमन नहीं होना चाहिए क्योंकि मनोभावों का निरोध एवं नियंत्रण होने से अनेक विकृतियां पैदा हो जाती हैं। यदि स्वाभाविक मनोभावों को दबाया जाता है, रोका जाता है तो वह दमित वासनाएं व्यक्ति को विकृत बनाती हैं और मस्तिष्क में एक प्रकार का पागलपन भर देती हैं। यदि ध्यान और अध्यात्म में केवल बाहरी दमन ही होता तो उस दमन से बहुत बड़ी उपलब्धि नहीं होती। केवलमात्र बाहरी नियंत्रण से और भय से हम भीतर के प्रवाहों व वासनाओं के वेगों को रोक नहीं सकते। यह देखा भी गया है कि जिन साधकों या साधुओं ने बाहरी रूप से ब्रह्मचर्य को या साधुता को साधने की कोशिश की वे विफल हुए और वे काम के वेग को रोक नहीं सके। किन्तु अध्यात्म की साधना में केवल वृत्तियों का निरोध ही नहीं है, उसके साथ-साथ शोधन की क्रिया भी प्रस्तुत है। अध्यात्म बीमारी का बाहरी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



उपचार नहीं है बल्कि आंतरिक उपचार है। यह वासना के कीटाणुओं पर बाहरी स्थूल स्तर पर नहीं बल्कि आंतरिक स्तर पर, मन एवं चित्त के स्तर पर प्रहार करता है और बहिर्मुखी चित्त को एक नई अंतरमुखी दिशा देता है। फ्राइड ने काम (सैक्स) को प्राणीमात्र की मौलिक मनोवृत्ति माना है। बाल्यकाल से ही व्यक्ति किसी न किसी रूप में काम में प्रवृत्त रहता है। जिसे मनोवैज्ञानिक काम कहते हैं उसे ही अध्यात्म में राग कहा जाता है। फ्राइड का ज्ञान केवल मात्र सैक्स तक ही पहुंच पाया, आगे नहीं जा सका। किन्तु अध्यात्मवादी, राग तक पहुचकर ही नहीं रुक गए। मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य के सारे व्यवहार को काम की वृत्ति का मूल मानकर व्याख्या की है, लेकिन यह अधूरी व्याख्या है और इसमें अनेक कठिनाइयां हैं। किन्तु अध्यात्मवादियों ने कहा कि राग के पीछे मूर्च्छा है, अज्ञान है, संवेदना है और मूर्च्छा के पीछे संचित संस्कार हैं और संस्कारों के पीछे चेतना है। हम इस राग और द्वेष की वृत्ति को बाहरी रूप से नियंत्रित नहीं कर सकते। इसका क्षय और शोधन चेतना के स्तर पर ही होना चाहिए। जैसे ही व्यक्ति दूसरों से जुड़ता है वैसे ही वह राग और द्वेष के व्यूह चक्र में फंस जाता है और उसकी चेतना शुद्ध नहीं रहती। गंगोत्री से बहने वाली गंगा जैसे ही नीचे आती है तो वह प्रदूषित होती जाती है। वैसे ही सामाजिकता राग और द्वेष का पहला बिन्दु है। इसलिए राग से तनाव उत्पन्न होता है, संवेदना उत्पन्न होती है। राग ही बंधन का कारण है। राग नहीं होता तो व्यक्ति पदार्थ-प्रतिबद्ध नहीं होता। एक परमाणु भी यदि दूसरे परमाणु के साथ जुड़ता है तो वहां भी राग का होना या चिकनाहट का होना जरूरी है। राग ही बंधन का मूल कारण है। राग ने जन्म दिया लोभ को, लोभ ने जन्म दिया माया को, माया ने जन्म दिया अहम् भाव को, अहंकार को। जब माया का विस्तार हुआ तो मनुष्य के पास बहुत कुछ हो गया। तब मनुष्य ने अपनी मान्यताएं बना लीं। मैं बड़ा हूं, मैं धनी हूं, मैं स्वामी हूं। मेरे पास इतना है, यह अहंकार जन्म ले लेता है और यह सदैव मानव को संसार में प्रवृत्त रखता है। क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों हमारे मस्तिष्क के विशेष केन्द्रों द्वारा बाहर आते हैं, प्रगट होते हैं, ये प्रकृतिजन्य हैं।

हमारे शरीर में क्रोध के केन्द्र हैं, काम वासना के केन्द्र हैं, ज्ञान के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



केन्द्र हैं। हमारी प्राण ऊर्जा मनोवृत्ति के अनुकूल जिस केन्द्र की ओर प्रवाहित होती है वही केन्द्र सक्रिय हो जाता है और वही प्रवृत्ति उभरकर सामने आ जाती है, इन प्रवृत्तियों को कैसे रोका जाय? इसके बारे में भिन्न-भिन्न मत हैं, भिन्न-भिन्न विचारधाराएं हैं। कुछ लोग कहते हैं कि जो वृत्ति जागे उसे भोग लो, उसका निरोध करने की जरूरत नहीं, उसे दबाने से कोई लाभ नहीं। चार्वाक दर्शन तो मुक्तभोग की विचारधारा है। यह विचारधारा कहती है कि क्रोध आए तो क्रोध कर लो। इतना जी भर क्रोध कर लो कि जिससे क्रोध समाप्त हो जाय। जिसको मुक्त भाव से भोगा जाता है वह क्रोध चरम विन्दु पर पहुंचकर अपने आप शांत हो जाता है। मनोविज्ञान भी दमित वासनाओं को और संवेगों को बाहर निकालने के लिए कैथार्सिस का प्रयोग करता है। किसी व्यक्ति ने आपके अहम् को चोट मारी। आपका अपमान किया क्योंकि वह आपसे बड़ा है, शक्तिशाली है, आप उसका प्रतिरोध नहीं कर पाए। लेकिन आपके भीतर ही एक बदले की भावना, एक क्रोध की भावना सुलगने लगती है जो आपको हर समय तंग करती रहती है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं तुम घर में ही उस व्यक्ति की कल्पना करो और उसकी एक काल्पनिक आकृति बनाकर अपने मन के वेगों को निकालो। उसे गालियां दो, पीटो तो तुम्हारा गुस्सा शांत हो जाएगा, तुम हलके हो जाओगे। वह बदले की भावना विसर्जित हो जाएगी। क्योंकि भीतर का दमित प्रवाह बाहर बह जाएगा। इसके विपरीत दमन का सिद्धांत कहता है कि दबाओ। काम-वासना उभरे तो उसे दबाओ, क्रोध आए तो उसे दबाओ। प्राचीन काल में "द रूल आफ द रॉड" डंडे का नियम चलता था। पिता अपने पुत्र को डराकर रखता था। गुरु अपने शिष्य को डराकर रखता था। राजा अपनी प्रजा को डराकर रखता था। बल्कि कुछ संतों ने तो डराने को बहुत महत्त्व दिया और कहा कि भय बिनु प्रीति न होय।

अधिनायकवादी समाजों में दमन ही नियम है। लोगों पर शासन व्यवस्था थोपी जाती है जिसे उन्हें स्वीकार करना पड़ता है। प्रजातांत्रिक समाज में भी दमन चलता है। शासन तंत्र दमन पर आधारित है। हर समाज की अपनी मान्यताएं हैं, अपनी धारणाएं हैं। समाज-व्यवस्था चाहता है और जो भी समाज-व्यवस्था को भंग करता है समाज उसे दण्ड

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



देता है। दण्ड के भय से व्यक्ति अपनी वृत्तियों का मुक्तभोग चाहने पर भी नहीं कर सकता। संघ और समुदाय भी अपनी व्यवस्थाओं के द्वारा व्यक्ति के बाहरी आचरणों को नियंत्रित करते हैं। "अति सर्वत्र वर्जयेत" के नियम के अनुकूल अतिदमन भी हानिकर है तो स्वच्छंदता भी हानिकर है। व्यक्ति और समाज के संबंध को मधुर रखने के लिए अध्यात्म ने मध्य का मार्ग दिया है—न अति दमन न अति छूट।

सामाजिक प्राणी भी नहीं चाहता कि जो भी वृत्ति जागे उसका सामाजिक स्तर पर मुक्तभोग किया जाय। क्रोध जागे और क्रोध का मुक्तभोग किया जाय, यह समाज में संभव नहीं। क्रोध जागे और कोई किसी को चांटा मार दे, लाठी मार दे या हत्या कर डाले तो समाज इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता। किसी में लोभ की वृत्ति जागे, वह दूसरों की संपत्ति पर अधिकार कर ले, लोभ का मुक्तभोग कर ले, समाज उसे मान्यता नहीं दे सकता। व्यक्ति और समाज के आपसी संबंध में कुछ नियंत्रण की आवश्यकता तो है ही। समाज में "ला आफ जंगल" नहीं चल सकता। समाज में कोई व्यवस्था तो होनी ही चाहिए। समाज कहता है कि दमन करो, तुम सामाजिक प्राणी हो, समूह में रहते हो। इसलिए तुम्हें दमन करना होगा। समाज में रहकर व्यक्ति पशुवत् स्वच्छंदता प्राप्त नहीं कर सकता। यह नहीं होगा कि जो मन में आया वह कर लिया। मानव में बुद्धि का विकास है। वह केवल नैसर्गिक, प्राकृतिक प्रवृत्तियों से ही प्रेरित नहीं होता, वह बुद्धि और विवेक के द्वारा उन प्रवृत्तियों पर रोक भी लगा सकता है, क्योंकि प्रवृत्तियां अंधी हैं और यदि व्यक्ति स्वयं यह रोक लगाने में असमर्थ है, कमजोर है और अपने आप को नियंत्रित नहीं कर पाता तब समाज अपनी व्यवस्था के द्वारा उसे नियंत्रित करता है। इसलिए सामाजिक भूमिका में नियंत्रण, दमन और दण्ड व्यवस्था का होना बहुत जरूरी है। एक मर्यादा बनानी होगी, एक रेखा खींचनी होगी कि व्यक्ति क्या कर सकता है और क्या नहीं कर सकता है। जो व्यक्ति उन मर्यादाओं की रेखा का अतिक्रमण करेगा वह निंदनीय होगा और दण्डित होगा। या तो स्वयं वह अपनी वृत्तियों को दबाए अथवा उसे दण्डित होना पड़ेगा। यह दमन की बात व्यापक है और समाज के स्तर पर किसी न किसी रूप में स्वीकृत है। व्यक्ति दूसरों से संबंधित है। इसलिए अपनी पाशविक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने के लिए वह दूसरों के जीवन को दुखमय नहीं बना सकता। इसलिए समाज-शास्त्रियों ने स्वतंत्रता और विधि के बीच में एक मधुर संबंध स्थापित करने के लिए कई विचारधाराएं दी हैं।

समाज के स्तर पर नियंत्रण और दमन की बात को पूरी तरह से झुठलाया नहीं जा सकता। यह अलग बात है कि दमन तंत्र या विधि तंत्र कैसा हो। पर कुछ न कुछ तो नियमों की आवश्यकता समाज में रहते हुए व्यक्तियों के लिए जरूरी है। किन्तु व्यक्ति केवल एक सामाजिक प्राणी नहीं है। वह केवल एक समाज को दुनिया में ही नहीं रहता। उसकी एक अपनी दुनिया है। विचारों की दुनिया, भावनाओं की दुनिया, महत्त्वाकांक्षाओं की दुनिया और कुण्ठाओं की दुनिया। सामाजिकता तो व्यक्ति ने केवल ओढ़ रखी है। वह उसके व्यक्तित्व का केवल बहुत बाहरी हिस्सा है। उसका वास्तविक व्यक्तित्व तो उसके भीतर छिपा हुआ है। इसी जगत् में वह मुक्तभोग की आकांक्षाओं को पूरा करना चाहता है। इसलिए मुक्तभोग वासना का जगत् है, वासना की अंधी दौड़ है, अंतर मन की अभीप्सा है। व्यक्ति मुक्तभोग में ही आनंद, मुक्तता और पूर्णता को ढूँढ़ रहा है। यही है माया जाल। जैसे एक हिरन रेत के कणों को पानी समझकर अपनी प्यास बुझाने के लिए रेगिस्तान में प्यासा ही प्राण दे देता है, ऐसे ही मुक्तभोग की वासना से ग्रसित व्यक्ति भोग में अपने मन की शांति, संतुष्टि और तृप्ति को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते अपनी प्राण-शक्ति को नष्ट कर देता है।

मनोवैज्ञानिक और कुछ दार्शनिक मुक्तभोग की बात को मानते हैं और इसका समर्थन करते हैं। इस सिद्धांत की पृष्ठभूमि में उनका चिंतन यह है कि यदि व्यक्ति वृत्तियों को दबाता है, भोगता नहीं तो दबाते-दबाते ये वृत्तियां इतनी एकत्रित हो जाएंगी कि एक दिन उनका भयंकर विस्फोट होगा और व्यक्ति उस विस्फोट को संभाल नहीं पाएगा, इसलिए वृत्तियों को दबाओ मत, उन्हें भोग लो। मनोवैज्ञानिकों ने इस सिद्धांत का प्रतिपादन मानव की अंतरचेतना, अंतरमन, अवचेतन मन के आधार पर की और यह निष्कर्ष निकाला कि यदि वृत्तियों का दमन किया गया तो उनके परिणाम अच्छे नहीं होंगे और इस का कुप्रभाव उसके शरीर और व्यक्तित्व पर पड़ेगा जिससे शारीरिक और मानसिक बीमारियां उत्पन्न होंगी। ये दबी हुई वृत्तियां कुण्ठाएं बनकर अवरोध पैदा करेंगी और व्यक्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



के मानसिक संतुलन को बिगाड़ देंगी। फ्राइड ने इन कुण्ठाओं को निकालने के लिए मनो-विश्लेषण (साइको-अनेलिसिस) पर जोर दिया जो एक प्रकार के आत्म-निरीक्षण और आटोसजेशन पर आधारित है।

दमन मत करो, मनोविज्ञान का यह प्रतिपादन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने मन की गहराइयों में जाकर जिन सूक्ष्म सत्यों को खोजा है उनमें बहुत सच्चाई है। फ्राइड ने मन का विश्लेषण बड़े सुन्दर ढंग से किया है। वह केवल मानसिक कल्पनाएं मात्र नहीं हैं, बल्कि वह कटु सत्य हैं। लेकिन अध्यात्मवादियों ने मन और चित्त का विश्लेषण इससे भी विस्तारपूर्वक किया है और चेतना की भिन्न-भिन्न स्थितियों का वर्णन करते हुए उसमें आने वाले अवरोधों और कुण्ठाओं को दूर करने के उपाय भी बताए हैं। मनोविज्ञान मन का केवलमात्र विश्लेषण करता है लेकिन अध्यात्म मानस तत्त्व के विश्लेषण के साथ साथ उसके रूपांतरण और विलय अर्थात् विलीन करने की युक्ति भी बताता है।

इसलिए ऋषियों एवं आचार्यों ने मन की कुण्ठाओं का रेचन करने के, उनको निकालने के अनेक उपाय बताए। मनोवैज्ञानिकों की इतनी बात तो ठीक है कि मत दबाओ, इससे तो अध्यात्मवादी भी सहमत हैं किन्तु उनका उन्मुक्त भोग करो इस बात का समर्थन संसार के किसी भी अध्यात्मवादी ने नहीं किया। मत दबाओ का अर्थ उन्मुक्त भोग लगा कर इस सिद्धांत के हृदय को ही तोड़ डाला। कुछ धर्म की पोशाक पहनने वाले आचार्यों एवं साधकों ने अध्यात्म के नाम पर, धर्म के नाम पर और ध्यान के नाम पर मुक्तभोग के प्रयोग प्रारंभ कर दिए और उन प्रयोगों से अध्यात्म लांछित होने लगा।

आज इस मुक्तभोग का व्यापक विरोध हो रहा है किन्तु यह विरोध है सामाजिक-व्यवस्था के स्तर पर। भारतीय समाज-व्यवस्था इस प्रकार के मुक्तभोग के प्रयोगों को स्वीकार नहीं करती। वह भारतीय-संस्कृति पर और अध्यात्म पर पड़ने वाले इस बदनुमा धब्बे को मिटा देना चाहती है। इसलिए विरोध होना स्वाभाविक ही है। किन्तु यदि हम सामाजिक विरोध की बात छोड़ भी दें और गहराई में उतरकर अनुभव के आधार पर और इतिहास के आधार पर देखें तो पता चलेगा कि भोग अध्यात्म की ओर नहीं ले जाता। भोग है बहिर्मुखी वृत्ति और अध्यात्म है अंतर्मुखी वृत्ति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



भोग है इंद्रिय-सुख और अध्यात्म है अंतरात्मा का सुख। भोग है बाहर की दौड़, अध्यात्म है अंतरयात्रा। भोग है मन का फैलाव और अध्यात्म है मन का अस्तित्त्व में विलीन करना। भोग है बंधन, अध्यात्म है मुक्ति। भोग है क्षणिक सुख, अध्यात्म है परम आनंद। दोनों की दिशाएं अलग हैं। इसलिए भोग व्यक्ति को कभी भी अध्यात्म की ओर नहीं ले जा सकता। यह अध्यात्म का अटल नियम है। अगर संभोग से समाधि लगती होती तो पटियाला का राजा उसे प्राप्त कर लेता। अगर संभोग से समाधि लगती तो विलासी बादशाहों को आसानी से प्राप्त हो जाती। इतिहास इस बात की गवाही है कि मुक्तभोग के कारण बड़े-बड़े साम्राज्य और सभ्यताएं तबाह हो गईं। रजनीश जैसे लोग भले ही 'संभोग से समाधि' के दृष्टिकोण का प्रतिपादन करें लेकिन विश्व में जितने भी ऋषि, संत तीर्थंकर और महापुरुष हुए हैं वे इसका प्रतिपादन नहीं करते हैं। मुक्त-संभोग से व्यक्ति को समाधि का आनंद तो प्राप्त नहीं हो सकता और न ही वह समाधि में जा सकता है, हां, अपनी प्राण ऊर्जा को क्षीण कर वह अपनी समाधि बनवा सकता है। इसलिए मुक्त संभोग के पथिकों को चाहिए कि वह समाधि के भ्रम को छोड़कर अपनी समाधि बनवाने के लिए तत्पर हो जाएं। कहते हैं कि जब सुकरात से किसी ने संभोग के बारे में पूछा तो सुकरात ने कहा—संभोग नियंत्रित होना चाहिए, मर्यादित होना चाहिए और जब वह नहीं माना तो उसने कहा कि कफन साथ रख लो और फिर दिन रात इसमें डूबे रहो।

क्या ध्यान और समाधि की खोज संभोग से प्रेरित हुई है? संभोग समाधि का आदि बिन्दु है, समाधि का प्रेरक है, यह न केवल बचकाना विचार है बल्कि भ्रांतियुक्त भी है। ईसा मसीह ने कहा है—एक व्यक्ति अपने कर्मों के परिणाम से जाना जाता है। कर्म अच्छा है या बुरा यह उसके परिणाम से देखा जाता है। जो केवल प्रवृत्ति के समय सुखदायी हो और परिणाम में दुखदायी हो उस कर्म या प्रवृत्ति का मानव-विवेक कभी भी समर्थन नहीं कर सकता। चीनी या मिठाई का खाना बड़ा अच्छा लगता है लेकिन अधिक चीनी के प्रयोग के लिए डाक्टर मना करते हैं क्योंकि इसका प्रयोग स्वास्थ्य के लिए लाभदायक नहीं है। आंवले का खाना स्वादिष्ट नहीं लगता लेकिन उसके गुण व परिणाम को देखते हुए वैद्य और डाक्टर उसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



रसायन मानते हैं। इंद्रियों के जितने विषय हैं उनसे होने वाला सुख क्षणिक होता है, उसका अंत दुखमय होता है। ये प्रवृत्ति-काल में सुख देते हैं और परिणाम काल में दुख देते हैं।

साधारणतः व्यक्ति संभोग के बाद विषाद या पश्चाताप की भावना से भर जाता है। इस संसार में बहुत कम मुक्तभोगी हैं जो गिल्ट कोनशियसनेस से पीड़ित न होते हों। जिनकी चेतना बिल्कुल जड़वत् हो चुकी है वे तो भले ही मुक्तभोग का समर्थन करें अन्यथा सभी इसे व्यक्ति की कमजोरी मानते हैं। शक्ति का संचय ही व्यक्ति के लिए सुखदायी है और संभोग है शक्ति का ह्रास। जो शक्ति बाहर निकलने पर व्यक्ति को क्षणिक सुख देती है यदि उसे व्यक्ति अपने भीतर ही समाहित करने में सक्षम हो जाए तो वह ओजपूर्ण और महान हो सकता है। इसलिए मुक्तभोग एक मानसिक बीमारी है, पाशविक वृत्ति है। जो एक नारी अथवा एक पुरुष के व्रत को नहीं अपना सकता उसे ही हमारे शास्त्रों में व्यभिचारी कहा है। यदि एक नारी या पुरुष व्यक्ति को संतुष्ट नहीं कर सकता तो एक से अधिक नारियां या पुरुष भी व्यक्ति को संतुष्ट नहीं कर सकते। मुक्तभोग है मन का भटकाव, वासना की भूख और उसका ताण्डव-नृत्य। संभोग की वृत्ति को रोकने के लिए ही ध्यान के मार्ग को हमारे ऋषियों ने अपनाया क्योंकि संभोग का मार्ग है प्राणघातक, शक्तिघातक और आत्मघातक ध्यान का मार्ग है शक्तिवर्धक, प्राणरक्षक और आत्म-प्रकाशक। भतृहरि जो कि एक राजा थे और भोग-विलास के जीवन में से गुजर चुके थे, उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर वैराग्य शतक में अपने अनुभव को इस श्लोक में रखा:—

**भोगो न भुक्ताः वयमेवं भुक्ता, तपो न तपता वयमेव तपताः ।**
**कालो न यातो वयमेव याता, तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ।।**

फ्राइड ने कहा कि दमन नहीं होना चाहिए, साथ-साथ उन्होंने यह भी कहा कि सबलीमेशन होना चाहिए, रूपांतरण होना चाहिए। हमने आधी बात पकड़ ली और आगे की छोड़ दी। व्यक्ति बहुत चतुर है। वह अपने काम की बात पकड़ लेता है और उससे अपना अर्थ निकाल लेता है। मुक्तभोग के अभिलाषियों को भी एक ऐसा दर्शन चाहिए था जो उन्हें मुक्तभोग की इजाजत भी दे और उनकी प्रतिष्ठा को भी धक्का न लगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



उनके भीतर गिल्ट कानशियसनेस की भावना को भी पैदा न होने दे। इस भारतीय समाज में मुक्तभोग तभी संभव हो सकता था जब इसे धर्म की पोशाक पहना दी जाय। इतिहास इस बात की गवाही देता है कि मुक्तभोग के लिए राजाओं ने ऐसे मन-गढंत धर्म चलाए जिसमें वे अपनी वासना को भी पूरा कर सकते थे और प्रतिष्ठित भी रह सकते थे। मुक्तभोग, मुक्तभोग के लिए हो, उसे कोई धर्म का जामा न पहनाया जाए तो यह व्यक्ति की अपनी स्वेच्छा और सुविधा पर निर्भर करता है। लेकिन साधक बनाकर शरीर के वस्त्र तो उतार दिए जाएं लेकिन वासना को धर्म के वस्त्र पहना दिए जाएं यह समाज को मान्य नहीं हो सकता। इसलिए अध्यात्म के नाम पर मुक्तभोग अध्यात्म के साथ गद्दारी है, धोखा है और यह एक घृणित पाप है। धर्म के नाम पर दूसरों को बरगलाना या धोखा देना सबसे बड़ा पाप माना जाता है। दबाना अच्छा नहीं है। यह तो सभी धर्मशास्त्र कहते हैं। स्वयं भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं कि जो बाहर से इंद्रियों को दबाकर या रोक कर मन से विषयों का चिंतन करता है वह दम्भी है। धर्म में आम कहावत है कि–"मुख में राम बगल में छुरी"। सारे संसार में अध्यात्म के आचार्यों ने ही निष्कपटता को एक नैतिक मूल्य माना है। धार्मिक पुरुष व्यक्ति के बाहरी आचरण को नहीं बल्कि उसके आंतरिक भावों को देखते हैं। जो भाव का मलिन है, गंदा है वह बाहर से कितना भी सुथरा हो, साफ हो संतों ने उसकी निंदा की है। इसलिए दबाना अच्छा नहीं है। यह तो आध्यात्मिक पुरुषों का ही सिद्धांत है। लेकिन मुक्त भोगों का यह सिद्धांत अध्यात्मवादियों का नहीं है। अध्यात्म न बाहरी दमन की प्रक्रिया है और न ही मुक्तभोग की प्रक्रिया। वह तो केवल रूपांतरण की प्रक्रिया है, हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया है। जब व्यक्ति अपनी चेतना को ऊर्ध्वमुखी बना लेता है और ज्ञान केन्द्र में स्थित कर लेता है तो वह निर्मल हो जाता है, स्वच्छ हो जाता है। उसमें माया के परमाणु, काम, लोभ, मोह के परिणाम धुल जाते हैं और तब फिर वासना नाम की कोई चीज रहती ही नहीं। अध्यात्म, वासना को चित्त की विकृत्ति मानता है। जब चित्त विकृत नहीं रहा, निर्मल हो गया, अपने में स्थित हो गया तो फिर वासना का अस्तित्त्व कहां, लोभ का अस्तित्त्व कहां? जब तक चेतना के साथ माया के परमाणु चाहे वे काम के हों, क्रोध के हों या लोभ के हों, जुड़े रहेंगे तब तक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


ये प्राणी में उभरते रहेंगे और प्राणी को विषयों की ओर प्रवृत्त करते रहेंगे। लेकिन जैसे जैसे ध्यान की शिला पर चेतना का साबुन् लगाकर चित्त को धोया जाता है चित्त वैसे ही निर्मल हो जाता है जैसे मैले कपड़े को साबुन से धोने से उसकी मैल दूर हो जाती है। इसलिए फ्राइड ने कहा कि सैक्स को सबलीमेट करो अर्थात् काम वृत्ति का उदात्तीकरण या रूपांतरण करो।

अध्यात्मवादी दृष्टिकोण यह मानता है कि हमें एक वृत्ति का दूसरी वृत्ति में रूपांतरण करना चाहिए। जैसे क्रोध को क्षमा से और कृपणता को दान से बदला जा सकता है, इसे ही वैराग्य कहते हैं। पदार्थ से अनुराग हटाकर, विषयों से अनुराग हटाकर उसे चेतना के साथ जोड़ दिया जाय, ज्ञान के साथ जोड़ दिया जाय तो पदार्थ और विषयों के प्रति प्रवृत्ति कम हो जाती है। जो व्यक्ति अपनी विद्युत को, ऊर्जा को मोड़ देता है ज्ञान के प्रति, आत्मा के प्रति उसकी ऊर्जा काम-वासना की ओर प्रवाहित होना बन्द हो जाती है। उसकी राग-अनुभूति कम हो जाती है। जिस राग प्रणालिका से बहती हुई ऊर्जा काम को (सैक्स को) सक्रिय करती थी वह मार्ग धीरे धीरे बंद होता जाता है और नया मार्ग खुल जाता है। वह प्राण ऊर्जा दूसरे मार्ग से बहने लगती है। अध्यात्म शास्त्र में राग के दो भेद प्राप्त होते हैं—प्रशस्त राग और अप्रशस्त राग। जो राग धर्म के प्रति होता है आत्मा के प्रति होता है, धर्ममूर्त्ति पुरुष के प्रति होता है वह है प्रशस्त राग या अनुराग और जो राग विषयों के प्रति, पदार्थ के प्रति होता है वह है अप्रशस्त राग या वासना। जो व्यक्ति धर्म के अनुराग से रत होता है वही धार्मिक होता है। यहां भी अनुराग है, राग मिटा नहीं, केवल उसकी दिशा बदल गई। जब तक व्यक्ति वीतराग अवस्था तक नहीं पहुंच जाता और उसके सारे मायावी परमाणु क्षीण नहीं हो जाते, तब तक राग से सर्वथा छुटकारा नहीं हो सकता। "अनुरागाद विरागा" अनुराग से विराग होता है। एक के प्रति अनुराग और दूसरे के प्रति विराग। विराग और राग दोनों सापेक्ष हैं। जब आत्मा के प्रति राग उत्पन्न होता है तब पदार्थ के प्रति विराग होता है।

कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि काम नैसर्गिक है उसको क्यों बदला जाय, यह प्राकृतिक गुण है। लेकिन सच यह है कि जब तक हम प्राकृतिक गुणों का भी रूपांतरण नहीं कर लेते, परिमार्जन नहीं कर लेते तब तक हम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



पशु की भूमिका में ही रह जाते हैं। मनुष्य की क्षमताओं का इसलिए विकास हुआ है कि वह प्रकृति-प्रदत्त या नैसर्गिक गुण-धर्म जो उसे उपलब्ध हैं, वह उनका शोधन करना जानता है, विकास करना जानता है और उनको नया मूल्य देना जानता है। इसलिए मनुष्य, मनुष्य है। गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं कि तमोगुण को रजोगुण से जीतो और रजोगुण को सतोगुण से जीतो। सतोगुण को शुद्ध आत्मा से जीतो। मनुष्य ने नई दिशाएं खोजी हैं। यदि मनुष्य काम को नैसर्गिक मानकर बैठ जाए और पशु की भांति उसका अनियंत्रित प्रयोग करता चला जाय तो समाज ही नहीं बनेगा। पशु नया मार्ग नहीं खोजना जानता और न ही अपनी ऊर्जा के प्रवाह का रूपांतरण कर सकता है। यह क्षमता केवल मानव में ही है।

मुक्तभोग से भोग की इच्छा समाप्त नहीं होती बल्कि वह और बढ़ती है। जैसे अग्नि में घी डालने से अग्नि और प्रज्ज्वलित होती है। मनोविज्ञान के विलयन के सिद्धांत के अनुकूल यदि हम प्रवृत्ति का निरोध नहीं करते हैं तो वह बढ़ती ही चली जाती है। जिस प्रवृत्ति का निरोध कर देते हैं वह कम हो जाती है। कुछ मनोवैज्ञानिकों और दार्शनिकों ने यह माना है कि जिस प्रवृत्ति को हम लम्बे समय तक नहीं दुहराते वह समाप्त हो जाती है। वही प्रवृत्ति जीवित रहती है जिसकी पुनरावृत्ति होती रहती है। भगवान महावीर कहते हैं कि क्षमा से, क्रोध, मृदुता से मान और संतोष से लोभ को जीतो। विरोध के सिद्धांत का तात्पर्य है कि एक प्रवृत्ति को विरोधी प्रवृत्ति के द्वारा समाप्त कर देना। तृष्णा के स्थान पर वैराग्य की भावना, अज्ञान के स्थान पर ज्ञान की भावना, मिथ्यादृष्टि के स्थान पर सम्यक् दर्शन की भावना और काम प्रवृत्ति के स्थान पर चरित्र की भावना के अभ्यास से निम्न वृत्तियों का सबलीमेशन या उदात्तीकरण हो जाता है। और यह सबलीमेशन और वृत्तियों का उदात्तीकरण सहज में ही सत्पुरुषों की संगति से प्राप्त होता है। इसीलिए धर्मशास्त्रों में सत्संग की अपार महिमा लिखी हुई है।

**प्रेम हो तो श्री हरि से प्रेम होना चाहिए ।**
**जो बने विषयों के प्रेमी उन पे रोना चाहिए ।।**

अध्यात्म के अनुसार पहले निम्न वृत्तियों को, तामसिक वृत्तियों को उदात्त वृत्तियों से जीतो जब तक कि तुम पूर्ण निर्विकल्प शुद्ध चेतना की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अवस्था को नहीं प्राप्त कर पाते।

अध्यात्म में न केवल वृत्तियों का उदात्तीकरण ही संभव है बल्कि उनका क्षय और समाप्तिकरण भी संभव है। अध्यात्म ने वृत्तियों के क्षयीकरण का जो सूत्र दिया वह है 'रेचन'। अध्यात्मवादी कहते हैं कि वृत्तियों का दमन मत करो, उनका रेचन कर दो। दमन, भोग और रेचन ये तीन मार्ग हैं वृत्तियों के निरोध करने के। दमन बाहरी मार्ग है लेकिन यह स्थायी नहीं है। भोग वृत्तियों को शांत नहीं करता बल्कि और तेज कर देता है। थोड़ी देर के लिए भले ही भोग से वृत्ति शांत हो जाय लेकिन फिर उस वृत्ति का संस्कार व्यक्ति को भोग में प्रवृत्त करता है और इस प्रकार से इसका अंत नहीं है। और तीसरा मार्ग है रेचन, अर्थात् वृत्तियों को क्षीण कर देना, उन्हें कमजोर कर देना। हमारे मन में कोई वत्ति जागृत हुई, हमने उसे भोगा नहीं या अपने मन को किसी और कार्य में लगा लिया, ध्यान में लगा लिया तो वह वृत्ति धीरे-धीरे शांत हो जाती है और ध्यान के द्वारा अन्तःकरण को शुद्ध करके वृत्तियों के मल को समाप्त किया जा सकता है। जैन आचार्यों ने इस रेचन की क्रिया को निर्जरा कहा है। इसलिए अध्यात्मवादी कहते हैं कि वृत्ति का रेचन करो ध्यान के द्वारा, रेचन करो भावना के द्वारा, रेचन करो सत्पुरुषों की संगति और सेवा द्वारा। काम वृत्ति को भोगने से जो सुख प्राप्त होता है वह एक नकारात्मक सुख है, विधायक सुख नहीं है। कोई भी काम, क्रोध, लोभ की प्रवृत्ति जब बलवती होती है तो वह तनाव पैदा करती है और प्राण धारा के साथ लगकर बाहर निकलना चाहती है। इसलिए वह एक प्रकार के तनाव से क्षणिक मुक्ति है। लेकिन उसके साथ व्यक्ति की बहुत सी विद्युत ऊर्जा निकल जाती है। प्राण की शक्ति कम हो जाती है। विद्युत को खर्च करने से आदमी खाली हो जाता है, वह निराशा से भर जाता है। उसकी प्रतिभा समाप्त हो जाती है। उसके मस्तिष्क के तंतु कमजोर पड़ जाते हैं। किसी भी बड़े कार्य को करने के लिए उसके पास अतिरिक्त शक्ति नहीं रहती है। इसलिए अध्यात्म की प्रक्रिया में शक्ति का संचय किया जाता है और वृत्तियों का रेचन। आचार्य रजनीश ने धर्म पर बहुत बड़ा आक्षेप किया है कि धर्मगुरु दमन सिखाते हैं। धर्म दमन सिखाता है यह झूठा आक्षेप है। धर्मशास्त्र कभी दमन नहीं सिखाते। ध्यान की प्रक्रिया रेचन की प्रक्रिया है। जो मायावी परमाणु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



हमारी आत्मा के साथ जुड़े हुए हैं, मल विक्षेप आवरण जो हमारी आत्मा को आवृत्त कर रहे हैं, कुण्ठित कर रहे हैं, उन आवरणों को, माया के परमाणुओं को ध्यान के द्वारा क्षीण कर देना, उन्हें समाप्त कर देना, उनका शोधन कर देना, यह है अध्यात्म की प्रक्रिया। जैनी आचार्यों ने रेचन और संवर ध्यान के दो पहलू बताए हैं। पुराने संस्कारों को ध्यान के द्वारा क्षीण करना, झाड़ देना, निर्जरा या रेचन कहलाता है और प्रत्याहार के द्वारा, इंद्रियों के द्वार बंद करके माया के नए संस्कारों को भीतर न जाने देना 'संवर' कहलाता है।

मनोविज्ञान ने जो रूपांतरण की बात का प्रतिपादन किया वे सामाजिक स्तर पर रूपांतरण हैं। उनके पास अध्यात्म की प्रक्रिया नहीं है। अध्यात्म-साधना में एक ऐसी प्रक्रिया का प्रतिपादन है जिसमें व्यक्ति की वृत्तियों का विलीनीकरण हो जाता है और नए चैतन्य का उदय होता है। हमारी वृत्तियां जागती हैं काम केन्द्र के पास। क्रोध की वृत्ति, भय और काम वासना की वृत्ति काम केन्द्र के आस पास जागती है। नाभि के पास दो एड्रिनल ग्रंथियां हैं। वे वृत्तियों को उत्तेजित करती हैं। जब ऊर्जा नाभि के आस-पास घूमती है तब क्रोध, भय और काम की वृत्तियां बार-बार उभरती हैं और व्यक्ति को सताती रहती हैं। साधना से ऊर्जा का दिशान्तरण करना है, उसके प्रवाह को बदल देना है, उसकी दिशा को बदल देना है। जो ऊर्जा नीचे की ओर प्रवाहित होकर निम्न वृत्तियों को शक्ति देती है, सक्रिय करती है, उसको ऊर्ध्वगामी बनाना, ज्ञान-केन्द्र की ओर प्रवाहित करना—यह साधना का मूल लक्ष्य है। जब ऊर्जा ऊपर की ओर बहने लग जाती है तब वृत्तियां शांत हो जाती हैं। जब ऊर्जा ज्ञान-केन्द्र तक पहुंचती है तब वृत्ति-केन्द्रों का ही शोधन होने लग जाता है।

हम अपने भावों को बदलकर अपनी वृत्तियों को बदल सकते हैं, उनका संशोधन कर सकते हैं। ऊर्जा की ऊर्ध्व यात्रा से ही यह संभव है। हम ध्यान-साधना के द्वारा वृत्तियों का दमन नहीं करते किन्तु ऊर्जा को ऊर्ध्व पथ में प्रवाहित कर उनको विलीन कर देते हैं। जब हमारी ऊर्जा-ज्ञान-केन्द्र में जाती है तब सारी निम्न वृत्तियां समाप्त हो जाती हैं। थायराइड, कंठमणि, पिच्यूटरी, पिनियल, विशुद्धि-केन्द्र, दर्शन-केन्द्र,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



ज्योति-केन्द्र, शांति-केन्द्र—ये सब ज्ञान-केन्द्र हैं, ज्ञान के भाग हैं। ऊर्जा ऊपर उठकर इन केन्द्रों को सक्रिय करती है। ये केन्द्र सक्रिय होते हैं तब वृत्तियाँ अपने आप शुद्ध होने लगती हैं, उनका रेचन होने लगता है। बिना जागे, बिना उदय में आए, बिना विपाक दिए, बिना फल दिए, एक ऐसी उदीरणा होती है कि वृत्तियों का स्वतः रेचन हो जाता है।

साधक का सर्वोपरि कार्य है ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन करना, न कि वृत्तियों का दमन करना। अध्यात्म की समूची साधना, योग की समूची साधना, ध्यान की समूची साधना ऊर्जा के ऊर्ध्वीकरण की साधना है।

आजकल धर्म के नाम पर या योग-अभ्यास और ध्यान-साधना के नाम पर चलने वाले कुछ एक आश्रमों में इस प्रकार की कुण्ठा वाले स्त्री-पुरुष पर मुक्त यौन आचार का प्रयोग करते हैं और उनकी कुण्ठाओं को समाप्त करते हैं।

आज के युवक में मुक्त यौनाचार के प्रति आकर्षण है और वह ऐसे स्थानों में जाना चाहता है जहां मुक्त यौनाचार किसी भी नाम से चलता हो। चाहे वह ध्यान की गहराई में जाने के नाम से चले या कुण्ठा निवारण के नाम से चले, किन्तु इसका परिणाम कितना भयंकर होता है, यह सबको ज्ञात है। प्रवृत्ति का क्षण हमारे लिए मूल्यांकन का क्षण नहीं होता। हम उसे कसौटी नहीं मान सकते। कसौटी बन सकता है परिणाम का क्षण, कसौटी बन सकता है निष्पत्ति और फल का क्षण। यदि मुक्त यौनाचार के प्रयोगों के परिणामों पर हम विचार करते हैं तो इसके इतने खराब परिणाम होंगे कि सारा सामाजिक ढांचा ही विकृत हो जाएगा। 'दमन' जितना अपराध है, अपने व्यक्तित्व के प्रति अपराध है, उन्मत्तता या उच्छृंखला भी उतना ही अपराध है अपने व्यक्तित्व के प्रति। हम इन दोनों से बचकर रेचन की बात सीखें, रेचन करना जानें ओर ऊर्जा को ऊर्ध्वमुखी बनाएं।

आत्मा की ज्योति और तेजस् की ज्योति उसके प्रकाश का पता नहीं चलता। आत्मा एक ऐसा दीप है जो निरंतर जलता रहता है। उसमें ईंधन की आवश्यकता नहीं होती। उसमें सहज ही ऐसी शक्ति है कि वह सदा प्रज्ज्वलित रहती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



सहज प्रकाश रूप दिन राती ।
नहिं चाहिये कछु दिया घृत बाती ।।

दूसरी है तेजस् की ज्योति। यह हमारे शरीर की ज्योति है। हमारा एक सूक्ष्म शरीर है—तेजस् शरीर। ध्यानकाल में कभी स्फुलिंग सामने आते हैं, कभी चिनगारियां उछलती हैं और कभी रंग सामने आते हैं। ये रंग, चिनगारियां और स्फुलिंग—सारे ही तेजस्-शरीर में से निकलते हैं और कभी-कभी दिखाई दे जाते हैं। जब हमारा मन सूक्ष्म होता है, एकाग्र होता है तब वह उन्हें पकड़ लेता है। ज्योति की साधना में कुछ बाधाएं भी हैं, वे बाधाएं हैं वृत्तियां। ये तरंगें स्नायु को उत्तेजित करती हैं जो साधना में बाधा बन जाती है।

जब तक साधक—भय, क्रोध और काम-वासना की तरंगों से छुटकारा नहीं पा लेता तब तक वह निर्विघ्न रूप से आगे नहीं बढ़ सकता।

न दमन का मार्ग अच्छा है और न मुक्तता का मार्ग अच्छा है। अच्छा मार्ग है रूपांतरण का, उदात्तीकरण का, शोधन का। काम के रूपांतरण के सूत्र— १. जहां दमन होता है वहां काम मरता नहीं, विषाक्त हो जाता है। व्यक्ति काम को बहुत बड़ा अनर्थ मानते हैं। भीतर में काम की आग भभकती है और बाहर से पानी डालने का प्रयास होता है। यह दोहरा व्यक्तित्व व्यक्ति जीता है। आंख देखती है, उसमें विकार भी आता है तो क्या आंख फोड़ देनी चाहिए? साधना के प्रारंभ से ही यदि कोई व्यक्ति यह प्रदर्शित करता है कि वह काम से ऊपर उठ गया, निष्काम बन गया तो यह धोखा है। हम यह मानकर चलें कि जो व्यक्ति साधना शुरू करता है, दिशांतरण का प्रयत्न शुरू करता है वह एक ही दिन में सिद्ध नहीं हो जाता "अनेक जन्म संसिद्धिः" प्रयत्न को स्वीकार करें, अभ्यास को स्वीकार करें लेकिन सिद्ध होने का प्रदर्शन न करें। स्वाभाविक प्रवृत्तियां मनुष्य में जागती हैं, साधक में भी जागती हैं और सामान्य मनुष्य में भी जागती हैं। राग का प्रवाह जो काम की दिशा में जाता है उसका सबसे बड़ा कारण है तनाव। व्यक्ति में जितना तनाव होता है उतना ही काम प्रबल होता है।

ध्यान का मूल सूत्र है जागरूकता, अंतरमुखता। जब तक जागरूकता और अंतरमुखता बनी रहेगी तब तक गृहस्थ साधक को काम नहीं सताएगा। वह तनाव से नहीं भरेगा और तनाव मिटाने के लिए उसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


मदिरा-पान नहीं करना पड़ेगा। इस साधना से साधु यदि एक साथ वीतराग न भी बने पर ऊर्जा का ऊर्ध्वीकरण होता रहेगा और आंतरिक शक्तियां जगेंगी, प्रज्ञा का जागरण होगा, अंतर के आलोक का विकास होगा। इसलिए ध्यान है तनाव को मिटाने का मूल सूत्र।

ध्यान की धारा मुर्च्छा की धारा नहीं है, गांजा, चरस आदि मादक पदार्थों का सेवन व्यक्ति को आत्म-विस्मृति, मूर्च्छा और विचार-शून्यता में ले जाता है। ध्यान का उद्देश्य जागरूकता है, सतत जागरूकता। एक क्षण के लिए भी आत्म-विस्मृति न हो। ज्योति सतत जलती रहे और अपने अस्तित्त्व का भान निरंतर बना रहे।

उपनिषदों में चार वाणियों और जीव की चार चित्त की अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। जीव की चार अवस्थाएं जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया हैं। तीन अवस्थाओं का अनुभव तो हर जीव को सहज में होता रहता है लेकिन तुरियावस्था का बोध केवल ध्यान की सघनता में ही होता है। इसी प्रकार बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती एवं परा ये चार वाणियां हैं जो चेतना के स्थूल से सूक्ष्म स्तरों के क्रम का वर्णन करती हैं। अति स्थूल चेतना की अभिव्यक्ति बैखरी वाणी के द्वारा होती है। मध्यमा और पश्यन्ती उससे सूक्ष्म हैं और हृदय तक जाती हैं। परा वाणी जो विशुद्ध चेतना की वाणी है, का ज्ञान ध्यान से ही संभव है क्योंकि यह मन, बुद्धि और इंद्रियों से परे है। ब्रह्म तत्त्व परातत्त्व है जो अतीन्द्रिय है। उस तत्त्व का बोध केवल ध्यान के द्वारा ही होता है। प्राचीन काल में अनेक अतीन्द्रिय शक्तियों का वर्णन हमारे शास्त्रों में मिलता है। ध्याता, ध्यान के द्वारा अपनी बहुत सी अतीन्द्रिय शक्तियों को विकसित कर सकता है। आज विज्ञान भी इस तथ्य को मानने लगा है।

सांसारिक व्यक्ति यह शिकायत करता है कि उसका मन ध्यान में नहीं लगता। राग-द्वेष युक्त आत्मा सांसारिक वस्तुओं और विषयों के ध्यान में मस्त व मग्न रहती है। विषयों को उपलब्ध करने तथा विषयों के संरक्षण का ध्यान एक सांसारिक व्यक्ति में बड़ा सहज है। लोग ताश खेलने में अपने आप को खो देते हैं, रात भर जुआ खेलने में थकते नहीं, नाच-गाने में लोगों का ध्यान खूब लगता है, धन कमाने में लोग दिन-रात परिश्रम करते हैं और अपने धन की रक्षा करने के लिए बड़े चौकस रहते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



हैं। इस प्रकार के ध्यान में सांसारिक व्यक्ति अभ्यस्त है बल्कि वह संन्यासियों से भी ज्यादा ध्यान में लीन हो जाता है।

एक कथा आती है कि एक मौलवी नमाज पढ़ रहा था और एक कामुक स्त्री अपने प्रियतम से मिलने के लिए जा रही थी। वह कामुक स्त्री प्रियतम के ख्याल में इतनी खोई हुई थी कि अनजाने में उसका पैर मौलवी को लग गया। मौलवी ने कहा—अंधी हो, क्या देखकर नहीं चल सकती? उस कामुक स्त्री ने कहा कि तुम क्या अल्लाह का ध्यान कर रहे हो, क्या नमाज पढ़ रहे हो, जब तुम्हें अपने शरीर की सुध बुध है? मुझे देखो, मैं अपने प्रीतम के प्रेम में अपनी सुध-बुध भी खोई हुई हूं। सांसारिक व्यक्ति एक-एक विषय में इतना मस्त व ध्यानस्थ हो जाता है कि वह अपनी सुध-बुध खो बैठता है। इस प्रकार के ध्यान में संसारी लोग अभ्यस्त हैं और इन सांसारिक विषयों में व्यक्ति का मन खूब टिकता है, एकाग्र होता है। वह इतना एकाग्र होता है कि शायद किसी संन्यासी का भी नहीं होता हो। लेकिन यह बहिर्मुखी ध्यान है, यह वस्तु का ध्यान है, यह विषयों का रस है। यही बंधन है। इसी ध्यान की दिशा को हमें परिवर्तित करना है। जहां मन टिकता है वहां वह नहीं टिके और जहां वह नहीं टिकता वहां वह टिकने लगे। जड़ से मन को हटाकर चैतन्य में लगाना ध्यान की पहली प्रक्रिया है। विषयों से हटाकर मन को आत्मचिंतन में लगाना यही ध्यान है। भिन्न-भिन्न विषयों का चिंतन छोड़कर केवल प्रभु के नाम का सतत ध्यान और सुमिरण करना ध्यान है। भगवान महावीर से पूछा गया कि भन्ते! धर्म श्रद्धा से क्या होता है? धर्म के प्रति अनुराग होने से क्या होता है? भगवान ने कहा—धर्म के प्रति अनुराग होने से अनुत्सुकता पैदा होती है। पदार्थ के प्रति रही हुई उत्सुकता जब समाप्त होती है तब धर्म के प्रति उत्सुकता जागती है। उत्सुकता एक पर होगी, पदार्थ पर या धर्म पर। एक ही साथ दो घोड़ों पर सवारी नहीं की जा सकती। हमें अपनी उत्सुकता को चैतन्य की दिशा में प्रवाहित करना है। हम तनाव में इसलिए हैं कि हमारा सारा आकर्षण पदार्थ के प्रति है, दूसरों के प्रति है, अपने प्रति नहीं है। तनाव का कारण भी ध्यान है और तनाव का निवारण भी ध्यान है। जब मन की एकाग्रता संसारी वस्तुओं में लग जाती है तो हम तनाव से भर जाते हैं और जब वह अपने आंतरिक स्वरूप में लग जाती है तो तनाव अपने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


आप ही विसर्जित होने लग जाता है।

महावीर को कैवल्य लाभ हुआ। इंद्रभूति गौतम ने पूछा—भन्ते! तत्त्व क्या है? महावीर उत्तर देते हैं—गौतम! उत्पन्न होता है, नष्ट होता है और स्थिर रहता है, यही तत्त्व है। ज्ञान ध्रुव है। ज्ञान की मलिनता नष्ट होती है और केवल-ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। गौतम ने पूछा—भन्ते! केवल-ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ? महावीर ने कहा—गौतम! मैं पूरा जाग गया। जैसे ही जागा, सारी मूर्च्छा टूट गई। जागते ही सारे आवरण हट गए। जब तक मूर्च्छा में था, जब तक आवरणों में था, जब तक नींद में था तब तक पर्दा बना रहा। जैसे ही जागा आवरण हट गया। जैसे ही आवरण हटा विघ्न की चट्टान चूर-चूर हो गई। तत्काल केवल-ज्ञान उदित हो गया। अज्ञान है अंधकार और ज्ञान है प्रकाश। प्रकाश के उदित होते ही अज्ञान और मूर्च्छा का अस्तित्त्व समाप्त हो जाता है। इसलिए ध्यान है सतत आत्म-जागरण की प्रक्रिया। जो अपनी आत्मा में पूरी तरह से जागा हुआ है, पूरी तरह से स्थित है, तैलवत् धारा की तरह अनन्य और अविरल भाव से जो चैतन्य प्रकाश में लवलीन है वही ध्यान के अंतिम बिन्दु 'समाधि' का रसास्वादन करता है और मुक्त हुआ आनंद-विभोर हो जाता है। □

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# ध्येय

मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य क्या है, ध्येय क्या है, यह भी एक वाद-विवाद का विषय है। सांसारिक लोग केवल सांसारिक वैभव को धन-संपत्ति को या पद को प्राप्त करना ही अपने जीवन का उद्देश्य बनाए हुए हैं। धन कमाना, मान तथा ऐश्वर्य प्राप्त करना, नाना प्रकार की उपाधि से विभूषित होना, ऐसे ही कार्य तो इस संसार में हमारे जीवन-उद्देश्य बने हुए हैं और अधिकांश जन समुदाय दिन-रात इन्हीं को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है परन्तु यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से देखें और विवेकपूर्वक विचार करें तो यह विदित हो जायगा कि वास्तव में ऐसा नहीं है। मानव केवल दुनियादारी के कामों के लिए ही पैदा नहीं हुआ है। मानव-जीवन का वही ध्येय हो सकता है जो इस संसार में मनुष्य शरीर को प्राप्त करके व्यक्ति प्राप्त कर सकता हो। जिस तरह मछली का कार्य और उद्देश्य वही हो सकता है जो जल में पूरा हो सके, क्योंकि जल के बिना मछली के जीवन का अस्तित्व ही नहीं रहता, इसी तरह मानव-जीनव का ध्येय भी ऐसा ही हो सकता है जो मनुष्य शरीर में ही संभव हो और जो देश, काल और राजनैतिक परिस्थितियों से प्रभावित न हो क्योंकि सांसारिक जितने भी उद्देश्य हैं वे इन परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं। मान लीजिए एक व्यक्ति का ध्येय अधिक से अधिक धन कमाना है, करोड़पति या अरबपति होना है। अगर वह किसी साम्यवादी देश में ऐसे उद्देश्य की पूर्ति करना चाहता है तो वह इसे प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि वहां का विधान और सरकार उसे ऐसा करने की कभी इजाजत नहीं देगी। इसी प्रकार से यदि हमारा उद्देश्य किसी विशेष देश और काल से संबंधित है तो देश और काल के बदल जाने पर उस उद्देश्य की पूर्ति संभव नहीं हो पाती। यदि हम मान भी लें कि मानव जीवन का उद्देश्य धनप्राप्ति, ऐश्वर्य एवं उपाधि को प्राप्त करना ही है तो भी देखा गया है कि पहले तो उनको प्राप्त करने में अनेकानेक मानसिक क्लेश, शारीरिक कष्ट, आत्मिक पतन एवं स्वास्थ्य संबंधी हानियां उठानी पड़ती हैं और यदि किसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


तरह सफलता भी हुई तो उनको सुरक्षित रखने में जीवन-पर्यन्त चिंतित रहना पड़ता है और उसे नष्ट होने से बचाने की चिंता लगी रहती है। इसके अतिरिक्त राजनैतिक परिस्थितियों के बदल जाने से अथवा समय के हेर-फेर से वह हाथ से चली जाती है और फिर मृत्यु तो सब कुछ व्यक्ति से छीन लेती है।

अतएव व्यक्ति के जीवन का ध्येय वही हो सकता है, उसकी वास्तविक संपदा व उपलब्धि वही हो सकती है जो मृत्यु भी उससे छीन न सके। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

**अरब खरब लो संपदा उदय अस्त लो राज ।**
**जो तुलसी निज मरण है आवे कौने-काज ।।**

कहते हैं कि एक बार एक मल्लाह कुछ मुसाफिरों को अपनी नाव से नदी पार करवाया करता था। एक बार भिन्न-भिन्न कलाओं में निपुण व्यक्ति उसकी नाव में बैठ गए। उनमें एक संगीतकार था तो दूसरा उद्योगपति था, तीसरा राजनेता था और चौथा वैज्ञानिक था। इसी प्रकार से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रसिद्धि प्राप्त व्यक्ति दैवयोग से उस नाव में बैठे हुए थे। बातचीत चली। एक-एक करके सबने अपनी कला व सांसारिक विद्याओं के बारे में बखान किया। फिर मल्लाह से पूछा कि तुम इन कलाओं के विषय में क्या जानते हो? मल्लाह बेचारा सीधा-साधा व्यक्ति था। दिन भर नाव चलाकर अपना जीविकोपार्जन करता था। उसने भोलेपन से कहा कि साहब ! आप बड़े लोग हैं, डिग्री होल्डर हैं, मैं तो सीधा-साधा आदमी हूं। भगवान का भजन करता हूं और नाव चलाकर अपने परिवार का पालन-पोषण करता हूं। तो सबने कहा कि तेरा जीवन भी कोई जीवन है? कहते हैं कि कुछ देर के बाद जब नाव नदी के बीच में पहुंची तो अचानक नदी का बहाव बढ़ने लगा और नाव डगमगाने लगी। तब सभी लोग चिल्लाने लगे और मृत्यु के भय से आक्रांत हो गए। पानी में तूफान उठा और नाव भंवर में फंस गई। मल्लाह ने कहा—यह नाव किनारे नहीं पहुंच पाएगी, जो-जो तैरना जानता है वह नाव से छलांग लगाकर और तैर कर नदी पार करने की कोशिश करे अथवा अब मेरे लिए नाव को बचाना बहुत मुश्किल है। यह दुर्भाग्य की बात थी कि उनमें से कोई भी तैरना नहीं जानता था। नाव में पानी बढ़ता गया और नाव डूबने लगी। अंततोगत्वा मल्लाह ने कहा कि आप लोगों ने और सब कलाओं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



में तो निपुणता प्राप्त की लेकिन आज वे सब कलाएं आपके काम नहीं आएंगी क्योंकि आपको तैरने की कला नहीं आती। मल्लाह छलांग लगाकर तैर कर नदी पार कर गया क्योंकि वह इस कला को जानता था।

यह वृत्तांत एक सत्यता को लिए हुए है कि व्यक्ति संसार की अनेक उपलब्धि प्राप्त कर लेता है लेकिन भवसागर को पार करने की कला अर्थात् जीने की कला वह सीख नहीं पाता जिससे उसका जीवन अधूरा रहता है। जो वस्तुएं अंत में काम नहीं आतीं उनको बटोरने से क्या लाभ? गीता के अनुकूल जो अंत समय में परमात्मा का सुमिरण करते हुए शरीर छोड़ता है वह परमात्मा को प्राप्त करता है और बाकी जो सांसारिक विषयों का चिंतन करते हुए शरीर को छोड़ते हैं वे अधम योनियों को प्राप्त करते हैं। गुरु नानक साहब तो कहते हैं—

**लख चौरासी भ्रमदियां मानुष जनम पायो ।**
**नानक नाम संभाल सो दिन नेड़े आयो।।**

गुरु नानकदेव ने मानव जीवन के उद्देश्य के बारे में कहा कि—हे मानव !

**नाम जपन की यही तेरी बिरिया,**
**और काज तेरे किसी न काम, कर साधु संगत भज केवल नाम**

संसार में सभी लोग अपना-अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं और किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति में लगे हुए हैं। पर हम जो भी कार्य करते हैं, चाहे वह धन कमाना हो, मान तथा ऐश्वर्य को प्राप्त करना हो, उस कार्य में चाहे हम सफल हों या असफल परंतु उस कार्य का प्रभाव हमारी आत्मा पर पड़ता है। इसलिए हमारे जीवन का उद्देश्य वही हो सकता है जिसका संबंध हमारी आत्मा से हो। जो कार्य आत्मा को अवनत करते हैं वे व्यक्ति के जीवन के उद्देश्य नहीं हो सकते और जो कार्य आत्मा को उन्नत करते हैं वही कार्य उसके उद्देश्य हो सकते हैं। इसलिए इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल आत्मा को उदार तथा उन्नत बनाना ही हमारे जीवन का परम उद्देश्य हो सकता है। धर्म और अधर्म, नैतिकता और अनैतिकता का, अच्छे और बुरे का विवेक भी इसी आधार पर किया जाता है। जो कर्म हमारी आत्मा को उन्नत करता है, आनंदित करता है, हमारी आंतरिक शक्ति का विकास करता है जिससे हमें स्वतंत्रता की उपलब्धि हो सकती हो, हम आत्मनिर्भर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



हो सकते हों, उन्हीं कार्यों को अच्छा माना जाता है। जिससे आत्मा मलिन होती हो, व्यक्ति की शक्ति का ह्रास होता हो, उसकी स्वतंत्रता कम होती हो, उसे दूसरों के अधीन रहना पड़ता हो और उद्विग्नता बढ़ती हो, वे कर्म सदैव बुरे माने जाते हैं। इसलिए व्यक्ति के ध्येय का केन्द्रबिन्दु उसकी निज आत्मा का विकास, निज आत्मा का बोध या आत्म साक्षात्कार ही हो सकता है जिससे उसे परम स्वतंत्रता, परम आनंद और परमशांति की प्राप्ति होती है क्योंकि आत्मा-देश, काल और समय से परे है। इसलिए ये स्थितियां भी आत्मतत्व की प्राप्ति में और आत्म-साक्षात्कार में बाधा नहीं डाल सकतीं। अतः आत्मा को उदार तथा उन्नत बनाना ही एक ऐसा कर्तव्य है जो हर व्यक्ति इस मनुष्य शरीर को प्राप्त करके कर सकता है। और योनियों में यह संभव नहीं है। सांसारिक विषयों का भोग तो और योनियों में जीव कर सकता है परंतु आत्मा की उन्नति केवल मानव शरीर में ही संभव है। इसलिए ध्याता के रूप में मानव का ध्येय उस परम चैतन्य आनंदमयी मुक्त चेतन सत्ता को जानना और प्राप्त करना है। यही हमारा ध्येय, लक्ष्य और साध्य हो सकता है।

तर्कशास्त्र में साध्य का लक्षण यह माना गया है कि 'असिद्धं साध्यं' जो असिद्ध है वह साध्य है और यदि सिद्ध है तो वह साध्य नहीं बन सकता। उसको साधने की जरूरत नहीं होती। साध्य वह बनता है जो सिद्ध नहीं है, जो साधा नहीं गया, जिसे साधना है। इसीलिए मानव शरीर को साधना का धाम कहा गया है, क्योंकि इसमें मनुष्य सहज में साध्य की प्राप्ति के लिए साधना कर सकता है। ध्येय की प्राप्ति के लिए ध्यान कर सकता है।

सभी धर्म और दर्शन इस संसार में दो मुख्य तत्व मानते हैं—चेतन और जड़। जड़ भी ध्येय हो सकता है। जड़ तत्वों को जानने के लिए ही विज्ञान एक माध्यम है। लेकिन जड़ तत्व अपने आप में बेजान है, आनंदरहित है और मानव चैतन्य-प्राणी होने के कारण चेतना की प्रतिमूर्त्ति है। विकास की संभावनाएं चेतना के जगत में हैं। पूर्णत्व की संभावनाएं चेतना के जगत में हैं। इसलिए स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना, बंधन से मुक्ति की ओर जाना, अंधकार से प्रकाश की ओर जाना, मृत्यु से अमरत्व की ओर जाना, इस की सहज प्रवृत्ति मानव में है क्योंकि यही उसके निज आत्मा के स्वभाव हैं। इसलिए इनको प्राप्त करना ही मानव जीवन का साध्य है, ध्येय है। सभी धर्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



और दर्शन चेतन तत्व को स्वीकार करते हैं। भौतिकवादी भले ही चेतन तत्व के अस्तित्व को स्थूल से अलग नहीं मानें लेकिन अध्यात्मवादी ऐसा मानते हैं कि इन नश्वर तत्वों के पीछे एक अनश्वर तत्व भी है। इस जड़ सत्ता के पीछे एक परम सत्ता भी है। इस अनेकता में कहीं छिपी हुई एकता भी है। उसको जानना, प्राप्त करना ही मानव जीवन का ध्येय है और इसकी सहज जिज्ञासा सदैव मानव में रही है "टू नो द अननोन"। चेतन तत्व जाना हुआ नहीं है। उसको जानने की भावना सदैव मानव में रही है। चाहे भौतिकशास्त्री हों चाहे अध्यात्मवादी, वे संसार के अंदर छिपे हुए उस मूल तत्व की खोज में लगे हुए हैं। अनादि काल से मनुष्य, आत्मा को जानने का प्रयत्न कर रहा है। भौतिकता और नास्तिकता का पुरजोर प्रचार करने के बावजूद भी और 'स्थूल जगत के परे कुछ नहीं है', भौतिकशास्त्रियों के इस अभिमत के बावजूद भी मनुष्य में आत्मज्ञान की जिज्ञासा, आत्म साक्षात्कार की भावना कभी विनष्ट नहीं हुई। साम्यवादी देशों में भी धर्म के विरुद्ध खुले प्रचार के बावजूद व्यक्ति किसी न किसी रूप में उस अज्ञात शक्ति को मान रहा है।

यह सारा ब्रह्माण्ड चेतन तत्व से व्याप्त है, ओत-प्रोत है। कण-कण में समाया हुआ है वह चेतन तत्व। वैज्ञानिक भी आज मानते हैं कि भौतिक तत्व के सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण को जब तोड़ा जाता है तो उसमें अगाध शक्ति का विस्फोट होता है। यह शक्ति क्या है, इसका स्रोत क्या है, यह वैज्ञानिक खोजने के प्रयत्न में लगे हुए हैं। भौतिक स्तर की शक्ति, शक्ति तो है लेकिन उसमें चेतना नहीं है, बोध शक्ति नहीं है, जानने की क्षमता नहीं है। लेकिन चेतना में, ऊर्जा भी है और बोध शक्ति भी है। इसलिए चेतन तत्व को ही बोधि तत्व भी कहा जाता है। उस दैवी चेतन सत्ता को जानकर ही मानव पूर्णत्व का अनुभव करता है। मानव में संतोष और शांति प्रस्फुटित होती है। उसकी सभी जिज्ञासाएं शांत हो जाती हैं। उस परम चैतन्य तत्व के जानने के बाद और कुछ जानना बाकी नहीं रहता। भगवान कृष्ण गीता में अर्जुन को कहते हैं कि मैं तुझे ऐसी राजविद्या का ज्ञान दूंगा जो परम गुह्य है, अति पवित्र है। जिसके जानने के बाद फिर और कुछ जानना बाकी नहीं रहता। वही पराविद्या, ब्रह्मविद्या अथवा तत्वज्ञान मानव जीवन का मुख्य ध्येय है। ध्येय अनेक हो सकते हैं लेकिन उस ध्येय की प्राप्ति के पश्चात् भी व्यक्ति की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



वासना, चाह समाप्त नहीं होती। लेकिन उस परम तत्व का बोध एक ऐसा ध्येय है जिसमें बाकी सभी ध्येय अंतर्निहित हैं। इसीलिए उसे जीवन का मुख्य ध्येय कहा गया है। उपलब्धियां अनेक हैं लेकिन परम उपलब्धि आत्मज्ञान ही है। ज्ञान अनेक हैं लेकिन परम ज्ञान आत्म-ज्ञान है। यद्यपि मानव उस परम चैतन्य का अंश है और उसी की प्रतिमा (इमेज) है। लेकिन उसका दुर्भाग्य यह है कि परमसत्ता के साथ, अपने निज स्वरूप के साथ उसका नैसर्गिक संबंध टूट गया है जिसके कारण वह सदैव त्रि-तापों से घिरा रहता है। मानव की आत्मा और परम आत्मा अर्थात जीवात्मा और परमात्मा तत्वतः एक हैं। यदि जीवात्मा की चेतन कड़ी को उस परमसत्ता के साथ जोड़ दिया जाय तो व्यक्ति पुनः शरीर चेतना को छोड़कर शुद्ध चेतना में स्थित हो सकता है। जीसस क्राइस्ट ने उद्घोष किया कि—"मैं और मेरे पिता एक हैं।"

परम तत्व का बोध, जिसे भिन्न-भिन्न धर्मशास्त्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यक्त किया गया है, इंद्रियों से प्राप्त नहीं हो सकता, न केवलमात्र शास्त्रों के अध्ययन से, न कठोर तप से। वह केवल तत्वदर्शी की कृपा से ही प्राप्त होता है। जैसे चांदमारी में पहले एक सिपाही को ध्येय (Target) बताया जाता है ऐसे ही ध्याता को ध्यान की प्रक्रिया जनाते हुए ध्यानी संत और तत्वदर्शी सद्गुरु पहले ध्येय का बोध कराते हैं।

आज लोग ध्यान की बात करते हैं लेकिन जब उन्हें वास्तविक ध्येय का ही बोध नहीं है तो ध्यान किसका कर रहे हैं? यों तो हर व्यक्ति किसी न किसी चीज का ध्यान करता ही है पर उसे हम वास्तविक ध्यान नहीं कह सकते। लेकिन चेतन तत्व का ध्यान तो तभी हो सकता है जब पहले चेतन तत्व का बोध हो। इसलिए कबीर साहब ने एक दोहे में बड़े सुन्दर ढंग से कहा कि—

**चलन चलन सब कोई कहें मोंहि अंदेसा और ।**
**नाम न जाने गांव का पहुंचेंगे केहि ठौर।।**
**शब्द बिना सुरति आँधरी कहो कहां को जाय ।**
**द्वार न पाये शब्द का फिर फिर भटका खाय।।**

किसी कुँवारी लड़की से कहा जाय कि तुम अपने पति का ध्यान करो तो वह कैसे कर सकती है? ऐसे ही एक जिज्ञासु को कहते हैं कि आत्मा का ध्यान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



करो, आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो तो पहले उसे उस आत्म-तत्व का बोध होना चाहिए, तभी तो वह उसे देखेगा, उस पर ध्यान को स्थिर करेगा। अर्थात् अपने मन को सब तरफ से हटाकर उसमें केंद्रित करेगा। इसलिए संतों ने इसे सुरति-शब्द योग कहा है। परमात्मा का नाम भी हमारे हृदय में है। सुरति अर्थात् मन भी हमारे अंदर है लेकिन दोनों अलग-अलग हैं। ज्ञान का अर्थ है उस प्रक्रिया को जानना जिससे आत्मतत्व का बोध हो और मन को उसमें लगाने का तरीका या विधि की जानकारी हो तभी ध्यान संभव हो सकता है। फिर उसके अभ्यास से बार-बार जब एक ध्याता अपने मन को उस प्रकाश स्वरूप चैतन्य तत्व में केन्द्रित करता है जिससे उसके संकल्प-विकल्प समाप्त हो जाते हैं तब उसे वास्तविक ध्यान कहते हैं।

ध्येय अर्थात् उस तत्व ज्ञान को, उस चैतन्य शक्ति को जो हमारे अंदर प्रवाहित हो रही है और हमें जीवित रखे हुए है, परमात्मा कहें, परमसत्ता कहें, चेतन तत्व कहें, जो कुछ भी कहें वह हमारे अंदर है। उसको ढूंढ़ने के लिए कहीं बाहर नहीं जाना है। मन भी अंदर है अर्थात् ध्यान के उपकरण भी अदर हैं, लेकिन परमसत्ता का बोध न होने के कारण एक ध्याता उसमें अपने मन को स्थिर नहीं कर सकता। इसीलिए ध्येय के बोध की प्राप्ति सद्गुरु के द्वारा होती है और वे अपनी कृपा व शक्ति से एक जिज्ञासु को उसके अंतःकरण में उस परमशक्ति को जना देते हैं। वह उसके मन या चित्त को उसके साथ जोड़ने की, लगाने की, एकाग्र करने की विधि को बताते हैं, जिससे ध्याता अपने चित्त को उस परमसत्ता के सूक्ष्म स्वरूप में स्थिर कर सकता है। इसलिए ध्यान विधि का केन्द्र बिन्दु है ध्येय। ध्येय के बोध के बाद जब एक ध्याता उस पर अपने चित्त को केन्द्रित करता है तो उसके चित्त की मलिनताएं समाप्त हो जाती हैं और वह उसी में समा जाता है। इसे ही गुरु नानक देव जी ने "जोत में जोत समानी" कहा है और कबीर ने "बूंद समाई समुद्र में" कहा है। अनंत चेतना के साथ जब आवृत्त चेतना, अर्थात् प्रकृतिजन्य गुणों से बाधित चेतना मुक्त होकर जुड़ती है तो चेतना की शक्ति इतनी विकसित हो जाती है कि वह त्रिगुणमयी माया का अतिक्रमण कर शुद्ध चैतन्य स्वरूप को प्राप्त कर लेती है। यही है ध्यान की उपलब्धि और यही है ध्याता का ध्येय।

अव्यक्त शक्ति जब अपने आप को व्यक्त करती है तो वह इस जगत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



और शरीर में एक स्पंदन के रूप में, अनहद नाद के रूप मे, प्रकाश के रूप में और अमृत के रूप में प्रगट होती है। चेतनशक्ति की अभिव्यक्तियां हर मानव के अंदर सहज में ही हो रही हैं। इन्हें ही चैतन्य की धारा, चैतन्य का प्रकाश या चैतन्य का संगीत कहा जाता है। और ये सब अमृतमय हैं। जब सद्गुरु इन क्रियाओं का बोध एक जीव के अंतःकरण में करा देते हैं तो ध्याता के लिए ध्यान सरल और सहज हो जाता है। इसे ही दिव्य ज्ञान, ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान कहा गया है।

इस संसार में जितने भी सिद्ध पुरुष हुए हैं, अनुभवी महापुरुष हुए हैं और जितने भी धर्मशास्त्र हैं, वे परमात्मा का, ब्रह्म का तथा आत्मा का वर्णन इसी रूप में करते हैं जो जगत का आदि रूप है, सर्वव्यापक है, सर्वशक्तिमान है, जिसे कोई अल्लाह और कोई गॉड कहकर पुकारते हैं।

मुण्डकोपनिषद् में परमात्मा के प्रकाश स्वरूप का वर्णन करते हुए ऋषि कहते हैं :—

**हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ।**
**तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ।।**

(मुण्ड० २२-९)

परम-कोश हृदय-आकाश में निर्मल, निष्कल प्रकाशमय-ब्रह्म विराजमान है। वह शुद्ध-ब्रह्म ज्योतियों की परम ज्योति है। आत्म-ज्ञानी पुरुष ही उस शुद्ध-स्वरूप को जानते हैं।

इसी प्रकार भगवान कृष्ण गीता में अपने परमधाम का वर्णन करते हुए कहते हैं—

**न तद्भास्यते सूर्यो न शशांको न पावकः ।**
**यद्गत्वा न निवर्तंत्ते तद्धाम परमं मम ।।**

उस स्वयं प्रकाशमय परमपद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही प्रकाशित कर सकती है तथा जिस परमपद को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे संसार में नहीं आते हैं, वही मेरा परम धाम है।

गोस्वामी तुलसीदास जी भगवान के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं—

**सहज प्रकाश रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि विज्ञान विहाना।।**

भगवान स्वभाव से ही प्रकाशरूप हैं। वहां तो विज्ञानरूपी प्रातःकाल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



भी नहीं होता।

गुरु नानकदेव जी की वाणी में कहा है–

**जे सउ चंदा ऊगवहिं सूरज चढ़हिं हजार ।**
**एते चांदण होंदियां गुरु बिन घोर अंधार ।**

मानव में चेतना का अनंत प्रकाश है लेकिन सद्गुरु के द्वारा न जानने के कारण व्यक्ति अंधकार में भटक रहा है। जीसस क्राइस्ट कहते हैं कि– God is light and in Him there is no darkness.

"भगवान प्रकाश स्वरूप हैं और उसमें लेशमात्र भी अंधकार नहीं है।" वे आगे कहते हैं कि अगर ध्याता के नेत्र केन्द्रित हो जायँ, एक हो जायँ तो वह परमात्मा के प्रकाश से भर जाता है। If thine eye be single, thou wilt be full of Light.

मोहम्मद साहब ने भी अल्लाह के इलाही नूर की चर्चा की है। इसी प्रकार जैन परंपरा में भी, बौद्ध,परंपरा में भी और सभी सिद्ध पुरुषों की वाणी एक ही उद्घोष कर रही है कि हे मानव ! वह परमसत्ता प्रकाश-स्वरूप है, उसका प्रकाश अलौकिक है। वह सभी को प्रकाशित करता है। वह स्वयंभू है, स्वयं प्रकाश का पुंज है। उस प्रकाश को अपने अंदर सद्गुरु के द्वारा जानकर जो व्यक्ति इन बाहरी आंखों से नहीं बल्कि दिव्य नेत्र से या आंतरिक दृष्टि से उसका ध्यान करता है वही ध्येय के मर्म और तत्व को जानता है।

परमसत्ता आदि स्पंदन है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो यह सारा जगत ही स्पंदनों और प्रकंपनों का पुंज है। आदि स्पंदन सब स्पंदनों का उद्गम है और ये सब छोटे-बड़े स्पंदन पुनः आदि स्पंदन में ही समाहित हो जाते हैं। ईशावाश्योपनिषद् में इसलिए कहा गया है :–

**ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।**
**पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।**

वह परब्रह्म सब प्रकार से पूर्ण है; यह जगत भी पूर्ण ही है; क्योंकि उस पूर्ण परब्रह्म से ही यह पूर्ण उत्पन्न हुआ है। पूर्ण से पूर्ण को निकाल लेने पर भी पूर्ण ही बच रहता है और पूर्ण में पूर्ण जोड़ने से भी पूर्ण ही रहता है।

उसी आदि स्पंदन को उपनिषदों में शब्द-ब्रह्म कहा है, गीता में अव्यक्त अक्षर कहा है, रामायण में राम नाम कहा है, बाइबिल में शब्द कहा है। बाइबिल में सेन्ट जोन कहते हैं–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



In the begining was the Word, the Word was God and the Word was God.

सृष्टि के आदि में शब्द था, शब्द परमात्मा के साथ था और वह शब्द ही परमात्मा था और है। उसी शब्द को कुरान शरीफ में पाक नाम, गैबी आवाज कहा गया है। उसी से लौ लगाने के लिए सभी सूफी संतों ने कहा है। कबीर साहब कहते हैं कि

**कोटि नाम संसार में ताते मुक्ति न होय ।**
**आदि नाम जो गुप्त जप बूझे बिरला कोय।।**

परमात्मा या परमसत्ता के गुणवाचक नाम अनेक हैं लेकिन उसका जो निज स्वरूप या नाम है वह एक ही है और वह सभी के प्राणों में समाया हुआ है। इसलिए बौद्ध और जैन इसे महाप्राण कहते हैं।

गुरु नानक देव जी कहते हैं कि वह शब्द सभी जगह समाया हुआ है।

**शब्द ही धरती शब्द ही आकाश ।**
**शब्द ही शब्द भयो परकाश ।**
**सगली सृष्टि शब्द के पाछे ।**
**नानक शब्द घटाघट आछे।।**

सूक्ष्म दृष्टि से यदि देखा जाय और सभी धर्मशास्त्रों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी धर्मशास्त्र और उनके रहबर एक ही तत्व की ओर इंगित कर रहे हैं जो चैतन्य-स्वरूप है अति पवित्र है एवं मलरहित है और जो शब्द और प्रकाश के रूप में हर व्यक्ति के अंदर समाया हुआ है। वह नैसर्गिक है और मानव मात्र का आधार है। प्राणियों का प्राण है। जो सद्गुरु या तत्वदर्शी के द्वारा उसे जानकर उसमें अपने ध्यान को लगाता है, वही उस परमसत्ता को प्राप्त कर सकता है। ऐसे महापुरुषों एवं तत्वदर्शियों का जो उस पुरातन, सनातन तत्वज्ञान का बोध कराते हैं, जिसे जानना मानव मात्र का ध्येय है, कभी बीज नाश नहीं होता। इसलिए यह ज्ञान की धारा सतत ऐसे महापुरुषों के द्वारा, ध्यान की दीक्षा के द्वारा इस संसार में जिज्ञासु और सरल हृदय के भक्तगण-में सदैव प्रवाहित रहती है। □

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jaipur

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

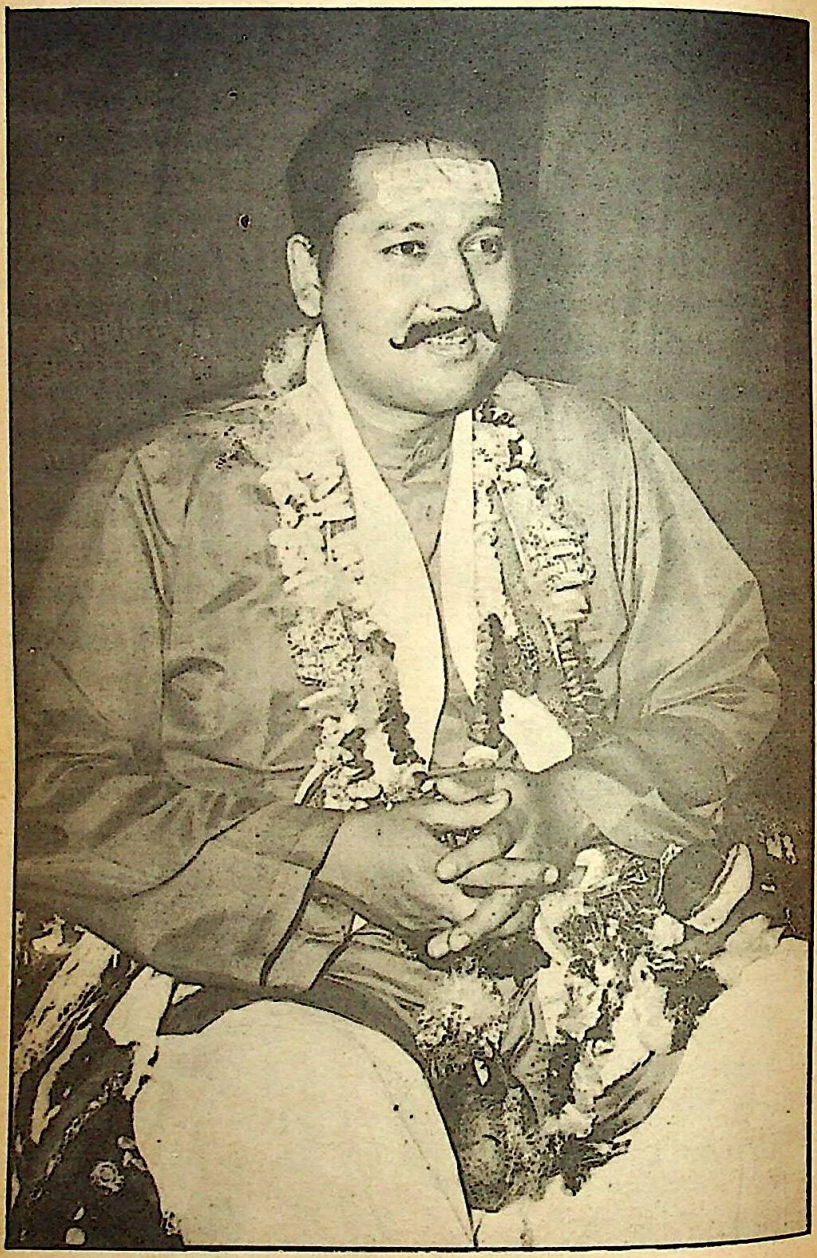

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# ध्यान है—आलोक का दर्शन

प्रेमनगर आश्रम हरिद्वार एक तपस्थली एवं ध्यानस्थली है। प्रेमनगर आश्रम के प्रांगण में मानव धर्म के प्रणेता एवं धर्मनायक श्री सतपाल जी महाराज ने गंगा दशहरा के शुभ अवसर पर एकत्रित साधकों एवं साधुओं को ध्यान के मर्म और महत्व पर एक सप्ताह के लिए अविरल वक्तव्य दिए जो एक ध्याता और साधक के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण और मार्गदर्शक हैं। यहां पर उनके अनुभवी और सारगर्भित प्रवचनों के आधार पर मूलभूत ध्यान संबंधी उनके विचार प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

ध्यान शिविर में आए हुए साधकगण को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा—ध्यान है आलोक का दर्शन, आत्मा का सतत जागरण, चैतन्य का प्रस्फुटन, मन का अंतरात्मा में केन्द्रीकरण। जो अपनी आत्मा में स्थित है, अपनी आत्मा में आनंदित है वही ध्यानस्थ है। भगवान कृष्ण अर्जुन को योग में स्थित होकर कर्म करने की प्रेरणा देते हैं और योग है चित्तवृत्ति का निरोध। चित्तवृत्ति का निरोध ध्यान के द्वारा ही संभव है। इसलिए सभी ऋषियों एवं संतों ने ध्यान की सहज स्थिति में रहकर ही लौकिक व्यवहार को किया है। वैसे तो ध्यान मौन की भाषा है, मन की शून्य अवस्था है। किसी संत ने कहा है—'मन मस्त हुआ फिर क्यों बोले'। ध्यान एक प्रयोग का विषय है, करने का विषय है, कथनी का नहीं है। लेकिन फिर भी अशब्द को शब्दों के द्वारा इंगित करने का प्रयत्न किया जाता है, भाषातीत के बारे में भाषा से समझाने का प्रयत्न किया जाता है। इसलिए उस आलोक की अनुभूति के सम्बन्ध में, उस परमचैतन्य के सम्बन्ध में जो ध्यान के द्वारा प्राप्त होता है तुम्हें समझाने का प्रयास किया जायेगा। यही धर्मशिक्षक या सद्गुरु का धर्म होता है। यद्यपि एक तत्वदर्शी को जो अपने में ही लवलीन है, परिपूर्ण है, कुछ कहने या करने की जरूरत नहीं है लेकिन ध्यान से जो स्वभाव प्रगट होता है वह करुणा और प्रेम को लिए हुए होता है और सहज ही ध्यान के साथ साथ जैसे जैसे चैतन्य का प्रकाश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



बढ़ता है वैसे ही व्यक्ति में लोक-कल्याण का भाव भी जागृत होने लगता है। कहा जाता है कि बुद्ध के लिए जब ध्यान और तप के बल पर मोक्ष के द्वार खुले तो उन्होंने भीतर प्रवेश करने से इनकार कर दिया और कहा कि संसार में इतना दुख है। जब तक दूसरे लोग दुखी हैं तब तक मोक्ष मेरे लिए सार्थक नहीं है। ध्यान के द्वारा व्यक्तित्व में जो रूपांतरण होता है, उसका एक विशेष लक्षण है परोपकार की भावना। जो साधक या साधु इस परोपकार की भावना से प्रेरित नहीं है वह ध्यान की गहराई में नहीं जा पाता। इसलिए श्री हंस जी महाराज कहते थे कि—'भलाई कर चलो जग में तुम्हारा भी भला होगा'। लेकिन जब तक तुम अपने ध्यान की संपदा को नहीं बढ़ाओगे तो तुम बांटोगे क्या? तुम्हारी वाणी और कर्म प्रभावशून्य होता है यदि वह ध्यान की गहराई और अनुभव से नहीं निकला हुआ है। इसलिए अपनी ध्यान की संपदा को बढ़ाने के लिए तुम इस शिविर में एकत्रित हुए हो।

युधिष्ठिर जब अपने भाइयों के साथ स्वर्गारोहण कर रहे थे तो कहते हैं कि उनके दूसरे भाई जिन्होंने पीछे मुड़कर देखा वे बर्फ में गलकर मर गए और युधिष्ठिर ही अपने लक्ष्य को बेधते हुए स्वर्ग के द्वार तक पहुंचे। उनको लेने के लिए दैवी विमान आया। लेकिन अंत तक उनके एक कुत्ते ने उनका साथ निभाया और वह भी स्वर्गारोहण की चढ़ाई में युधिष्ठिर के साथ-साथ चलता रहा। जब युधिष्ठिर महाराज से रथ पर बैठने की प्रार्थना की गई और कुत्ते को नहीं बैठने दिया गया तो युधिष्ठिर ने रथ में बैठने से इनकार कर दिया। यह रूपक बड़ा ही सारगर्भित अर्थ लिए हुए है। पहली बात तो यह है कि एक साधक अथवा ध्याता को अपनी दृष्टि सैदव एकाग्रचित्त होकर अपने ध्येय पर स्थित रखनी चाहिए। तभी वह अपने लक्ष्य अथवा ध्येय को प्राप्त कर सकता है। जो भी इधर-उधर या पीछे देखता है, विचलित होता है वह ध्यान के अंतिम बिन्दु अर्थात् समाधि को प्राप्त नहीं कर पाता। दूसरी बात इससे यह स्पष्ट होती है कि जिसमें लेशमात्र भी स्वार्थ या आकांक्षा है और जो केवल अपने ही हित की सोचता है, जिसके हृदय में दूसरों के लिए करुणा और मैत्रीभाव नहीं है वह भी ध्यान में सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। जो साधक इस इच्छा से ध्यान करता है कि उसकी समाधि लग जाय या उसको सिद्धियां प्राप्त हो जायँ तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



वह भी ध्यान में परिपक्व नहीं हो सकता क्योंकि उसकी इच्छा ही ध्यान में बाधा है। इसीलिए ध्यान है इच्छारहित हो जाना, अनासक्त भाव को प्राप्त कर लेना और जो सहज में घटित हो उसे स्वीकार करना। ध्यान है बिना प्रयास के प्रयास। कृष्णमूर्त्ति ने ध्यान को एफर्टलैस अवेयरनेस (Effortless awareness) कहा है–प्रयासरहित जागरूकता और बोधिता। ध्यान एक सर्वोत्तम रिलेक्सेसन है, शिथिलीकरण है मन का, शरीर का। जब मन और शरीर की हलचल शांत हो जाय तभी आत्मा के संगीत के स्वर ब्रह्मनाद के रूप में सुनाई देते हैं। ध्यान के लिए किसी गुफा में जाने की जरूरत नहीं। ध्यान के लिए लम्बे एकांत की भी जरूरत नहीं है। ध्यान सद्गुरु के सान्निध्य में सहज में ही प्रस्फुटित होता है।

चार प्रकार की मुक्ति हमारे शास्त्रों में बताई गई है–सालोक्य, सामीप्य सारूप्य और सायुज्य। मानव शरीर का प्राप्त होना ही जीव पर भगवान की एक बहुत बड़ी कृपा है। आम लोग भले ही इसे भोगों में समाप्त कर दें पर जिनमें विवेक जागृत है वे तो इसे साधना में ही लगातें हैं। सद्गुरु के दरबार में ध्यान-साधना का एक सहज वातावरण प्राप्त होता है। आप लोग इस प्रेमनगर आश्रम में ठहरे हुए हैं। यहां स्वयं सिद्धपुरुष श्री हंस जी महाराज ने ध्यान किया और जिज्ञासुओं को सत्संग दिया। ऐसी पवित्र भूमि में तो साधक का मन सहज ही ध्यान में लगता है। यही सद्गुरु के दरबार की महिमा है कि जिसे तपस्वी और हठयोगी बड़े-बड़े प्रयास करने पर भी प्राप्त नहीं कर पाते वह उसे तत्वदर्शी के सान्निध्य में सहज में ही प्राप्त हो जाता है। इसलिए ध्यान के समय में तुम लोग ध्यान करना। ध्यान केवल आसन की मुद्रा में ही नहीं होता। बैठकर ध्यान करना, नियमबद्ध ध्यान करना एक साधक के लिए जरूरी है लेकिन ध्यान तो वही है जो हर काल में स्थित रहे। इसलिए प्रातःकाल और सायंकाल सब लोग सामूहिक रूप में बैठकर ध्यान करेंगे लेकिन इसके बाद भी तुम्हें ध्यान में स्थित रहना है। उठते, बैठते, सोते, जागते उस प्रभु के नाम में, जों प्राणों में समाया हुआ है उसके स्मरण में लगे रहना है। ध्यान की कुछ क्रियाएं हैं जो साधक को हर काल में करनी चाहिए। उससे मन अंतर्मुखी रहता है, बंधा रहता है और उत्पात नहीं करता। कुछ क्रियाएं ऐसी हैं जो एकांत में करनी चाहिएं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


बहुत से साधु और साधकों के मन में शंकाएं उठती रहती हैं। तर्क से शंकाओं का उन्मूलन संभव नहीं है। मैं तर्क के खिलाफ नहीं हूं। पूछने पर तो साधक को समझाना ही पड़ता है। लेकिन यह अनुभव की बात है कि जब जब मन ध्यान से हटता है, जब जब उसका नाम से संपर्क टूटता है तभी वह शंका करने लगता है। शंका है मन का उत्पात, मन का बुखार। जब शंका रूपी बुखार का तापमान (टैम्प्रेचर) बहुत ज्यादा बढ़ जाता है तो भयंकर विस्फोट होता है और साधक पथभ्रष्ट हो जाता है। साधु साधुता छोड़ देते हैं। इसलिए सतत ध्यान के द्वारा ही तुम इस मन को नियंत्रित कर सकते हो, और तो कोई उपाय शास्त्रों में बताया नहीं गया। ध्यान केवल निराकार परमात्मा के नाम में चित्त को लगाना ही नहीं है, अति सूक्ष्म होने के कारण कई बार स्थूल बुद्धि के साधकों के लिए यह कठिन हो जाता है। इसलिए सत्संग और सदगुरु के अनुशासन में बंधकर रहने से भी मन का नियंत्रण होता है। इसलिए इतिहास में ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि सतत सेवा में लीन साधक की अनायास ही प्रज्ञा जागृत हो जाती है और अंतर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है। जो स्थिति, योगीजन कई जन्मों तक भी योग अभ्यास से प्राप्त नहीं कर पाते सदगुरु के दरबार में एक सेवक जो निष्कपट व सरल भाव से सेवा में रत है और मन से नाम स्मरण करता रहता है, वह उस आत्म-गति को प्राप्त कर लता है। इसीलिए ध्यान निठल्लापन नहीं है। कुछ लोग ध्यान का स्वांग रचते हैं और निद्रा लेते रहते हैं। ध्यान चेतना की जागरूकता को विकसित करता है और जब आदमी ध्यान में पूरा जाग जाता है तो वह सोते हुए भी ध्यान कर सकता है। इंद्रियां सो रही हैं, शरीर विश्राम कर रहा है लेकिन चेतना की लौ सतत जलती रहती है। इसलिए तो गुरु नानकदेव् जी ने कहा कि—

**ऊठत बैठत सोवत जागत नाम। कह नानक सद भये तिनके काम।।**

ऐसी कौन सी ध्यान की प्रक्रिया है जो हम सोते हुए भी कर सकते हैं? यही ध्यान का मर्म है जिसे आम लोग समझते नहीं। इस भेद को जो बताता है वही तत्त्वदर्शी पुरुष कहलाता है।

ध्यान में सिद्धि आज तक संसार में गुरु कृपा के बिना संभव नहीं हुई है। ध्यान में अपना संकल्प और निष्ठा तो चाहिए ही लेकिन ध्यान की प्राथमिक अवस्थाओं के पश्चात् गुरु ही सहायक होते हैं और वे ही मोक्ष के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



दाता होते हैं। गुरु की महिमा हमारे ऋषियों ने, संतों ने इसलिए गाई कि गुरु साधक की सुरति को स्थूल पिण्ड से निकालकर सूक्ष्म हृदयाकाश में स्थित करने में सक्षम है। अगर एक राज्य में किसी व्यक्ति की पहचान राजा से हो और वह राजा उस पर प्रसन्न हो तो फिर चोर और डाकू उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। ऐसे ही जिस साधक पर और शिष्य पर गुरु का आशीर्वाद होता है, गुरु की प्रसन्नता होती है उसे माया के चोर और शैतान की शक्तियां ध्यान से नहीं भटका सकतीं। इसलिए सिद्ध और साधक, शिष्य और गुरु के श्रद्धा, प्रेम और विश्वास के आदान-प्रदान में ध्यान का पौधा विकसित होने लगता है। ध्यान की मुख्य रूप से चार ही प्रक्रियाएं हैं जिन्हें सभी संतों ने, भक्तों ने और ऋषियों ने अपनाया। वे सनातन हैं, नैसर्गिक हैं, मानव मात्र के लिए एक हैं, अंतर्हृदय में हैं। जो साधक इन ध्यान की क्रियाओं में शास्त्र रीति से ब्रह्मनिष्ठ गुरु के द्वारा दीक्षित होता है और जिसकी इस ज्ञान में श्रद्धा और आस्था बनी रहती है वही भवसागर पार कर पाता है बाकी तो सभी माया के चबैने बनकर जन्म-मरण के चक्र में घूमते रहते हैं। संत ब्रह्मानंद जी ने ध्यान के मर्म को बड़े सुन्दर ढंग से एक भजन के द्वारा प्रदर्शित किया है–

**अचरज देखा भारी साधो अचरज देखा भारी रे।।**
**गगन बीच अमृत का कुआं झरे सदा सुखकारी रे ।**
**पंगु पुरुष चढ़े बिन सीढ़ी पीवे भर भर झारी रे।।**
**बिना बजाये निशिदिन बाजें घंटा शंख नगारी रे ।**
**बहरा सुन सुन मस्त होत है तन की खबर बिसारी रे।।**
**बिना भूमि के महल बना है तामें जोत उजारी रे ।**
**अंधा देख देख सुख पावे बात बतावे सारी रे।।**
**जीता मरकर के फिर जीवे बिन भोजन बलधारी रे ।**
**ब्रह्मानंद संत जन बिरला समझे बात हमारी रे।।**

संत ब्रह्मानंद जी का यह भजन रहस्यमय सा लगता है, आश्चर्यजनक है। संतों की वाणी हमेशा अटपटी सी होती है। इस जमीन पर तो कुएं खोदे जा सकते हैं किन्तु आकाश में कुएं की कल्पना किसी मस्त मौला की ही हो सकती है। वैसे संत होते भी मस्तमौला हैं। लेकिन वे शराब या नशीले पदार्थों का नशा नहीं करते वे तो उस चैतन्य के अमृत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


को पीकर सदैव मस्त रहते हैं, सरूर में रहते हैं, नशे में रहते हैं। गुरु नानकदेव जी ने कहा है—**नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात।** 'आकाश में कुआं' कवि भी ऐसी कल्पना नहीं कर सकता लेकिन ब्रह्मानन्द जी की यह कल्पना नहीं है, यह अध्यात्म का एक स्वानुभूत सत्य है, निज अनुभूति है। सच तो यह है कि पदार्थ के जो कुछ भी विपरीत है, उल्टा है वही अध्यात्म का सत्य है। इस संसार की जड़ें पृथ्वी में हैं। इसके कुएं पृथ्वी में खोदे जाते हैं और तब व्यक्ति अपनी प्यास को बुझाता है लेकिन अध्यात्म की जड़ें आकाश में हैं, मस्तिष्क में हैं और वहीं अध्यात्म का अमृत रिम-झिम बरसता है। पंगु व्यक्ति अर्थात् इंद्रिय-रहित व्यक्ति ऊपर चढ़कर उस अमृत का पान करता है। आज वैज्ञानिकों ने भी यह बात सिद्ध कर दी है कि हमारे मस्तिष्क में एक विशेष प्रकार का संजीवनी-तत्व है, तरल तत्व है जो पिट्यूटरी ग्लैण्ड्स के द्वारा निकलता रहता है जिसे योगियों ने सहस्रार चक्र कहा। जब ध्यान के माध्यम के द्वारा एक साधक अपने स्थूल शरीर से संपर्क तोड़कर अर्थात् अपनी चित्तवृत्ति को स्थूल शरीर से हटाकर ध्यान के सोपान से उस चेतना के केन्द्र में पहुंचता है तो वहां अमृत का पान करता है और उसकी सब प्रकार की प्यास बुझ जाती है, उसकी वासना समाप्त हो जाती है। क्राइस्ट ने भी इस अमृत को लिविंग वाटर कहा है जो कि मानव के अंदर है। जब क्राइस्ट ने समेरिया की एक स्त्री से पानी के लिए कहा तो उस स्त्री ने कहा कि समेरिया के रहने वालों का यहूदियों के साथ कोई संबंध नहीं है इसलिए तुम मुझ से पानी क्यों मांग रहे हो? तो ईसा ने कहा—जो पानी तुम मुझे पिलाओगी इससे तो मेरी क्षणिक प्यास बुझेगी और फिर मुझे प्यास लग जाएगी लेकिन मैं तुम्हें ऐसा पानी पिलाऊँगा जो तुम्हारी प्यास को सदैव के लिए बुझा देगा और यह वह अमृत है या लिविंग वाटर है जिसका झरना हमारे अंदर बह रहा है। इसलिए ध्यान के द्वारा और खेचरी मुद्रा के द्वारा योगी व साधकजन इस अमृत का पान करते हैं। खेचरी मुद्रा को ध्यानियों की मां कहा गया है। जिसकी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जाती है उस पर विष का भी प्रभाव नहीं पड़ता। यह पहला आश्चर्य है जो ब्रह्मानंद ने देखा, जिसकी उन्होंने अनुभूति की। देखना ही तो ध्यान है। इसलिए जैनियों ने इस ध्यान को प्रेक्ष्या-ध्यान कहा। बौद्धों ने उसे विपक्षणा कहा। ध्यान है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



देखना लेकिन इन बाहरी आंखों से नहीं, अंतरदृष्टि से देखना, तीसरे नेत्र से देखना। संत ब्रह्मानंद जी कहते हैं कि एक अजूबा और देखा कि एक बहरा व्यक्ति घंटा और शंख की मधुर ध्वनि और संगीत सुनकर मस्त हो रहा है और इतना ध्यान में लवलीन हो गया कि उसे अपने शरीर की भी सुधबुध नहीं रहती। बुद्ध ने भी इसी विचित्र भाषा में बात की है। वे ध्यान को गरजते हुए बादलों का मौन कहते हैं। ब्रह्मानन्द जी कहते हैं कि व्यक्ति बहरा है। जो कान से बहरा है वह सुनेगा क्या? लेकिन ब्रह्मानन्द जी का बहरा सुनता है और घंटा, शंख और बांसुरी की मधुर ध्वनि को अपने ही भीतर सुनता है। उसमें वह इतना लवलीन हो जाता है कि उसे अपने शरीर की सुधबुध नहीं रहती। संतों ने इस मन को ही मंदिर कहा है। इसी चेतन मंदिर में उस चैतन्य का प्रकाश और संगीत सतत गुंजायमान हो रहा है। वह चैतन्यस्वरूप-स्वयंभू मानव के मन-मंदिर में विराजमान है और दिन-रात उसकी आरती उतारी जा रही है। घंटे और शंख बज रहे हैं। एक ध्याता बिना-बाहरी वाद्य यंत्र के, जो अपने आप चेतना से नैसर्गिक ध्वनि प्रस्फुटित हो रही है उसे सुनकर मस्त हो जाता है। इसे अनहद नाद कहते हैं। ऐसे ही आकाश में बिना किसी आधार के, बिना भूमि के एक महल बना हुआ है, एक दिव्य महल जिसमें चेतना की सतत ज्योति, परम प्रकाश, इलाही नूर, चाँदना आलोकित हो रहा है। अजूबा यह है कि उसे एक अंधा देख रहा है। अंधा हम उस व्यक्ति को कहते हैं जिसकी बाहर की आंखें बंद हो जाएं। ध्यान में व्यक्ति इन चर्म नेत्रों को बंद कर लेता है और अंतरात्मा से, अंतरदृष्टि से उस चेतन-ज्योति को देखता है। उसके प्रकाश से आलोकित हो जाता है। बाहरी मंदिर प्रतीक हैं मन-मंदिर के। मन-मंदिर चेतन है, जिसमें स्वयं चैतन्य-स्वरूप सर्वशक्तिमान परमात्मा आसीन है। जो चित्त के द्वारा उसकी पूजा, आराधना अर्चना व ध्यान करता है वही साधक है, भक्त है, ध्याता है। ऐसे चैतन्य के प्रकाश को और अजूबे को देखने के लिए एक ध्याता को मरना पड़ता है। यह अजूबा मरकर ही देखा जा सकता है। जो वासनाओं में जी रहा है, जो जगत् से संबंधित है व इस अजूबे को नहीं देख पाता। स्वामी रामतीर्थ ने ठीक कहा था—परमात्मा न मिस्टर है, न मिसेज है बल्कि एक मिस्ट्री है। वह परमतत्व-परमात्मा रहस्यों का रहस्य है और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


उसका उद्घाटन ध्यान के द्वारा ही अंतरात्मा में होता है।

ध्यान है आत्मा का भोजन, ध्यान है आत्मा की मुक्ति का मार्ग। साधारणतः व्यक्ति की प्रवृत्तियां और विचार बिखरे और बर्हिमुखी रहते हैं। इंद्रियों के द्वार खुले होने के कारण व्यक्ति का मन विषयों में भ्रमता अथवा विचरण करता रहता है जिसके कारण व्यक्ति को विश्राम नहीं मिलता। बाहरी विषयों के संस्कार मन में अंकित होते रहते हैं जो स्मृति बनकर उसे चंचल बनाए रहते हैं। अपने केन्द्र से हटा हुआ मन अपने संतुलन को खो बैठता है और जिस व्यक्ति में संतुलन नहीं है उसका कोई भी कर्म और चिंतन सही नहीं हो सकता। ध्यान है चित्त को संतुलित करना और उसे अपने केन्द्र में स्थित रखना। ध्यान के द्वारा ही हम अपनी आत्मा में, प्राण में स्थित हो सकते हैं जो हमारे व्यक्तित्व का केन्द्र-बिन्दु है। इसीलिए ईसामसीह ने कहा कि यदि तुम एकाग्रचित्त हो, तुम्हारी अंतुर्दृष्टि केन्द्रित है तो तुम प्रकाशमय हो सकते हो और परमात्मा के साम्राज्य को अपने अंदर ही प्राप्त कर सकते हो। ध्यान है परमात्मा के साम्राज्य का द्वार। यदि सूर्य की किरणें बिखरी हुई हों तो वह कागज को जला नहीं सकतीं लेकिन अगर उन्हें एक खुर्दबीन के शीशे के द्वारा केन्द्रित कर दिया जाय तो उससे अग्नि प्रगट हो जाती है। ऐसे ही जब ध्यान के द्वारा चित्त की वृत्तियां घनीभूत होती हैं, एकाग्र होती हैं तो चैतन्य की शक्ति का विस्फोट होता है जिसे आत्मसाक्षात्कार कहते हैं। चलायमान मन तेज हवा की तरह होता है जैसे जब आंधी तूफान आता है तो हवा धूल के अनेक कणों को अपने साथ उड़ाकर ले जाती है जिससे इसकी शुद्धता समाप्त हो जाती है लेकिन जैसे ही आंधी शांत होती है और वायु सहज स्थिति में आती है तो सब धूल के कण नीचे गिर जाते हैं और वायु फिर शुद्ध और स्वच्छ हो जाती है, यही प्रक्रिया ध्यान की है। बहिर्मुखी चेतना ही मन है। जब चेतना बहिर्मुखी हो जातीं है तो माया के अनेक परमाणु उसके साथ मिल जाते हैं और वह चलायमान हो जाती है। ध्यान के द्वारा जब चित्त को एकाग्र किया जाता है, चेतना अपनी सहज गति को प्राप्त करती है तो मायावी अणु-परमाणु अपने आप झड़ जाते हैं और चेतना अपने शुद्ध और बुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेती है।

ध्यान की प्रक्रिया में पहला परम आवश्यक कदम है उस व्याप्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



शक्ति का जो इंद्रियग्राह्य नहीं है, जिसे अलग-अलग धर्मशास्त्रों में चेतन-तत्त्व, ब्रह्म-तत्त्व या आत्म-तत्त्व कहा गया है, उसका बोध प्राप्त करना, ज्ञान प्राप्त करना, क्योंकि वही हमारा ध्येय है और जब तक ध्येय का ज्ञान नहीं होगा तब तक हम किस प्रकार से अपनी चेतना अथवा मन को उसमें जोड़ेंगे? ध्येय के जाने बिना ध्यान संभव नहीं है। इस ध्येय का बोध शास्त्रों के अध्ययन से या पठन-पाठन से नहीं होता। वह तो किसी तत्त्वदर्शी सद्गुरु के द्वारा ही संभव है। इस संसार में केवल ब्रह्मतत्त्व ही पूर्ण है, विशुद्ध है। सत्-चित्-आनंद उस परम तत्त्व के लक्षण हैं। इसलिए जब तक हम अपनी अंतरात्मा को ध्यान के द्वारा उसमें नहीं लगाएंगे तब तक अंतःकरण की मलिनता समाप्त नहीं हो सकती, संकल्प-विकल्प एवं चित्त की वृत्तियां शांत नहीं हो सकतीं। इसलिए ब्रह्मतत्त्व का बोध अर्थात् ध्येय का बोध होना परमावश्यक है और यह ध्यान की प्रक्रिया में पहला कदम है। आत्मतत्त्व के बोध के बाद ही ध्येय या लक्ष्य की प्राप्ति होती है। बाहरी वस्तुओं को ध्येय बनाकर कोई भी अंतरात्मा के ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकता। चांदमारी में भी हम देखते हैं कि पहले सिपाही को वह ध्येय या लक्ष्य बताया जाता है जिस पर वह अपने निशाने को मारे और फिर सतत अभ्यास और एकाग्रचित्त से वह उस लक्ष्य को बेधने में कामयाब हो जाता है। उपनिषदों में भी आता है—"प्रणवोधनुः शरोह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्य वेध्यते" बह्म को ध्येय बनाकर और प्रणव को कमान बनाकर आत्मा रूपी तीर के द्वारा उस ब्रह्मतत्त्व को बेधो। पर यह तभी संभव होगा जबकि पहले ध्येय अर्थात् लक्ष्य का बोध हो। ध्येय के बोध के बिना ध्यान निष्फल ही है। क्योंकि ध्येय के बिना मन का केन्द्रीकरण संभव नहीं है। यद्यपि ब्रह्मतत्त्व सर्वत्र व्याप्त है लेकिन फिर भी बोध न होने के कारण हम अपने मन को उसमें नहीं लगा पाते। जिस प्रकार से रेडियो की तरंगें सारे ही भूमण्डल पर व्याप्त हैं लेकिन साधन न होने के कारण हम उस आवाज को सुन नहीं पाते, ऐसे ही ब्रह्मतत्त्व व्याप्त होने पर भी उसके बोध के अभाव में एक ध्याता उसकी अनुभूति नहीं कर पाता। जिस प्रकार से रेडियो की तरंगों को पकड़ने के लिए किसी साधन अर्थात् ट्रांजिस्टर अथवा रेडियो का होना जरूरी है ऐसे ही ब्रह्मतत्त्व के बोध के लिए दिव्य-नेत्र रूपी साधन की और ध्यान की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



प्रक्रिया की आवश्यकता है जो हमें उस व्यापक तत्त्व के साथ जोड़ सके।

ध्येय के ज्ञान के बाद ध्यान की दूसरी प्रक्रिया उस ध्येय में लय होने की है जो केवलमात्र अभ्यास, वैराग्य और दृढ़ संकल्प से प्राप्त हो सकती है। 'ध्रुव' परमात्मा की प्राप्ति कर सका क्योंकि उसका दृढ़ संकल्प था। जिनका निश्चय दृढ़ नहीं है वह माया के बहाव को और प्रवाह को रोक नहीं पाते और ध्यान से हट जाते हैं। इसलिए ध्यान-साधना की दूसरी प्रक्रिया में सतत अभ्यास और जागरूकता की आवश्यकता है। जब एक ध्याता अपने अंदर उस चेतन स्वरूप परमात्मा के शब्द और ज्योति के बोध को प्राप्त कर लेता है तब अपने मन को या सुरति को हर तरफ से हटाकर उसी में केन्द्रित करता है। यह ध्यान की दूसरी प्रक्रिया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि मन बहुत सूक्ष्म है, चलायमान है और इसे आसानी से काबू नहीं किया जा सकता। संसार की वस्तु में तो यह क्षमता ही नहीं है कि वह मन को काबू कर सके। थोड़ी देर के लिए भले ही बाहरी वस्तु में मन बहल जाय लेकिन सूक्ष्म होने के कारण कोई भी बाहरी वस्तु इसे अपने में समा नहीं सकती। इसलिए मानव का मन सदैव अशांत रहता है। मन सूक्ष्म है इसलिए इसे किसी सूक्ष्मतम तत्त्व में ही लगाया जा सकता है। उसी तत्त्व को ब्रह्मतत्त्व या चेतनतत्त्व कहते हैं। इसलिए हमारे शास्त्रकार मन को उस आत्मतत्त्व में लगाने को ही ध्यान कहते हैं। पातंजलि महाराज ने भी "चित्तवृत्ति निरोधश्च योग:" कहा है। मन अपने में एक स्पंदन है जो पूर्ण में लीन होना चाहता है, पूर्णत्त्व को प्राप्त करने के लिए। लेकिन पूर्ण ब्रह्मतत्त्व का ज्ञान न होने के कारण बाहरी पदार्थों में भटकता है। सद्गुरु के द्वारा उस शब्द ब्रह्म के बोध के पश्चात् मन को उस आदि स्पंदन का ज्ञान हो जाता है जो सतत् और शाश्वत है। बार-बार मन को उसमें लगाने से मन अंतर्मुखी होने लगता है और उसका बाहर भागने का स्वभाव बदलने लगता है। वह अंतरात्मा में ही तृप्त होने लगता है और सीमाओं, कल्पनाओं और विकल्पों को पार करते हुए एकरस ब्रह्मतत्त्व में लय होने लगता है। वह द्वंद्वों से ऊपर उठकर उसी तरंग, उसी वेव लेन्थ को प्राप्त कर लेता है जो कि ब्रह्म ही है, अर्थात् निस्तरंग हो जाता है।

आजकल वैज्ञानिक जानते हैं कि हर पदार्थ की एक वेव लेन्थ होती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



है। यह सारा संसार ही प्रकंपनों और तरंगों का समूह है। कुछ तरंगें लम्बी हैं और कुछ छोटी हैं। छोटी तरंग का बड़ी तरंग से मिलने का स्वभाव है, लेकिन संसार में जितने भी पदार्थ हैं उनकी वेव लेन्थ मन की तरंग की लंबाई से छोटी है। इसलिए कोई भी बाह्य पदार्थ या साधन अपने में मन को समाहित नहीं कर सकता क्योंकि वह सबसे बड़ी तरंग है। इसलिए हमारे ऋषियों ने कहा कि मन अपने अस्तित्त्व को केवल आदि-स्पंदन या शब्द-ब्रह्म में खो करके ही पूर्ण तृप्ति और शांति का अनुभव करता है जिसे मुक्ति कहा गया है। शब्द-ब्रह्म या स्वयं-प्रकाशस्वरूप चैतन्य तत्त्व में मन को लगाने के अतिरिक्त और जितने भी ध्यान-साधन हैं वे बाह्य हैं और वे मन को एकाग्र नहीं कर पाएंगे। वे मन को नियंत्रण करने में सक्षम नहीं हैं क्योंकि मन की गति उनसे तेज है। ध्येय की प्राप्ति के लिए एकाग्रचित्त होकर जो साधना की जाती है उसे ही ध्यान कहा गया है। अध्यात्म-शास्त्र में ध्येय और ध्यान का आपस में घनिष्ट संबंध है और सच तो यह है कि जब तक ध्याता और ध्येय दो हैं तब तक वह ध्यान, साधन कहलाता है और जब ध्याता, ध्येय और ध्यान एक हो जाते हैं, लयबद्ध हो जाते हैं तब समाधि घटित होती है। लेकिन इस तुरियावस्था को प्राप्त करना आसान काम नहीं है, क्योंकि इसमें मूलाधार से प्राणशक्ति को ऊर्ध्वमुखी बनाकर सुषुम्ना के माध्यम से सहस्रार में प्रतिष्ठित करना होता है। लेकिन प्रकृतिजन्य स्वभाव और गुणों के वशीभूत हुई चेतना मायावी कशिश के कारण बार-बार ध्यान से हट जाती है। जब तक मल विक्षेप और आवरण समाप्त नहीं होते तब तक शुद्ध चैतन्यस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो पाती और यह सतत भजन-अभ्यास, सत्संग और निष्काम सेवा से ही संभव है।

आज धर्म के बारे में बड़ी-बड़ी व्याख्याएं तो लोग करते हैं परंतु वास्तव में "धर्म" है क्या यह नहीं जानते। "धर्म" शब्द धृ धातु से बना है जिसका अर्थ धारण करना है, अपनाना है। जब-जब भी महापुरुष लोग इस संसार में आए, उन्होंने अपने समय में लोगों को जो धर्म का ज्ञान प्रदान किया, वह ज्ञान पुस्तकीय ज्ञान नहीं था, बल्कि आत्मा का, रूह का, शक्ति का, (spirit) का ज्ञान था। आत्मज्ञान था और उस आत्मज्ञान को जब व्यक्तियों ने अपने हृदय में धारण किया, अपने हृदय में उसकी अनुभूति की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



तो वह धर्म बन गया। अतः आत्मज्ञान को प्राप्त करना और आत्मा की अनुभूति ही धर्म की वास्तविक आधारशिला है, धर्म का शुद्ध स्वरूप है।

जितने भी महापुरुष इस संसार में हुए, जिनके नाम पर आज अनेक संप्रदाय चल रहे हैं, उन सभी महापुरुषों ने उस परम-चेतना की, आत्मा की अनुभूति को अपने जीवन में प्राप्त किया था और उस समय की भाषा और परंपरा के अनुसार उसका प्रचार-प्रसार किया था। पर धीरे-धीरे वह अनुभूति लुप्त हो गई क्योंकि वह आत्मानुभूति ज्ञानियों के, भक्तों के हृदय में जीवित रहती है, पुस्तकों में नहीं। जिस प्रकार भौतिक शिक्षा, शिक्षकों के मुंह के द्वारा जीवित रहती है इसी प्रकार यह आत्मज्ञान की विद्या भक्तों के हृदय में जीवित रहती है। भक्त जब उसका चिंतन, भजन-साधन करना, उसका प्रचार करना छोड़ देते हैं तो वह आत्मज्ञान प्रचलित नहीं रहता और लुप्त हो जाता है। इस प्रकार जब वह तत्त्वज्ञान लुप्त हो गया तो हम अनुभव शून्य हो गए, धर्म के अंदर प्राण देने वाला जो आत्मज्ञान था उससे विहीन हो गए और तब केवलमात्र हम अपनी-अपनी भाषा, परंपराएं और धार्मिक पुस्तकों तक सीमित रह गए। धर्म-संप्रदायों के रूप में हमने अपने आप को सीमित कर लिया, हम आत्मारूपी उस एकत्त्व के धागे को भूल गए जो कि सभी धर्मों का सार तत्त्व है, जहां जाकर सारे धर्म एक हो जाते हैं। आत्मपूजोपनिषद् में ध्यान की बड़ी मार्मिक परिभाषा दी गई है—"ॐ तस्य निश्चलं ध्यानम्।" उस आत्मा का निरंतर चिंतन ही ध्यान है। □

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# ध्यान की धारा एवं धर्म परंपराएं

पुरातन काल से भारत में जैसे गंगा की धारा बह रही है ऐसे ही ध्यान की धारा भी बह रही है। इस ध्यान की धारा को जीवंत रखा है सिद्धों और साधकों ने, गुरु और शिष्यों ने। इस धारा का संप्रेषण सदैव एक चेतन व्यक्ति से दूसरे चेतन व्यक्ति को होता है। जैसे एक जलती मोमबत्ती अनेक मोबत्तियों को जला सकती है ऐसे ही एक सिद्ध पुरुष अनेक जिज्ञासुओं में इस ध्यान की धारा को प्रवाहित कर सकता है और करता है। यह अलौकिक धारा है, गुप्त धारा है, चेतना का नैसर्गिक प्रवाह है जिसे केवल एक तत्त्वदर्शी ही जिज्ञासु के हृदय में उद्घाटित कर सकते हैं। यह धारा कभी लुप्त और कभी प्रगट हो जाती है लेकिन यह सदैव जीवंत रहती है क्योंकि अनादि और अनश्वर है। इस ज्ञान की धारा में अनेक जिज्ञासु स्नान कर मुक्त हो गए हैं, हो रहे हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे। यह है चैतन्य का प्रवाह जो अनादि है, अनंत है। जब जब व्यक्ति इस मिथ्या जगत् से ऊब जाता है और बाहरी वस्तुओं के प्रति अनुत्सुक होता है तब तब व्यक्ति इस ध्यान की धारा के द्वारा अंतर्मुख होता है और गूढ़ अंतरसत्ता की खोजबीन करने लगता है। यह कार्य पृथ्वी के चाहे जिस खण्ड में हो और जिस समय भी हो, अपने आरंभ, विकास और परिणिति में कुछ न कुछ समान नियमों का अनुसरण अवश्य करता है और उसमें अनेक समानताएं होती हैं। बाहरी परिस्थितियां भिन्न होती हैं, समाज भिन्न होता है, देश काल भिन्न होते हैं परंतु मूल अनुभव एक होता है। इसलिए आध्यात्मिक अनुभव का या गूढ़वाद का कोई समाज नहीं होता, भूगोल नहीं होता, इतिहास नहीं होता और विशिष्ट संस्कृति नहीं होती। इसीलिए सभी काल के, सभी देश के ध्यानी संतों, ऋषियों, पैगम्बरों और तीर्थंकरों की भाषा एक सी है जो प्रेम से ओत-प्रोत है और अनुभवगम्य है। सबकी मस्ती एक अनोखी मस्ती है, सबका दर्शन मानवता का दर्शन है। सभी आंतरिक संपदा में मस्त दिखाई दे रहे हैं। ध्यान की धारा एक होते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



हुए भी इस भाषा के जगत् में सापेक्ष हो गई है और अलग अलग नामों से जानी जाती है। लेकिन यदि हम गहराई में जाएं तो उनमें एक समरसता, एकता मिलती है जिसे ऋषियों ने ध्यानयोग कहा, गीता में राजविद्या कहा गया, क्राइस्ट ने 'द वे' कहा, बुद्ध ने मध्य मार्ग या विपक्षना कहा और महावीर ने प्रेक्षा कहा। ध्यान विधियों के नाम भले ही अलग-अलग हों पर तत्त्व से वे एक हैं।

वैदिक परंपरा सबसे पुरातन परंपरा है। वैदिक ऋषियों ने ध्यान की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वेदों का मुख्य मंत्र है गायत्री मंत्र और गायत्री मंत्र है ध्यान का मंत्र। इसमें ऋषियों ने उस चेतन तत्त्व की अभिव्यक्ति को दो रूपों में बताया है—प्रणव एवं ज्योति। ऋषि प्रार्थना करता है कि ज्योतिस्वरूप परमसत्ता जो सविता के समान प्रकाशमान है, का ध्यान करता हूं, हे परमात्मा, मेरी सब वृत्तियों को और तरफ से हटाकर इस प्रकाश में केन्द्रित करो। प्रणव चैतन्य का दूसरा व्यक्त रूप है। चैतन्य की धारा का प्रवाह प्राणों के द्वारा ही हमारे भीतर हो रहा है। जो ध्याता प्रणव में अपने आप को केन्द्रित करता है वही ध्यान की प्रक्रिया को जानता है। इसे ही वेदों में और उपनिषदों में परातत्त्व या पराविद्या कहा गया है। इसी ध्यान विधि से ऋषियों को ब्रह्म का बोध हुआ और इसी ध्यान प्रणाली का उन्होंने शिष्यों को बोध करवाया। प्रणव में समाए हुए उस चैतन्य की तरंग को, स्पंदन को ही उपनिषदों व वेदों में शब्द-ब्रह्म कहा गया है। अव्यक्त होते हुए भी जब चेतन सत्ता शरीर में व्यक्त होती है तो वह प्रणव के रूप में ही अनुभव में आती है। प्राण ही उस अव्यक्त में और व्यक्त में कड़ी का कार्य करता है। इसलिए प्राण ही वह सोपान है जिसके द्वारा एक साधक चैतन्य को प्राप्त कर सकता है। **"भर्गो देवस्य धीमहि"** उस परमदेव प्रकाशमान चैतन्यसत्ता का ध्यान ही वेदों और उपनिषदों के द्वारा प्रतिपादित किया गया है। इसी प्रकार से यदि हम गीता को लें तो स्वयं भगवान कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं—मैं तुम्हें एक ऐसी विद्या को जनाऊंगा जो सब विद्याओं की राजा है, परम गुह्य है, परम पवित्र है और करने में अति सुगम है जिसके जानने से जीव पाप से छूट जाता है। उस प्राण विद्या को ही भगवान ने अर्जुन को जनाया और अध्याय ६ के श्लोक १३ में ध्यान विधि को जनाया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ।।
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ।।

काया-शिर और गर्दन को सीधा रखकर अन्य ओर न देखते हुए नासिका के अग्रभाग पर ध्यान लगाना चाहिए। संसार के लोग नासिका का अग्रभाग नासिका के अंतिम सिरे को समझते हैं किन्तु अग्र का अर्थ है जहां से शुरू हो। जहां पर लोग चंदन की बिंदी लगाते हैं उसी को अग्र भाग कहा है। आंखों को बंद करके अंदर के प्रकाश का ध्यान करना है जिसका पूरा ज्ञान सद्गुरु के द्वारा होता है। ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित होता हुआ भय-रहित अंतर आत्मा से शांत चित्त होकर परमात्मा के स्वरूप का ध्यान करना चाहिए।

भगवान कृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि तू मेरे चैतन्य स्वरूप को इन चर्म चक्षुओं से नहीं देख सकता। मेरा यह स्थूल शरीर तो जड़ प्रकृति के तत्त्वों से बना हुआ है लेकिन यह मेरा वास्तविक स्वरूप नहीं है। मेरा वास्तविक स्वरूप प्रकाश-स्वरूप है, ज्योतिर्मय है, जहां न चंद्रमा की रोशनी है, न अग्नि की रोशनी है, न सूर्य की रोशनी है। वही मेरा परमधाम है उसी को ध्यान के द्वारा जब साधक प्राप्त कर लेता है तो वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है और जन्म-मरण के चक्कर में नहीं आता। मेरे उस स्वरूप को देखने के लिए मैं तुझे दिव्य नेत्र देता हूं और दिव्य नेत्र के द्वारा ही तू मेरे उस विभूतिमान स्वरूप को देखने में सक्षम है।

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्त्तंते तद्धाम परमं मम ।।

भारतीय धर्मऔर दर्शन में दो परंपराएं देखने को मिलती हैं—एक है ईश्वरवादी परंपरा और दूसरी है अनीश्वरवादी परंपरा। वैदिक परंपरा और उससे जुड़ी हुई वैष्णव और शैव परंपराएं आस्तिकवादी हैं, ईश्वरवादी हैं। इन परंपराओं के अनुकूल पारब्रह्म परमेश्वर ही इस जगत् का आधार है, नियंता है, रचयिता है। वह प्रकाशस्वरूप है, चैतन्यस्वरूप है और आनंदस्वरूप है। जीव उसके स्वरूप को सद्गुरु के द्वारा जानकर उसका ध्यान करता है और उसमें लवलीन हो जाता है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



तभी वह मोक्ष के आनंद को प्राप्त करता है। परमसत्ता जिसे ब्रह्म या परमेश्वर कहा गया है वह कण कण में समाया हुआ है लेकिन फिर भी एक प्राणी या साधक उसका ध्यान और सुमिरण अपने अंदर चित्त के द्वारा कर सकता है। यह परमसत्ता मुख्य रूप से चार रूपों से हमारे अंदर विद्यमान है। एक प्राण के प्रवाह के रूप में, प्रकाश के रूप में, अनहद के रूप में और अमृत के रूप में। हमारे शरीर में अनेक केन्द्र हैं जहां यह चेतन की धारा प्रगट होती है। यदि उन केन्द्र बिन्दुओं पर अपने ध्यान को केन्द्रित करें तो वह शक्ति जो सुषुप्त अवस्था में हमारे भीतर है प्रगट हो जाती है जिससे साधक जड़ चेतन की ग्रंथि को भेदकर प्रकृतिजन्य गुणों से मुक्त हो जाता है और अपने निज स्वरूप में स्थित हो जाता है। संतों ने भी इसी परंपरा को मान्यता दी और यह ध्यान परंपरा गुरु शिष्य के रूप में सदैव जीवंत रहती है।

जैन और बुद्ध परंपराएं अनीश्वरवादी हैं। ईश्वर के बारे में मौन हैं। वे उसे सृष्टि का रचयिता या नियंता नहीं मानते हैं लेकिन वे आत्म तत्त्व को या चेतन तत्त्व को जड़ तत्त्व से पृथक एक स्वतंत्र तत्त्व मानती हैं। चेतन का जड़ से बंध होने के कारण चेतनतत्त्व में कुछ विजातीय तत्त्व या जड़ तत्त्वों का बंध हो जाता है जिसके कारण चेतन तत्त्व पृथक होते हुए भी वह जड़ और कर्म के सूक्ष्म परमाणुओं से ढक जाता है और आवृत्त हो जाती है जिससे उसकी सहज शक्ति, आनंद और मुक्तता समाप्त हो जाती है। ध्यान और तप के द्वारा इस कषाय (माया) के सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म परमाणुओं को जब संवर और निर्जरा के द्वारा समाप्त कर दिया जाता है तो आत्मा के ये बंध क्षीण हो जाते हैं और बंधरहित आत्मा में केवल-ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, आत्मा अपने सहज स्वरूप को प्राप्त कर आनंदित हो जाता है। दर्शन के धरातल पर वैदिक परंपरा और बुद्ध और जैन परंपराओं में कुछ अंतर हो लेकिन जब वैदिक परंपरा और बुद्ध और जैन परंपरा में हम ध्यान की धारा या ध्यान पद्धतियों का अध्ययन करते हैं तो उनमें केवल समानता ही नहीं मिलती बल्कि तात्विक रूप से वे बिल्कुल एक ही हैं। भारतीय समाज के अधिकांश लोग वैदिक परंपरा की ध्यान पद्धति से परिचित हैं लेकिन यह हमारा दुर्भाग्य है कि बुद्ध और जैन परंपरा में ध्यान की पद्धति के बारे में आम हिन्दू समाज को कोई विशेष जानकारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



नहीं है। इसलिए जैन और बुद्ध परंपरा में ध्यान पद्धति का निरूपण उनके साहित्य के आधार पर प्रस्तुत किया जा रहा है। भगवान बुद्ध की ध्यान प्रणाली ने न केवल भारत को ही पल्लवित किया बल्कि वह ध्यान की धारा बहती बहती एशिया के और देशों को भी सींचने लगी। इस ध्यान प्रणाली का जापान और चीन पर विशेष प्रभाव पड़ा।

## ध्यान की धारा एवं बुद्ध परंपरा

ध्यान बौद्ध धर्म का हृदय है। स्वयं भगवान बुद्ध एक ध्यानी महात्मा थे। उनके महापरिनिर्वाण के बाद लोग उनकी याद अधिकतर एक ध्यानी महात्मा के रूप में ही करते थे। अनवरत रूप से धर्मोपदेश करते हुए और लोगों के बीच में विचरण करते हुए भी भगवान् सदा ध्यान में स्थित रहते थे। ध्यान उनकी दिनचर्या का सबसे प्रमुख अंग था। कभी-कभी महीनों और सप्ताहों के लिए वे अपने शिष्यों से भी अलग हो जाते थे और उस समय उनसे कोई नहीं मिल सकता था। कौशल देश के इच्छानंगल ब्राह्मण-ग्राम में तथा वैशाली की महावन कूटागारशाला में बुद्ध ने इस प्रकार कुछ समय एकांत ध्यान में बिताया था। अनेक बार दर्शनार्थी आगन्तुकों को यह कहकर लौटा या ठहरा दिया जाता था कि भगवान् इस समय ध्यान में हैं, यह समय उनसे मिलने का नहीं है।" बुद्ध के जीवन का विश्लेषण करके देखा जाय तो पता लगता है कि उनका सब कुछ ध्यान ही है। बुद्ध और ध्यान अलग-अलग कर देखे ही नहीं जा सकते।

त्रिपिटक में बुद्ध के ध्यानी जीवन के अनेक चित्र विद्यमान हैं। कभी सूने घरों में, कभी वृक्ष-मूलों में, कभी नदी-तट पर, कभी पर्वत-पृष्ठ पर, कभी खुले मैदान में, कभी दोपहर की कड़ी गर्मी में तो कभी अति प्रातः ही, कभी सघन अंधकार वाली अर्द्धरात्रि में जब रिमझिम वर्षा भी हो रही हो, तो कभी चांदनी में, कभी किसी कुटिया में, तो कभी श्मशान में ही बुद्ध को ध्यानावस्था में बैठे या टहलते हुए चित्रित किया गया है। दो-एक बार के प्रसंग तो भुलाए ही नहीं जाते। एक बार मगध के अंधकविन्द नामक गांव के बाहर खुले मैदान में, काली अंधियारी रात में, बुद्ध को ध्यान में बैठे देखा गया, जबकि रिमझिम वर्षा भी हो रही थी। एक दूसरे अवसर पर बुद्ध भगवान के दर्शन मही (गण्डक) नदी के किनारे एक कुटिया में हुए जहां वे एक रात भर के लिए ठहरे थे। कुटिया खाली थी, उस पर छप्पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


नहीं था वर्षाकालीन बादल आकाश में छाये हुए थे। वह ध्यानस्थ बैठे थे। एक अन्य प्रसंग तो और भी रोमहर्षक है। भगवान् एक बार आतुमा के भूसागार (भूसे के घर) में ठहरे थे। इसी समय भयंकर वर्षा हुई और बादलों की गड़गड़ाहट के साथ बिजली कड़ककर उस भूसागार के द्वार के सामने बुद्ध के पास ही गिरी जिससे दो भाई किसान और उनके चार बैल मर गए। परन्तु बुद्ध ने न बादलों की घोर गड़गड़ाहट सुनी और न बिजली का कड़क कर गिरना ही देखा, जबकि भूसागर के द्वार के पास ही पूर्ण जाग्रत अवस्था में ध्यान में टहल रहे थे। इतनी ध्यान की एकाग्रता और मन को शांत रखने की उनकी शक्ति थी।

बुद्ध का पूरा जीवन ही एक सतत समाधि था। कहा गया है कि चित्त की जिस अवस्था से उन्होंने बोधि-प्राप्ति के समय विहार किया, उसी से वे अपने शेष जीवन में भी विहार करते रहे।

भगवान् बुद्ध का पहला ध्यान एक जामुन के पेड़ के नीचे हुआ था जबकि वे अल्पवयस्क बालक ही थे। बाद में उन्होंने ध्यान के द्वारा ही बोधि प्राप्त की। निर्वाण भी बुद्ध ने ध्यान की विभिन्न अवस्थाओं में संचरण करते हुए ही प्राप्त किया। कहा गया है कि बुद्ध कभी ध्यान से रिक्त नहीं रहते थे। उठते, बैठते, सोते, जागते, बात करते, तथागत सदा ध्यान में रहते हैं, ऐसा त्रिपिटक में अनेक बार कहा गया है।

जिस धर्म का बुद्ध ने उपदेश दिया उसका भी अभ्यास बिना ध्यान के कोई नहीं कर सकता। जिस प्रकार बिना प्रार्थना या नाम-स्मरण के भक्ति की साधना छूंछी है उसी प्रकार बिना ध्यान के बौद्ध धर्म का कोई अर्थ नहीं है। बिना ध्यान किये कोई बुद्ध नहीं होता, जिस प्रकार बिना नाम-स्मरण के कोई वैष्णव या भक्त नहीं है। बुद्ध को जो कुछ कहना है या उपदेश करना है वह सब जब वे कर चुकते हैं तो अपने शिष्यों से अंत में कहते हैं, "शिष्यों के हितैषी को अपने शिष्यों पर दया करके जो करना चाहिए, वह मैंने कर दिया। अब भिक्षुओ! यह सामने वृक्षों की छाया है, ये एकान्त घर हैं। भिक्षुओ! ध्यान करो। प्रमाद मत करो। देखना, पीछे मत पछताना। यही हमारा अनुशासन है।" यह अंतिम बात है जिसे बुद्ध कहते हैं। इसके बाद वे चुप हो जाते हैं। इसलिए बौद्ध साधकों के लिए ध्यान ही एकमात्र करणीय कार्य है जिसे करने के लिए बुद्ध अंतिम रूप से आदेश देते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



हैं। ध्यान करना ही बुद्ध-कार्य करना है। ध्यान बुद्ध-उपदेशों का उपसंहार है।

त्रिपिटक में ऐसे अनेक प्रसंग आते हैं जिनसे विदित होता है कि ध्यान से परम कर्त्तव्य भगवान अपने शिष्यों के लिए और कुछ नहीं मानते थे। ध्यानी भिक्षुओं के तो वे प्रशंसक थे ही, कुछ न कुछ ध्यान के अभ्यास की अपेक्षा वे उनसे भी रखते थे जो अपनी गोद में बाल-बच्चों को खिलाते हैं। जिस प्रकार पालथी मारकर गर्दन को सीधी रख उनके गृह-त्यागी, विरक्त शिष्य मैत्री, करुणा आदि के भाव से जगत् को सींचते हुए, उच्च ध्यान-अवस्था को प्राप्त करते थे, उसी प्रकार उनके अनेक श्रद्धावान् उपासक, गृहस्थ स्त्री-पुरुष, बुद्ध-धर्म और संघ की शरण में अपने को अर्पित करते हुए अपनी चित्त-विशुद्धि के लिए प्रयत्नशील होते थे।

बुद्ध ध्यान अभ्यास को भारी महत्त्व देते थे। उनकी शिक्षा में वस्तुतः क्रमिक विधान था, जिसकी तीन उत्तरोत्तर भूमियां थीं—शील, समाधि (ध्यान) और प्रज्ञा। शील (सदाचार) के बाद समाधि (ध्यान) और समाधि के अभ्यास से प्रज्ञा (अन्तर्ज्ञान) का उत्कृष्टतम् रूप, परम ज्ञान की प्राप्ति, इतना वस्तुतः बौद्ध धर्म है। आचार्य उद्घोष ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "विसुद्धिमग्न" में शील, समाधि और प्रज्ञा के अभ्यास के रूप में पूरे बुद्ध-मन्तव्य का विश्लेषण किया है और ध्यान (समाधि) का सविस्तार विवरण दिया है। त्रिपिटक और अनुपिटक साहित्य का वस्तुतः कोई ग्रंथ ही नहीं है जो ध्यान के बारे में कुछ न कहता हो, क्योंकि यह बुद्ध-शासन का सार ही है।

जिसने जीवन में सदाचार, शील का विकास नहीं किया है उसका चित्त समाधि को प्राप्त नहीं कर सकता। और जिसे चित्त की समाधि प्राप्त नहीं है वह प्रज्ञा से दूर है। बिना ध्यान के प्रज्ञा नहीं है और बिना प्रज्ञा के ध्यान नहीं है। साधना की यह भूमिका बौद्ध धर्म के सभी रूपों को मान्य है। यद्यपि ध्यान की महिमा बौद्ध धर्म के सभी रूपों में सुरक्षित है, ध्यान नाम से एक विशिष्ट बौद्ध संप्रदाय का विकास चीन और जापान में हुआ जिसका बीजारोपण करने वाले योगी बोधि धर्म वाले थे। भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्य महाकाश्यप को अंतर्बोध देते हुए कहा—मैं धर्म चक्षु का स्वामी हूं। जो अगोचर सत्य और परम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



गुह्य ज्ञान है, महाकाश्यप! इस क्षण मैं तुम्हें उसे देता हूं। इस प्रकार तथागत ने अपने ज्ञान को महाकाश्यप के मन में संप्रेषित कर दिया। यहीं बौद्ध धर्म के ध्यान संप्रदाय की उत्पत्ति हो गई। महाकाश्यप ने इस धर्म चक्षु को आनंद को संप्रेषित किया। जिस गूढ़ वाणी से उन्होंने यह किया यह भी देखने योग्य है। आनंद ने एक बार महाकाश्यप से पूछा-भन्ते! चीवर और भिक्षा-पात्र के अलावा और क्या वस्तु है जिसे आपने बुद्ध से पाया। माहाकाश्यप ने इसके उत्तर में केवल कहा—हे आनंद! इस पर जब आनंद ने "हां" कहा, तो महाकाश्यप ने फिर उनसे कहा, आनंद! दरवाजे पर लगे झंडे को नीचा कर दो! उतना सुनना था कि आनंद के हृदय में ज्ञान का प्रकाश कौंध गया और उनकी ताली लग गई। इस प्रकार धर्म की मुहर महाकाश्यप से आनंद को प्रेषित कर दी गई।

महाकाश्यप ने आनंद को झंडे को नीचा करने का आदेश दिया। इसका क्या अभिप्राय है? विहार के दरवाजे पर झंडे का फहराना वहां निरंतर धर्म प्रवचन होते रहने का सूचक है। अतः उसको नीचा करने का अभिप्राय है शाब्दिक प्रवचन को बंद कर देना और गहरे रूप से अपने अंदर के जगत् में लीन हो जाना। यही गूढ़ सन्देश था जिसे महाकाश्यप ने आनंद को प्रेषित किया।

ज्ञान की यह धारा क्रमशः महाकाश्यप और आनंद में होकर गुरु शिष्य क्रम से निरंतर बहती चली गई और भारत में बोधि धर्म इसके अट्ठाइसवें और अंतिम गुरु हुए। उपर्युक्त अट्ठाइस गुरुओं या धर्मनायकों की कुछ गाथाएं भी मिलती हैं जिनके द्वारा उन्होंने अपने उत्तराधिकारी शिष्यों को प्रबुद्ध किया। दीक्षा देते समय प्रायः प्रत्येक धमंनायक अपने शिष्य के सामने इन शब्दों का उच्चारण करता था—"अब ये धर्मचक्षु मैं तुम्हें दे रहा हूं, तुम इसकी पूरी तरह रखवाली करना और इसके बारे में मानसिक सावधानी बरतना।" इसके बाद वह अपनी कुछ गाथाएं कहता था। यहां एक गाथा उद्धृत है :—

**"मन के अंतिम सत्य को बेंधो, फिर न वस्तुएं हैं और न अ-वस्तुएं ही।**
**बुद्ध और अ-बुद्ध दोनों समान हैं, न मन है और न वस्तुएं ही।।"**

संस्कृत "ध्यान" (पालि, झान) शब्द की चीनी अनुलिपि "चान" या "छान" है। इसी प्रकार "ध्यान" शब्द की जापानी अनुलिपि "ज-जेन्"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



या संक्षेप में "जेन्" है। बोधि धर्म के पश्चात् "हुई-के" चीन में द्वितीय धर्मनायक हुए। बोधि धर्म के शिष्य होने से पूर्व वे कनफ्यूशसवाद को मानने वाले एक महापंडित थे। परंतु अपनी विद्वता का उन्हें तनिक भी अभिमान न था। इतने विनम्र और संकोची थे कि अपनी कुटिया के बाहर ही बहुत कम निकलते थे। पहले तो बहुत समय तक उन्होंने कोई धर्म-उपदेश ही नहीं दिया परंतु बाद में अधिकतर निचले वर्ग की जनता में कुछ धर्म-उपदेश करने लगे और धीरे धीरे उनका प्रभाव बढ़ गया। इसे देखकर सामंत वर्ग को चिन्ता होने लगी और उन पर यह अभियोग लगाया गया कि वे मिथ्या सिद्धांतों का प्रचार कर रहे हैं। मिथ्या सिद्धांतों के प्रचार के अभियोग में उन्हें मृत्यु दंड सुना दिया गया। हुइ-के ने कचहरी में अपने को निर्दोष प्रमाणित करने का कोई प्रयत्न नहीं किया बल्कि यह कहकर कि कर्म के नियम के अनुसार उन्हें अपने एक पूर्व ऋण को चुकाना ही है, उन्होंने शांतिपूर्वक मृत्यु को धारण कर लिया। उस समय उनकी अवस्था १०७ वर्ष की थी। इसलिए धर्म संप्रदाय के अनेक धर्मनायकों ने इस ध्यान की धारा को चीन में और जापन में भी जीवित रखा। धर्मनायक हुइ-के से जब यह पूछा गया कि बुद्ध क्या है तो इसका उत्तर हुइ-के ने यह कहकर दिया कि मन ही बुद्ध है। धर्मनायकों ने मनुष्य के वैयक्तिक, सान्त, परिच्छिन्न मन की उस निरपेक्ष, अनन्त, अपरिच्छिन्न मन से अभिन्नता दिखाई है, जिसे बुद्ध-मन, बुद्ध-चित्त या चित्त-मात्र भी कहा गया है। यहीं पर मन अस्तित्व की दृष्टि से बुद्ध-स्वभाव है, तथता है और नास्तित्व की दृष्टि से शून्यता है।

धर्मनायकों ने अपनी गाथाओं के द्वारा वस्तुओं के द्वंद्व को पार करने का उपाय बड़े आकर्षित ढंग में बताया।

**और जब अद्वैत को ठीक प्रकार नहीं समझा जाता,**
**तो दो प्रकार की हानि होती है,**
**सत्ता का निषेध करना उसका स्वीकार करना हो जाता है।**
**और शून्य का स्वीकार करना उसका निषेध बन जाता है।**

**एक है, तभी दो की सत्ता है।**
**पर इस एक को भी तुम मत पकड़ो,**

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



**जब एक मन विक्षुब्ध नहीं होता,**
**तो दस हजार वस्तुएं भी कोई बिगाड़ नहीं कर सकतीं।**

**और जब कोई बिगाड़ नहीं होता,**
**तो दस हजार वस्तुएं भी नहीं रहतीं।**
**द्रष्टा शान्त हो जाता है, जब दृश्य समाप्त होता है,**
**दृश्य समाप्त हो जाता है, जब द्रष्टा शान्त होता है।**

**सब में एक,**
**एक में सब,**
**यदि केवल इसी का साक्षात्कार कर लिया जाय,**
**तो फिर तुम्हें अपने पूर्ण न होने की कोई चिन्ता न होनी चाहिए।**

ध्यान संप्रदाय के धर्मनायक की शिक्षा और दीक्षा का मंत्र-सूत्र था कि अपने मन के सार को बेधो। हुई-नेंग् जो कि बाद में एक धर्मनायक हुए, ने मंत्र-सूत्र में अपनी आध्यात्मिक जीवनी दी है और बताया कि ध्यान संप्रदाय में उन्हें किस प्रकार श्रद्धा उत्पन्न हुई और किस प्रकार उन्होंने अपने मन के सार को बेधा। वे दक्षिणी चीन के एक अनपढ़ लकड़हारे थे। बाल्यावस्था में ही उनके पिता की मृत्यु हो गई थी और वे लकड़ी बेचकर अपना और अपनी माता का गुजारा करते थे। एक दिन जब वे किसी घर में लकड़ी बेचकर लौट रहे थे तो बाहर सड़क पर उन्होंने किसी को धर्मनायक की वाणी के कुछ अंश पाठ करते सुना। अचानक उनकी अंतर्दृष्टि जाग पड़ी और उन्होंने अपनी माता के गुजारे का कुछ प्रबंध किया और पैदल चलते-चलते एक महीने में हुंग-जेन् के आश्रम में पहुंचे। पहुंचते ही गुरु ने परीक्षा-स्वरूप पूछा—तुम कहां से आए हो और क्या चाहते हो? हुई-नेंग् ने उत्तर दिया—मैं दक्षिणी चीन का एक किसान हूं और बुद्ध होना चाहता हूं। गुरु ने चुटकी लेते हुए कहा—अच्छा तो तुम दक्षिणी चीन के निवासी हो। परंतु दक्षिणी चीन के लोगों में तो बुद्ध स्वभाव होता ही नहीं। जंगली, तुम किस प्रकार बुद्ध बन सकते हो? हुइ-नेंग् इस उत्तर से निरुत्साहित नहीं हुए, बल्कि उन्होंने कहा, "उत्तरी और दक्षिणी (चीन) हैं तो बने रहें, परंतु बुद्ध-स्वभाव के संबंध में आप ऐसा भेद कैसे कर सकते हैं? इस उत्तर से हुंग-जेन प्रभावित हुए और उन्होंने उसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अस्तबल में रहने का आदेश दिया। काम भी बता दिया गया—चावल कूटना और ईंधन के लिए लकड़ी फाड़ना। आठ महीने तक इसी काम को करते हुए हुइ-नेंग् विहार के पिछवाड़े में स्थित अस्तबल में बने रहे। जिस कक्ष में धर्म-प्रवचन होता था, उस तक वे एक दिन भी नहीं गए और न गुरु ने उन्हें कोई उपदेश ही दिया।

हुंग-जेन् ने एक दिन अपने शिष्यों को सूचित किया कि वे अपना उत्तराधिकारी भिक्षु निश्चित करना चाहते हैं। अतः जो भिक्षु ध्यान-संप्रदाय के मर्म को प्रकट करने वाली सर्वोत्तम गाथा लिखेगा उसे ही वे अपना चीवर और भिक्षा-पात्र उत्तराधिकार-स्वरूप देंगे। हुंग-जेन् का एक अत्यंत पण्डित शिष्य शेन्-सियु नामक भिक्षु था। पूरे आठ फुट लम्बा, चमकीली आंखों और लम्बे कानों वाला यह आकर्षक व्यक्तित्व का भिक्षु त्रिपिटक का पण्डित होने के साथ-साथ ताओ-मत और कनफ्युशसवाद का भी विद्वान् था। उसने एक गाथा विहार की दीवार पर लिखी :—

"शरीर बोधि वृक्ष के समान है,
और मन स्वच्छ दर्पण के समान,
हर क्षण हम उन्हें सावधानी से साफ करते रहते हैं,
ताकि उन.पर धूल न जम जाय।।"

गुरु ने इस गाथा का अनुमोदन किया, शिष्यों के सामने प्रशंसा भी की, परंतु इससे उनका मन पूरी तरह भरा नहीं। उन्हें लगा कि लिखने वाले को अभी अपने मन के सार का साक्षात्कार नहीं हुआ है, उसने अंदर की तथता को सच्चे रूप में नहीं देखा है, अद्वय सत्य की पूरी निष्ठा अभी उसे प्राप्त नहीं हुई है। हुइ-नेंग् को भी किसी ने यह बात बतलाई। तो हुइ-नेंग् ने अपनी गाथा इस प्रकार लिखवाई :—

"नहीं है बोधिवृक्ष के समान शरीर,
और न कहीं चमक रहा है स्वच्छ दर्पण,
तत्वतः सब कुछ शून्य है,
धूल जमेगी कहां?"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



हुंग्-जेन् ने हुई-नेंग् को अपना चीवर और भिक्षापात्र दिया और अपना उत्तराधिकारी बनाया। उन्होंने उनसे कहा, "तुम अब से धर्मनायक हो। अपनी खूब संभाल रखो और जितने अधिक प्राणियों को मुक्त कर सको, करो। सद्धर्म का प्रचार करो और उसका अंत मत होने दो।" परन्तु एक अनपढ़ व्यक्ति को इस प्रकार धर्मनायक बनाए जाने पर कुछ लोगों ने असन्तोष भी व्यक्त किया। अपने गुरु के आदेश पर हुइ-नेंग् विहार छोड़कर अज्ञातवास करने चले गए। गुरु उनके सम्मान में उन्हें मार्ग में एक नदी के पार तक पहुंचाने गए और स्वयं नाव चलाई। पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के एक ध्यानी चित्रकार ने गुरु-शिष्य की विदाई के इस दृश्य को मार्मिकतापूर्ण ढंग से अंकित किया है। मार्ग में जब हुइ-नेंग् एक दर्रे को पार कर रहे थे तो कुछ ईर्ष्यालु लोगों ने, जिनमें मिंग् नामक एक भिक्षु भी था (जो पहले सेना में एक अधिकारी रहा था और बड़े उजड्ड और क्रूर स्वभाव का था,) उन्हें पकड़ लिया और उनसे चीवर और भिक्षापात्र छीनने का प्रयत्न किया। चीवर को पास की एक चट्टान पर फेंकते हुए हुइ-नेंग् ने उससे कहा "यह वस्त्र हमारे धार्मिक विश्वास का प्रतीक है। इसे बलपूर्वक ले जाने से क्या लाभ? परंतु यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो तुम इसे ले जा सकते हो।" मिंग् ने उसे उठाने का प्रयत्न किया, परंतु नहीं उठा सका। वह भय से कांपने लगा और बोला, "मैं धर्म को लेने आया हूं, कपड़े को नहीं। मेरे प्रिय साथी! मेरे अज्ञान को दूर करो।" धर्मनायक ने उससे कहा, "यदि तू धर्म को लेने आया है तो अपनी हविसों को छोड़। मत अच्छे का चिंतन कर, मत बुरे का चिंतन कर। बल्कि तेरे जन्म से पहले जो तेरा चेहरा था, उसे इस क्षण तू देख।" इन मर्म भरे वचनों को सुनकर मिंग् स्तम्भित रह गया, उसके शरीर से पसीना निकलने लगा और पश्चाताप और कृतज्ञता के कारण वह रोने लगा। गुरु को प्रणाम करते हुए उसने उनसे पूछा, "आपके इन सारवान् शब्दों में निहित गुह्य अर्थ के अलावा क्या अन्य भी कोई गुह्य वस्तु है?" हुइ-नेंग् ने उत्तर दिया, "मैंने जो तुझे दिखाया है उसमें रहस्य कुछ भी नहीं है। यदि तू अपने ही अंदर विचार करे और अपने मूल चेहरे को पहचान सके जो तेरे जन्म से पहले तेरा था तो गुह्यता तेरे अंदर ही है।" "अपने जन्म से पहले के अपने मूल चेहरे" (अपने सच्चे स्वभाव, बुद्ध-स्वभाव) को देखने की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



साधना का मौलिक उपदेश इस प्रकार हुइ-नेंग् ने दिया जो उनके दर्शन और अनुभव का सार है। सब युगों के सत्य-शोधक और आत्म-साक्षात्कार के प्रयत्न में लगे साधक हुइ-नेंग् के इन शब्दों के अंदर झांकती हुई गूढ़ अन्तर्मुखमयी साधना का अभ्यास कर सकते हैं और आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में आगे बढ़ सकते हैं।

धर्मनायक हुइ-नेंग् के समय में ध्यान की साधना-पद्धति और सत्य प्राप्ति की प्रक्रिया को लेकर दो विचार धाराएं प्रचलित हो गईं। उनमें से एक यह मानती है कि सत्य की प्राप्ति क्रमशः, धीरे-धीरे, साधना का विकास करते हुए होती है। इसे "क्रमवृत्य" कहा जाता है। चीन के उत्तरी भाग में इसका प्रचार हुआ। इसलिए इसे ध्यान की "उत्तरी शाखा" भी कहते हैं। दूसरी विचार-धारा यह मानती है कि सत्य की प्राप्ति किसी क्रमिक विकास के अनुसार नहीं होती बल्कि जब होती है तो अचानक ही, एक बार ही हो जाती है। इसे "युगपद्" कहा जाता है। इस विचार-धारा का प्रचार दक्षिणी चीन में हुआ। इसलिए इसे ध्यान की "दक्षिणी शाखा" भी कहा जाता है। हुइ-नेंग् "युगपद्" सत्य-प्राप्ति में विश्वास करते थे, जबकि उनके गुरु भाई शेन्-सियु (जिनकी गाथा का अनुमोदन करते हुए भी गुरु हुंग्-जेन् ने उसे सर्वश्रेष्ठ नहीं माना था) क्रमिक या "क्रमवृत्य" सत्य-प्राप्ति में। वास्तव में सत्य-प्राप्ति की प्रक्रिया का यह दो शाखाओं में विभाजन अधिकारियों की कम या अधिक योग्यता के आधार पर ही किया गया है और पारमार्थिक नहीं है। स्वयं हुइ-नेंग् ने कहा है, धर्म को हम "युगपद्" और "क्रमवृत्य" के रूप में विभक्त नहीं कर सकते, बल्कि इसका केवल तात्पर्य यही है कि कुछ लोग अन्य की अपेक्षा अधिक शीघ्र ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। जो स्मृतिशील या जागरूक हैं वे सहसा, एकदम, सत्य का साक्षात्कार कर लेते हैं जबकि जो मोह में पड़े हैं उन्हें धीरे धीरे, क्रमशः अपने को शिक्षित करना होता है। परन्तु जब हम अपने मन को जान लेते हैं, अपने स्वभाव का साक्षात्कार कर लेते हैं तो यह भेद समाप्त हो जाता है। इसलिए "युगपद्" और "क्रमवृत्य" शब्द प्रतीकमान हैं, वास्तविक नहीं।" ध्यान संप्रदाय में "युगपद्" सत्य-प्राप्ति पर ही अधिक बल दिया गया है। जीवन थोड़ा है जब तक हम तैयारी करते हैं और वस्तुओं को समझने का प्रयत्न करते हैं तब तक वह निकल जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



इसलिए एकदम ही जल में कूद पड़ना चाहिए, निर्भयता के साथ और किसी भी विचार को अवकाश न देते हुए। सत्य के जल में अपने को एकदम गिरा देना चाहिए, इस प्रकार का विचार चीनी जन-मानस के अधिक अनुकूल है, अतः आकस्मिक रूप से अन्तर्बोध जगाने वाली "युगपद्" साधना-विधि का ही ध्यान-संप्रदाय में अधिक ग्रहण हुआ है। आजकल जापान में भी ध्यान के जितने संप्रदाय प्रचलित हैं, सब प्रायः "युगपद्" सत्य-प्राप्ति में ही विश्वास करते हैं।

जापान की भूमि में ध्यान-संप्रदाय की जड़ जमाने वाले तेन्दई बौद्ध संप्रदाय के येइ-साइ नामक जापानी भिक्षु थे जिन्होंने चीन में जाकर ध्यान-संप्रदाय का अध्ययन किया और जापान लौटकर क्योतो नगर में सन् ११९१ ई. में एक ध्यान-मठ स्थापित किया। ध्यान-संप्रदाय की जिस शाखा का येइ-साइ ने जापान में प्रचार किया, उसके मूल प्रवर्तक रिंजई (चीनी, लिन्-चि) नामक चीनी महात्मा थे, अतः उनके नाम पर ही इस शाखा का नाम जापान में "रिंजई" संप्रदाय पड़ा है।

जापान में ध्यान-संप्रदाय के प्रचार की एक विशेषता यह रही है कि यहां ध्यानी संतों (विशेषतः रिंजई संप्रदाय के अनुयायियों) ने जापानी सम्राटों के सहयोग से काम किया, अतः उन्हें राज्याश्रय तो मिला ही, जापानी राष्ट्रीय भावना के साथ भी ध्यान-संप्रदाय का अधिक संयोग हुआ (चीनी ध्यानी संत अक्सर सम्राटों और उनके वंशजों के प्रति अनादर की भावना रखते थे।) और यही कारण है कि जापान की परंपरागत युद्धजीवी राजपूत जाति समूराई का वह अपना धर्म हो गया और अब तक है। येइ-साइ ने बारहवीं शताब्दी में जापानी भाषा में "कोजन-गोकोकु-रोन" शीर्षक एक पुस्तक लिखी, जिसका अर्थ है "ध्यान के प्रचार के रूप में राष्ट्र की सुरक्षा"। इसमें उन्होंने यह दिखाने का प्रयत्न किया कि ध्यान-संप्रदाय के प्रचार से जापानी राष्ट्र की समृद्धि होगी। येइ-साइ ने सिपाहियों में भी ध्यान-संप्रदाय का प्रचार किया जिससे उनमें अन्तर्निरीक्षण और उत्तरदायित्व की भावना बढ़ी। आज तक जापानी सैनिकों में ध्यान-संप्रदाय बहुत लोकप्रिय है और मनोबल और अनुशासन के लिए उसका अभ्यास आवश्यक माना जाता है। येइ-साइ के बाद उनके शिष्य दो-गेन ने ध्यान-संप्रदाय की सोतो (चीनी, त्साओ-तुंग्) नामक शाखा की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



स्थापना सन् १२२७ ई. में की। यह शाखा अपना संबंध धर्मनायक हुइ-नेंग्, उनके शिष्य चिंग्-युआन् और उनके शिष्य शिह-ताउ से मानती है। इसके दो प्रभावशाली गुरुओं के नाम थे—त्साओशन-पेंची, जिसका जापानी उच्चारण है सोजन होनजाकू और उनके गुरु तुंग्-शन्-लियांग्-चिह्,। इन्हीं दो गुरु-शिष्यों के नामों के प्रथम अक्षरों को जोड़कर यह शाखा चीन में "त्साओ-तुंग्" तथा जापान में "सोतो" कहलाती है। यह संप्रदाय जापान में आज संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक प्रभावशाली ध्यान-संप्रदाय है। जापान में इसकी स्थापना दो-गेन् नामक महात्मा ने की। दो-गेन् जापानी इतिहास में एक अत्यंत प्रभावशाली व्यक्तित्व के धार्मिक नेता और विचारक हो गए हैं। उन्होंने ज्ञान और उसके अभ्यास के समन्वय पर बल दिया है। दो-गेन् ने एक पहाड़ी पर गरीबी और ध्यान का जीवन बिताया। धनी और ऊंचे पदों पर स्थित लोगों से मिलना उन्हें बिलकुल पसंद नहीं था। जापानी सम्राट की ओर से उन्हें कई बार मूल्यवान भेंटें और सम्मान अर्पित करने की इच्छा प्रकट की गई परंतु उन्होंने उन्हें स्वीकार नहीं किया। एक बार जब सम्राट ने उनसे एक बहुमूल्य बैंगनी रंग के वस्त्र की भेंट को स्वीकार करने का बहुत आग्रह किया तो उन्होंने उसे स्वीकार तो कर लिया परंतु पहना कभी नहीं। इस समय उन्होंने कुछ पंक्तियां लिखीं जिनका भाव यह है कि मैं यहां पहाड़ की घाटी में रहता हूं जहां बन्दर और सारस मेरे साथी और मित्र हैं वे मनुष्य के समान लोभ की भावना से पराक्रान्त नहीं हैं। जब वे मुझ जैसे वृद्ध, गंवार भिक्षु को सांसारिक वैभव के प्रतीक बैंगनी रंग के वस्त्र को पहने देखेंगे तो क्या वे मुझ पर नहीं हँसेंगे?

ध्यान संबंधी बुद्ध साहित्य को ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु-शिष्य के बीच होने वाले प्रश्नोत्तरमय संवाद (कोआन्) को रिंजई संप्रदाय में आध्यात्मिक प्रकाश (सटोरी) को प्राप्त करने के लिए एक आवश्यक साधन के रूप में अपनाया गया है। जापानी जीवन का कोई ऐसा पहलू नहीं है जिस पर ध्यान संप्रदाय का प्रभाव अंकित न हो। क्या साहित्य, क्या कला, क्या व्यक्तिगत बर्ताव और क्या समाज नीति, सभी मुक्त कंठ से ध्यान संप्रदाय के प्रभाव को घोषित करते हैं। काव्य, नाटक, आख्यान-गीती, चित्रकला, वस्तुकला, यहां तक कि घर की सजावट, साग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



भाजी बनाने की कला, तीर और तलवार चलाने की कला में भी ध्यान संप्रदाय का विशिष्ट प्रभाव जापानी जन जीवन पर अंकित है। जापानी सैनिकों पर उसकी जो अमिट छाप है उसका तो कुछ कहना ही नहीं। सैनिक चेतना का इतना आकर्षक संयोग आध्यात्मिक साधना के साथ ध्यान संप्रदाय में हुआ है कि इस दृष्टि से उसकी तुलना भारतीय संप्रदाय से आसानी से की जा सकती है। और दोनों संत मत तो हैं ही जिनमें वीरता के साथ-साथ मानवीय आत्मा की दीनता निरीहता और पूर्णता के लिए पूरी छटपटाहट और विकलता भी प्रगट हुई है। जापानी योद्धाओं की एक वीरता नीति है जो "बुशिदो" कहलाती है। उस पर ध्यान की मानसिक शिक्षा का अमिट प्रभाव पड़ा है। जापान के इतिहास में उसके निवासियों पर जो सबसे अधिक विपत्ति आई वह तेरहवीं शताब्दी में दो बार मंगोलों का आक्रमण था। उसे जापानियों ने परास्त किया और जिस व्यक्ति के हाथ में इसकी बागडोर थी वह ध्यान संप्रदाय की शिक्षा पाए हुए था। इस प्रकार ध्यान संप्रदाय जापान के राष्ट्रीय इतिहास के साथ गहरे रूप से सम्बद्ध हो गया है। ध्यान संप्रदाय ने अपने अनुयायियों में जहां प्रेम और उदारता की भावना को विकसित किया साथ ही उच्च मनोबल का विकास, निर्णय लेने की शक्ति और कठिन श्रम की भावनाएं ध्यान संप्रदाय ने सैनिक और असैनिक जीवन को दी हैं।

ध्यान के साधक यद्यपि पावन धार्मिक ग्रंथों को महत्व देते हैं लेकिन केवल लेख मात्र में ध्यानी साधकों को अधिक आस्था नहीं है। जो कुछ लिख दिया गया है दूसरों के अनुभवों के लेख के रूप में हमें प्राप्त है। लेकिन उसका महत्व भी गौण है। वे सहायक भले ही हो सकते हों पर वे स्व-अनुभव के स्थान को नहीं ले सकते। सत्य की सीधी अवगति—निरावरण, निर्विकल्प, निरपेक्ष सत्य को अपने आप देखना—ध्यानी साधना का लक्ष्य है। अतः लिखित साहित्य को उसमें अधिक महत्व नहीं मिल सका है। यही कारण है कि महान से महान ध्यानी साधकों ने भी लिखने की उत्सुकता नहीं प्रकट की है और न उन्होंने कुछ लिखित साहित्य को ही छोड़ा है। उनके प्रवचनों को उनके शिष्यों ने संकलित किया है। फिर भी अनुभवी संतों के द्वारा रचित साहित्य उपलब्ध है जो अपनी अभिव्यक्ति की मौलिकता में अद्वितीय हैं और जिसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



आध्यात्मिक अनुभवों का एक महान भण्डार कहा जा सकता है। कोई साधना पुस्तकीय ज्ञान का कितना ही निराकरण क्यों न करे अंत में शब्द आध्यात्मिक अनुभवों के महत्वपूर्ण वाहन रह ही जाते हैं और उनका सहारा लेना ही पड़ता है। यह मनुष्य के स्वभाव की आवश्यकता है कि वह अपने अनुभव को किसी न किसी रूप में व्यक्त करना चाहता है। ध्यान संबंधी साहित्य का अध्ययन चाहे वह किसी भी धर्म में पाया जाय, समस्त प्राणियों को आध्यात्मिक प्रवृत्ति और प्रज्ञा की ओर ले जाने वाला है।

बौद्ध धर्म के दर्शन को ध्यानी संतों ने बड़े ही सरल ढंग से व्यक्त किया है। उनका मूल विचार यह है कि यह जगत् चित्त का ही विकार है, मन का विषय-भूत रूप है। जितना भी जड़ चेतनात्मक जगत् है सब मन में है और मन से बाहर कोई संसार नहीं। और साधक का उद्देश्य उस द्वंद्वातीत सत्य का दिग्दर्शन ध्येय है जिसका साक्षात्कार प्रत्येक शरीर और हृदय में होना चाहिए और जो तर्क से नहीं प्राप्त किया जा सकता। बुद्ध के असंख्य नाम हैं। बताया गया है कि कोई उन्हें तथागत कहते हैं कोई नायक कोई विनायक, कोई स्वयंभु, कोई विष्णु, कोई ईश्वर,कोई राम। स्वयं बुद्ध भगवान कहते दिखाए गए हैं—"महामते! कोई मुझे तथागत के रूप में पहचानते हैं, कोई स्वयंभु के रूप में, कोई विष्णु के रूप में, कोई ईश्वर के रूप में, कोई राम के रूप में मुझे जानते हैं।"

"वजच्छेकदिका प्रज्ञापारमिता" से तात्पर्य प्रज्ञा की उस परिपूर्णता से है जो वज्र (हीरे) की तरह सीधी काट करती है। इस शब्द में यह अर्थ ध्वनित है कि ज्ञान की मार सीधी और तीक्ष्ण होनी चाहिए। वह ज्ञान ही क्या जिसकी मार से चेला बिलबिला न जाय. हमारे मध्यकालीन निर्गुणीय संत भी ऐसे ही ज्ञान के पक्षपाती थे जो सीधी मार करे, जिसका शब्द रूपी तीर जाकर सीधा कलेजे को छेद दे। और साधक के शरीर से आग सी हीं फूट निकले।

सतगुरु सांचा सूरिवां सबद जु बाह्या एक ।
लागत ही भै मिलि गया, पड्या कलेजे छेक।।
सतगुरु मार्या बाण भरि, धरि करि सूधी मूठि ।
अंग उघाड़ें लागिया, गई दवा सूं फूटि।।

बुद्ध से उनके शिष्य सुभूति पूछते हैं कि बोधि की इच्छा करने वाले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



व्यक्ति को किस प्रकार उसमें प्रतिष्ठित होना चाहिए और किस प्रकार उसे अपने विचारों को समाहित करना चाहिए?

"शूरंगम-समाधि-सूत्र" या "शूरंगम-सूत्र" का विषय है एक अत्यंत शूरता के कार्य का वर्णन करना—अपने मन पर अंतिम विजय। कथा आनंद के स्खलन से शुरू होती है। आनंद मातंगा नामक एक जादूगरनी के प्रेम-पाश में फंस जाते हैं और पतित होने वाले हैं। बुद्ध अपने अन्तर्ज्ञान से इसे देखते हैं और मंजुश्री बोधिसत्व को आनंद को अपने पास बुलाने भेजते हैं। आनंद आते हैं और पश्चाताप करते हैं। आनंद बहुश्रुत हैं, परम विद्वान हैं परंतु मन पर पूरी विजय नहीं पा सके। इसका क्या कारण है? बुद्ध कहते हैं कि विद्वता या बौद्धिक ज्ञान का आध्यात्मिक अनुभव की प्राप्ति में अधिक महत्त्व नहीं है। इसके लिए समाधि का अभ्यास आवश्यक है। उसी से मन पर पूरी विजय प्राप्त होती है। बुद्ध आनंद से कहते हैं कि तुम अपने मन के सार को खोजो, पता लगाओ कि तुम्हारा मूल मन कहां है। आनंद कुछ नहीं समझ पाते और उनसे कोई उत्तर देते नहीं बनता। तब उन्हें मूल मन या मन के सार का उपदेश दिया जाता है जो इस सूत्र का मुख्य विषय है और ध्यान की गवेषणा का केन्द्रीय बिन्दु भी। जिसे यहां मन का सार या मूल मन कहा गया है वह वास्तव में निर्विशेष, निरपेक्ष, निर्विकल्प और अपरिच्छिन्न मन ही है जो अहं-प्रत्यय मन से भिन्न है। जिसे हम साधारणतः व्यक्तिगत मन या चित्त कहते हैं और जिसका अध्ययन मनस्तत्त्ववेत्ता करते हैं, उसका संबंध सापेक्ष अनुभवों से है। उससे यहां अभिप्राय नहीं है। मन का सार या मूल मन वह निरपेक्ष चेतन सत्ता है जो हमारे सब सापेक्ष अनुभवों का आधार है और वही उन्हें संभव बनाती है। मूल मन या मन के सार का अस्तित्त्व है, तभी यह संभव होता है कि हम देखते हैं, सुनते हैं, सोचते हैं, मनन करते हैं और सान्त जगत् के सारे अनुभवों को करते हैं। इस अतीत पर मन की खोज करना ही शूरंगम-समाधि-सूत्र का विषय है। शमथ और विपश्यना (विदर्शना) के अभ्यास को यहां इस उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक बताया गया है और ध्यानाभ्यास का उपदेश किया गया है।

करुणा ही भगवान के अनेक-अनेक रूप लेकर इस संसार में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अवतरित होने का कारण है। इस विचार ने बाद में चलकर वैष्णव भक्ति साधना में भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। बार-बार हमारे भक्त गाते हैं– भए प्रगट कृपाला, धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं।' और करुण के बुद्ध अवतार हैं, मुक्ति के शिक्षक हैं।

हुइ-नेंग् जन्मजात साधक थे। प्रज्ञा उनके अन्तःकरण में बाल्यावस्था से ही स्वतः स्फुरित होती थी। उनके पूर्व जन्मों का ध्यान संचित था जो एक बार वज्रच्छेदिका के कुछ अंशों को सुनकर फूट पड़ा। कहते हैं कि एक बुद्ध विहार में दो भिक्षुओं में इस बात पर वाद-विवाद चल पड़ा कि हवा में एक पताका फहरा रही थी और यह निर्णय नहीं हो पा रहा था कि चलने की क्रिया कहां हो रही है हवा में या पताका में! बाबा हुइ-नेंग् तो वहां थे ही, बोले, न हवा चल रही है और न पताका। यह तुम्हारा अपना मन ही है जो चल रहा है। लोग बड़े विस्मित हुए, उन्हें उच्चासन दिया और धर्म पर बड़ी बातें पूछीं। वर्षों के अज्ञातवास और ध्यानाभ्यास के बाद हुइ-नेंग् ने प्रवचन देना शुरू किया। मंत्र-सूत्र के द्वितीय अध्याय में उनका प्रज्ञा पर दिया हुआ प्रवचन संगृहीत है। इसमें उन्होंने बताया कि प्रज्ञा प्रत्येक प्राणी के अंदर विद्यमान है और उसे अपने अंदर ही खोजना चाहिए। इस ग्रंथ में उनकी प्रसिद्ध अरूप गाथा है जिसका कुछ अंश यहां उद्धृत किया जा रहा है, क्योंकि इसमें उनके दर्शन और साधना तत्त्व का सार निहित है। अरूप गाथा निम्नलिखित है:–

**बौद्ध शास्त्रों और ध्यान-संप्रदाय की शिक्षाओं का उपदेष्टा गुरु मध्यान्ह की अपनी उच्च कक्षा में स्थित प्रज्वलित सूर्य के समान होता है,**

**मन के सार को साक्षात्कार करने के लिए धर्म के अलावा वह कुछ और उपदेश नहीं देता और इस संसार में उसके आने का उद्देश्य ही होता है मिथ्या सिद्धांतों को परास्त करना।**

**"युगपद" और "क्रमवृत्य" के रूप में हम धर्म का वर्गीकरण नहीं कर सकते,**

**परंतु कुछ मनुष्य दूसरों की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से बोधि को प्राप्त कर लेते हैं,**

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



मन के सार को साक्षात्कार करने का यह सिद्धांत अज्ञानियों की समझ के बाहर है।

चाहे हम दस हजार रूपों में इसकी व्याख्या कर लें,
परंतु इन सब व्याख्याओं का उद्गम यह एक मूल सिद्धांत ही है
कि हमें अपने अंधेरे और अस्थायी घर के अंदर प्रकाश करना
है, जो मलिनताओं के (क्लेशों) के कारण गन्दा है,
हमें सतत् रूप से इसमें प्रज्ञा का प्रकाश करना है।

मिथ्या सिद्धान्त हमें मलिन करते हैं,
और सम्यक् दृष्टि हमें मलिनता से बचाती है,
परंतु जब हम इन दोनों को ही (मिथ्या और सम्यक् दृष्टियों को)
हटाने की स्थिति में हो जाते हैं,
तो हम निरपेक्ष रूप से शुद्ध हो जाते हैं।

हमारे मन के सार में ही बोधि व्याप्त है,
इसे अलग ढूंढ़ना गलत होगा,
हमारे अपवित्र मन के अन्दर ही पवित्र पाया जाता है,
और जब एक बार हमारा मन ठीक हुआ तो हम तीनों प्रकार के
मोहावरणों (क्लेश, दुष्कर्म और अधम योनियों में प्रायश्चित)
से मुक्त हो जाते हैं।

यदि हम बोधि के मार्ग पर चल रहे हैं,
तो पथ के रोड़ों से हमें चिन्तित नहीं होना चाहिए।
यदि हम अपने दोषों पर लगातार निगाह रखते रहें,
तो हम सच्चे मार्ग से भ्रष्ट नहीं हो सकते।

यदि तुम सच्चे मार्ग को पाना चाहते हो,
तो सम्यक् कर्म तुम्हें वहां सीधा पहुंचा देगा,
परंतु यदि तुम बुद्धत्त्व को पाने का उद्योग ही न करो,
तो तुम अंधेरे में ही भटकते रहोगे और कभी उसे न पाओगे।

जो ईमानदारी से सच्चाई के मार्ग पर चलता है,
वह दुनिया की गलतियों को नहीं देखता,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



यदि हम दूसरों के दोष देखते हैं,
तो हम स्वयं भी गलत हैं।

यदि दूसरे पुरुष गलती पर हैं तो उस पर हमें ध्यान नहीं देना चाहिए,
क्योंकि दूसरों के दोष देखना हमारे लिए गलत है।
दोष ढूंढ़ने की आदत से पीछा छुड़ा कर,
हम अपवित्रता के एक स्रोत को बंद कर देते हैं,
जब न घृणा और न प्रेम हमारे मन को विक्षुब्ध कर सकते हैं,
तो हम गहरी शान्ति में सोते हैं।

जिन्हें दूसरों के शिक्षक बनना है,
उन्हें उन उपायों में कुशल होना चाहिये जो दूसरों को ज्ञान दिलाते हैं,
जब शिष्य सब सन्देहों से मुक्त हो जाता है,
तो यह दिखाता है कि उसने अपने मन के सार को पा लिया है।

सम्यक् दृष्टि ही "पर" (लोकोत्तर) कहलाती है,
मिथ्या दृष्टियां "ऐहिक" (लौकिक) हैं,
जब सभी दृष्टियां, पर और ऐहिक, हटा दी जाती हैं,
तो बोधि का सार प्रकट होता है।

यह गाथा "युगपद्" शाखा की है,
"धर्म का महान् जहाज" भी यह कहलाती है,
कल्प-कल्पान्त तक भी यदि कोई मनुष्य मोह में रहा हो,
फिर भी एक बार ज्ञानोदीप्त होने पर वह एक पल भर में ही बुद्धत्त्व को प्राप्त कर लेता है।

जब हुइ-नेंग् से एक जिज्ञासु ने पूछा कि घर पर रहते हुए ही हम अपने को बुद्ध-तत्त्व में किस प्रकार शिक्षित करें? इसके उत्तर में हुइ-नेंग् उसे एक अरूप-गाथा सुनाते हैं और कहते हैं कि यदि तुम इसके उपदेश को अपने व्यवहार में लाओ तो तुम बिल्कुल उस भिक्षु के समान हो जो सिर मुंडवा कर और घर छोड़कर सदा मेरे साथ रहता है परंतु यदि तुम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



इसको प्रयोग में न लाओ तो तुम आध्यात्मिक मार्ग में कुछ प्रगति नहीं कर सकते। गाथा इस प्रकार है:—

(जिसका मन साफ है, उसके लिए शिक्षापदों (विनय-नियमों) का अभ्यास करना आवश्यक है सच्चे और खरे व्यवहार के लिए ध्यान को छोड़ा जा सकता है।
कृतज्ञता के सिद्धांत पर हम अपने माता-पिता का भरण-पोषण करते हैं और पितृभक्तिपूर्वक उनकी सेवा करते हैं,
अच्छाई के सिद्धांत पर बड़े और छोटे व्यक्ति आवश्यकता के समय एक दूसरे की सहायता करते हैं,
एक-दूसरे के साथ हिल-मिल कर रहने की इच्छा के सिद्धांत पर बड़े और छोटे एक दूसरे से स्नेहपूर्ण बर्ताव करते हैं,
क्षमाशीलता के सिद्धांत पर हम एक विरोधी भीड़ में भी झगड़ा नहीं करते।
यदि हम तब तक सतत् रूप से उद्योग में लगे रहें जब तक कि लकड़ियों को रगड़ने से आग न निकले,
तो लाल कमल (बुद्ध-स्वभाव) मैली कीचड़ (अज्ञानावस्था) में से ही उत्पन्न होगा। जो कड़ुए स्वाद का है, वह अवश्य अच्छी दवा होगा,
जो कानों को अच्छी नहीं लगती, वह सचमुच खरी सलाह है,
अपनी गलतियों को सुधार कर हम ज्ञान प्राप्त करते हैं,
परंतु अपने दोषों का समर्थन करना अपने अस्वस्थ मन का परिचय देना है।
अपने दैनिक जीवन में हमें सदा परोपकार का अभ्यास करना चाहिए,
परंतु धन को दान में देने से बुद्धत्त्व नहीं मिलता,
बोधि हमें अपने मन के अंदर ही मिलेगी,
बाहर रहस्य खोजने की कोई आवश्यकता नहीं है।
इस गाथा के सुनने वाले, जो इसके उपदेश को अभ्यास में लाएंगे,
स्वर्ग को अपने सामने ही पाएंगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



समाधि और प्रज्ञा का संबंध दिखाते हुए उन्होंने कहा—समाधि प्रज्ञा का सार है। और प्रज्ञा समाधि की क्रिया है। जिस क्षण हम प्रज्ञा को प्राप्त करते हैं तो उस क्षण समाधि भी उसके साथ होती है। जिस क्षण हम समाधि में होते हैं तो उस क्षण प्रज्ञा भी उसके साथ ही होती है। समाधि और प्रज्ञा में संतुलन होना चाहिए इसका तात्पर्य समझाते हुए वे कहते हैं—"उस व्यक्ति के लिए, जिसकी जबान पर तो अच्छे शब्द सदा तैयार रहते हैं परंतु हृदय जिसका अपवित्र है, समाधि और प्रज्ञा व्यर्थ हैं, क्योंकि उनका एक दूसरे से संतुलन नहीं है। परंतु जब हमारा मन भी अच्छा होता है और हमारे शब्द भी अच्छे होते हैं, जब हमारा बाहरी चेहरा और अन्दरूनी भावनाएं एक दूसरे के सामंजस्य में होती हैं तो यही समाधि और प्रज्ञा का संतुलन है।" समाधि और प्रज्ञा के संबंध को यहां हुइ-नेंग् ने दीपक और उसके प्रकाश का संबंध बताया है। "दीपक के साथ हीं प्रकाश है। बिना दीपक के अंधेरा हो जाएगा। दीपक प्रकाश का सार है और प्रकाश दीपक की क्रिया है। नाम में दीपक और प्रकाश दो हैं परंतु तत्त्वतः वे एक ही हैं। समाधि और प्रज्ञा का भी यही हाल है।"

क्यों न अपने मन के अंदर ही हम पाप से अपना पीछा छुड़ाएं।

ज्ञान का कोई साक्षी होना चाहिए और किसी दूसरे ज्ञानी पुरुष द्वारा उस पर सही लगवाना....

**बुद्ध का सच्चा शिष्य परमार्थ ही बोलता है,**
**यदि तुम मेरे कथन से सहमत नहीं तो मेरे साथ विचार-विमर्श करो,**
**परंतु याद रखो कि बौद्धधर्म का संबंध सत्य के मूल से है,**
**टहनियों या पत्तियों से नहीं।**

**अधिकतर प्राणी ज्ञान के मणि-रत्न नहीं पहचानते,**
**यह तथागत-गर्भ में छिपा पड़ा है, खोज और प्राप्ति की प्रतीक्षा करते हुए,**
**छह इन्द्रियां और उनके छह विषय (आलम्बन) ही**
**जीवन का निर्माण करते हैं, जैसा कि वह है।**
**समष्टि रूप में यह माया है, परन्तु वस्तुतः ऐसा**

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



कुछ है ही नहीं जिसे माया भी कहा जाय,
ज्ञान के इस मणि-रत्न की परिपूर्ण
आभा मनुष्यता को प्रकाश देती है,
इसमें रंग और रूप नहीं, अ-रंग और अ-रूप भी नहीं है।

पांच प्रकार की चक्षुओं (भौतिक, दिव्य, प्रज्ञा, धर्म और बुद्ध-चक्षु) को विशुद्ध करो और पांच इन्द्रियों (श्रद्धा, वीर्य, स्मृति समाधि और प्रज्ञा) को प्राप्त करो।
आतर्क्य(निर्विकार) ध्यान के द्वारा ही यह संभव है,
दर्पण में परछाईं को स्वाभाविक तौर पर देखा जा सकता है।
परंतु पानी की सतह पर चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को पकड़ना असम्भव है।

ध्यान के अभ्यासी को सदा अकेले घूमना चाहिए,
जिन्होंने पाया है, वे निर्वाण के एक ही मार्ग पर चलते हैं,
उनमें से प्रत्येक का ढंग स्वाभाविक होता है, वह हृदय से साफ और सन्तोषी होता है,
चूंकि वह लोगों से विशेष आकर्षण नहीं चाहता,
इसलिए कोई दूसरा भी उसकी ओर विशेष ध्यान नहीं देता।

शाक्य-पुत्र (बौद्ध-भिक्षु) गरीब होते हैं, यह सब कोई जानते हैं;
परंतु उनकी गरीबी शरीर की है, उनका आध्यात्मिक जीवन गरीबी नहीं जानता;
भिक्षु का फटा-पुराना चीवर दुनिया को उसकी गरीबी दिखाता है,
परंतु उसका ध्यान जो दूसरों से अदृश्य है, उसका अनमोल खजाना है।

ध्यान का उत्तम अभ्यासी एक ही बार अपने मामले को सदा के लिए तय कर लेता है, सीधा परम सत्य पर पहुंच जाता है।
मध्यम कोटि का ध्यान-विद्यार्थी बहुत सीखना चाहता है और बहुत के बारे में ही सन्देह करता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



यदि तुम पूर्वग्रह के अपने फटे और और गन्दे कपड़े को उतार फेंको तो तुम अपनी सच्ची आत्मा को देख सकते हो,
बाहरी बातों की दौड़धूप में क्यों पड़ते हो?

दूसरे भले ही ध्यानी की निन्दा करें तो करते रहें, द्वेष करें तो करते रहें, जो मशाल से आकाश को जलाना चाहते हैं, वे अंत में थक कर बैठ जायेंगे;
ध्यानी उनकी निन्दा की बातें सुनता है और अमृत के समान उनका स्वाद लेता है;
अंत में सब कुछ पिघल जाता है और ध्यानी सहसा अपने को अतर्क्य (निर्विचार) समाधि में पाता है।

दूसरों के द्वारा अपनी निन्दा होते देखकर मुझे पुण्य प्राप्त करने का अवसर मिलता है।
क्योंकि मेरे निन्दक सचमुच मेरे अच्छे मित्र हैं;
गाली दिये जाने पर जब मेरे अंदर गाली देने वाले के प्रति पक्ष या विपक्ष की भावना पैदा नहीं होती,
तो मेरे अंदर सब प्राणियों के प्रति प्रेम और विनम्रता की शक्ति बढ़ती है,
जो अ-जात से उत्पन्न है।

आन्तरिक अनुभव में ही नहीं, उसकी व्याख्या में भी हमें परिपूर्ण होना चाहिए,
हमारा संयम ध्यान और प्रज्ञा दोनों में ही परिपूर्ण होना चाहिए,
न कि केवल एकांकी रूप से हम शून्यता-विहार में ही रहें;
हम अकेले ही इस स्थान पर नहीं आए हैं,
जितने गंगा के बालू-कण हैं, उतने ही बुद्ध इसी सार से निर्मित हुए हैं।

मैंने समुद्रों और नदियों को पार किया, पहाड़ों पर चढ़ा, और नदियों की बाढ़ें पार कीं,
ताकि मैं गुरुओं से मिल सकूं, सत्य की खोज कर सकूं, और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



ध्यान के रहस्य को जान सकूं,
परंतु जब से मैंने "सोकी" के मार्ग को पहचानने की योग्यता प्राप्त की,
तब से मैं समझने लगा हूं कि जन्म-मरण वह वस्तु नहीं है,
जिससे मेरा कुछ भी संबंध हो।

ध्यान का विद्यार्थी ध्यान में ही घूमता है,
ध्यान में ही बैठता है;
चाहे वह बोले या चुप रहे,
चाहे चले या शांत खड़ा रहे,
उसके मन का सार सदा सहज विश्राम में रहता है;
वह उस तलवार के सामने भी मुस्कराता है जो उसकी जान लेती है;
मृत्यु के समय वह शांत रहता है,
और विषैली वस्तुएं उसकी शांति को भंग नहीं कर सकतीं।

परंतु जब से मैंने अ-जाति के ज्ञान का साक्षात्कार किया, जो सहसा मुझ पर अवतीर्ण हुआ,
भाग्य के उतार और चढ़ाव, अच्छे और बुरे, सब अपनी शक्ति मुझ पर खो चुके हैं,
दूर पहाड़ों पर एक छोटी-सी कुटिया में मैं रहता हूं,
ऊंचे हैं वे पर्वत, गहरी है सघन वृक्षों की छाया और एक पुराने चीड़ के पेड़ के नीचे,
मैं अपने भिक्षुजनोचित निवास में शांत और संतुष्ट बैठता हूं,
पूर्ण शांति और ग्रामीण सादगी का यहां शासन है!

जो धर्म को समझते हैं, वे सदा सहज रूप से कार्य करते हैं,
संसार के अधिकतर आदमी "संस्कृत" में रहते हैं,
परंतु ध्यान का विद्यार्थी "अ-संस्कृत" में रहता है;
जो दूसरों को कुछ इस आशा में देते हैं कि बदले में उन्हें कुछ मिलेगा,
वे आकाश में तीर मार रहे हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



वह न सच्चे की तलाश करता है, न झूठे से अपने को अलग करता है,
वह साफ देखता है कि सभी द्वैत मिथ्या हैं और उनमें सचाई नहीं है।
शून्यता का अर्थ है एक पक्षीय न होना,
न शून्य, न अ-शून्य,
यही तथागत-ज्ञान का सच्चा रूप है।

जब योगी अपने मन को न समझ कर सिर्फ संयम का अभ्यास करता है,
तो सचमुच वह एक शत्रु को अपना प्यारा बच्चा समझने की गलती करता है।

हिमालय में हिमि नामक एक जड़ी होती है जो ऐसी जगह उगती है जहां और घासें नहीं उगतीं;
उस जड़ी को चर कर गायें विशुद्धतम दूध देती हैं,
मैं उस दूध को सदा पीता हूं।

एक ही मूल प्रकृति, पूर्ण और सर्वव्यापक,
सब प्रकृतियों में स्पन्दित होती है;
एक ही सत्यता, सर्वस्पर्शी, अपने अंदर सब सत्यताओं को समेटे हुए है,
एक ही चंद्रमा का प्रतिबिम्ब पड़ता है, जहां कहीं भी जल का विस्तार है,
और जल के अंदर के सब चंद्रमा एक ही चंद्रमा में, समाश्लिष्ट हैं।
सब बुद्धों का धर्म-काय मेरी अन्तर्सत्ता में प्रवेश करता है।

और मेरा स्वयं का अस्तित्त्व उनके साथ मिलकर एक हो जाता है।
(समाधि की) एक ही अवस्था में सारी अवस्थाएं समाई पड़ी हैं;
मन के सार में न रूप है, न विचार, न क्रिया;

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



एक उंगली को उठाने के पूर्व ही अस्सी हजार पावन उपदेश पूर्ण हो जाते हैं;
और एक पलक मारने के समय में ही असंख्य कल्पों के पाप नष्ट हो जाते हैं;
असंख्य नामों और सिद्धांतों से मेरे साक्षात्कार को कुछ वास्ता नहीं है।

मौन में तुम इसे जोर से बोलते हो, बोलने में तुम इसके मौन को प्रकट करते हो,
इस प्रकार करुणा का द्वार सब प्राणियों के हित के लिए खुलता है।

अनेक कल्पों से मैंने अपने जीवन में इसकी (महाप्रज्ञा की) शिक्षा ली है;
यह मेरी बेकार बात नहीं है और न मैं तुम्हें धोखा ही दे रहा हूं;
सोकी में मैंने इस उपदेश को पाया है,
और इसकी चिरस्थिति के लिए मैं धर्मध्वजा गाड़ रहा हूं;
यह उपदेश बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म के अलावा और कुछ नहीं है।

मन इन्द्रियों के माध्यम से काम करता है, तभी दृश्यात्मक जगत् का अनुभव होता है,
द्रष्टा और दृश्य का द्वैत ही दर्पण पर जमा हुआ मैल है,
जब इस मैल को हम धो डालते हैं तो प्रकाश चमकने लगता है;
इसलिए जब मन और दृश्यात्मक जगत् दोनों भुला दिये जाते हैं,
तो सार (तथता) अपने को प्रकट करता है।

अपनी बाल्यावस्था से ही मैं विद्वता की उपलब्धि के लिए उत्सुक रहा हूं,
मैंने सूत्रों, शास्त्रों और भाष्यों का अध्ययन किया है,
नामों और रूपों के विश्लेषण में मैं लगा रहा और मैंने यह नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



जाना कि थकावट क्या है,
परंतु अब मुझे पता चला है कि समुद्र में गोता लगाकर उसके रेत-कणों को गिनना सचमुच एक थकावट का काम है और बेकार भी;
मुझे लगा कि बुद्ध मुझे फटकार रहे हैं, जब मैंने "सूत्र" में उनके इन शब्दों को पढ़ा—"जो खजाने तेरे नहीं हैं, उन्हें गिनने से क्या लाभ?"
जो कुछ मैंने अतीत में पाया उस सबके लिए किया गया मेरा परिश्रम बेकार गया,
वह गलत था; अब मुझे इसका पूरा अनुभव हुआ है,
मैं वैसे ही बहुत साल तक घूमन्तू भिक्षु बना रहा और मुझे किसी उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हुई।

यदि बीमार एक अच्छे वैद्य के पास न जाकर वैसे ही वापस लौट आये,
तो वह चंगा किस प्रकार होगा?
इच्छाओं के लोक में रहते हुए ही ध्यान का अभ्यास करो,
अन्तः प्रज्ञा की सच्ची शक्ति तुम्हारे अंदर ही प्रकट होगी;
जब आग के बीच में कमल खिलता है तो फिर वह कभी नष्ट नहीं किया जा सकता।

जब हाथी गाड़ी को खींचता है तो उसके बड़े-बड़े पहिये घूमते हैं,
क्या सड़क बंद हो सकती है यदि एक मूर्ख झींगुर अपनी टांगों को फैलाकर बैठ जाये?

महान् गजराज खरगोश के संकीर्ण मार्ग पर नहीं चलता,
सम्यक सम्बोधि बौद्धिकता के संकरे दायरे से बाहर है;
सरकंडे के एक टुकड़े से आकाश को नापना बन्द करो।
यदि अब भी तुम्हें अन्तर्दृष्टि नहीं मिली,
तो इस क्षण मेरे पास आओ,
मैं तुम्हारा मामला तय करवा दूंगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



चीनी ध्यानी संतों के अलावा जापानी ध्यान-साधकों ने भी अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति गाथाओं के रूप में की है। इनकी संख्या बहुत अधिक है और सबका उल्लेख नहीं किया जा सकता। जापान में दाए-ओ नामक महात्मा हुए हैं, जो ध्यानकी शिक्षा लेने चीन गए थे। इन्होंने 'ध्यान' पर गाथाएं लिखी हैं। कुछ-एक पंक्तियां उद्धरणीय हैं:—

"स्वर्ग और पृथ्वी से भी पहले एक सत्य था;
इसका कोई रूप नहीं, और नाम भी नहीं है,
आंखें इसे देख नहीं सकतीं;
इसके कोई शब्द नहीं, जिन्हें कान सुन सकें,

इसको मन या बुद्ध कहना इसके स्वभाव को बिगाड़ना है,
क्योंकि तब यह आकाश-कुसुम के समान काल्पनिक हो जाता है,
यह मन नहीं है, बुद्ध नहीं है;

अपने शब्दों को समाप्त करो, अपने विचारों को खाली करो,
तब शायद तुम इस एक सार को पहचान सकोगे।

सब प्राणी मूलतः बुद्ध हैं :
यह बरफ और जल के समान हैं,
जल के बिना बरफ नहीं है;
प्राणियों से बाहर हम बुद्ध को कहां पाते हैं?
यह न जानते हुए कि सत्य कितना समीप है
लोग इसे दूर खोजते हैं, कितने अफसोस की बात है।
उनकी हालत ऐसी है जैसे जल के बीच में खड़ा कोई
प्यासा आदमी पानी के लिए चिल्लाये!
वे उस धनिक के पुत्र के समान हैं,
जो गरीबों में भटक गया है।

ध्यान की प्रशंसा करने के लिए हमारे पास शब्द नहीं हैं,
महायान में उसका अभ्यास किया जाता है।
दान, शील आदि की पारमिताओं के गुण,
बुद्ध के नाम का आह्वान, पाप-प्रायश्चित और तपस्या के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



**साधन,**
**और दूसरे अनेक पुण्यकारी कृत्य,**
**ये सब ध्यान के अभ्यास में से ही उत्पन्न होते हैं।**
**जो अपने अन्दर ध्यान करते हैं,**
**वे अपने स्व-भाव (तथता) के सत्य की गवाही देते हैं।**

**और तब यह धरती ही उनके लिए विशुद्धि का पुण्डरीक-लोक बन जाती है,**
**और यह शरीर ही बुद्ध का शरीर हो जाता है।**

इस प्रकार गाथाओं के रूप में आध्यात्मिक साहित्य उपलब्ध जिसमें ध्यानी संतों के अनुभव स्पंदित हुए हैं। चीन और जापान दोनों देशों में ही इस प्रकार की वाणियां गाथाओं के रूप में ध्यानी महात्माओं के मुख से मुखरित हुई हैं। अनेक गुरु-शिष्य संवादों को प्रश्न-उत्तर के रूप में साहित्य में अंकित किया गया है। और कई बार बड़े ऊटपटांग ढंग से सिद्ध गुरुओं ने शिष्य को ध्यान के मर्म को समझाने की कोशिश की। आठवीं शताब्दी के प्रसिद्ध ध्यानी संत और दार्शनिक म-त्सु से एक व्यक्ति ने पूछा कि बोधि धर्म का भारत से चीन आने का उद्देश्य क्या था? म-त्सु ने उसकी छाती पर ऐसा धक्का मारा कि वह उल्टा धरती पर गिर पड़ा। कहा गया है कि इससे उसकी अंतर्दृष्टि जग गई और असंख्य समाधियों के रहस्य उसे पता लग गए। ताली बजाता हुआ और जोर से हंसता हुआ वह कृतज्ञता पूर्वक गुरु को प्रणाम कर चला गया। कभी-कभी गुरु साधारण फटकार से ही शिष्य को जगा देते हैं। कभी-कभी कोई भी उत्तर न देकर ध्यानी गुरु केवल मौन रह जाते हैं। गुरु इस ढंग से उत्तर देते थे कि पूछने वाले के हृदय पर सत्य की झलक का अवतरण हो। सत्य का अनुभव स्वयं अपनी अंतःकरण में करे। गुरुओं के शाब्दिक उत्तरों या इशारों से नहीं, वे तो केवल साधन होते थे। सत्य की झलक साधक के मन पर अपने चिंतन से ही पड़ती है जबकि साधक उच्च से उच्चतर चेतना-स्तरों की ओर अग्रसर होता है। बड़ा विचित्र व्यवहार था इन ध्यानी संतों का। एक बार की बात है कि जब एक गुरु से यह पूछा गया कि बुद्ध क्या है तो उसने उत्तर दिया कि बिल्ली खूंटे के ऊपर छलांग मार रही है। इसी प्रकार इस प्रश्न के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


उत्तर में एक अन्य गुरु ने कहा—दुल्हन गधे के ऊपर बैठी हुई है और उसकी सास लगाम पकड़े हुए है। ध्यानी संतों में बनावट बिल्कुल नहीं थी और न ही वे शब्दाडम्बर में विश्वास रखते थे। उनके वचन और संकेत मर्म छिपाए हुए रहते हैं और चिंतन करने पर उनमें तत्त्व मिलता है।

एक बार ध्यानी संत के पास एक शिष्य आया और उसने उनसे कहा कि क्या कृपा कर मुझे कुछ उपदेश करेंगे? गुरु ने उससे पूछा, क्या तुमने नाश्ता कर लिया है अथवा नहीं? हां भन्ते ! मैं नाश्ता कर चुका हूं तो अभी अपने बर्तनों को मांजो। कहा जाता है कि इस उत्तर के परिणामस्वरूप शिष्य को अंतर्बोध की प्राप्ति हो गई। ध्यानी संतों ने मन के प्रेशन पर बड़ा जोर दिया है। द्वारहीन द्वार उन्होंने ध्यान को कहा है।

**महामार्ग में दरवाजे नहीं हैं,**
**फिर भी कितने एक दूसरे को काटते हुए हैं इसके रास्ते!**
**एक बार इस सरहद्दी दर्रे को पार हुए नहीं**
**कि राजकीय एकान्त का आनंद लेते हुए**
**तुम इस विश्व में कहीं भी घूम सकते हो।**

जापानी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि बशो महान् गूढ़वादी ध्यानी कवि थे। रात-दिन सटोरी अनुभव में रहते थे। ध्यान उनके निश्वांस में था। वे प्रकृति प्रेम, सादगी, पवित्रता और अकिंचनता की भावनाओं से ओत-प्रोत थे।

बुद्धों के उपदेश की गंभीरता का लिखित भाषाओं से कोई संबंध नहीं है। अतः भाषा और भाषाओं के ज्ञान से अनभिज्ञ व्यक्ति भी ध्यान के मर्म को समझ सकता है। वास्तविक समझना तो अपने मन का ही है। जिसने उसे समझ लिया उसके अंदर प्रज्ञा की शक्ति प्रगट होने लगती और फिर ध्यान अनुभव तो उसका अपना ही है।

साधना ध्यान प्रक्रिया का प्राण है। अदम्य में मनोबल का विकास कर अपने संपूर्ण व्यक्तित्व को सत्य की खोज में लगा देना, खपा देना ही ध्यानी जीवन का उद्देश्य है। प्रत्यक्ष जीवन का यह साधना निषेध नहीं करती बल्कि जिसका उसमें साक्षात्कार न हो सके उसे सत्य ही नहीं मानती। ध्यान संप्रदाय परिकल्पनात्मक नहीं, भावुकतामय नहीं, बल्कि सीधा और व्यावहारिक है। जो कुछ बोलता है डंडे के जोर से बोलता है, जो कुछ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



करता है डंडे के जोर से करता है। डंडा अर्थात् सीधा अनुभवज्ञान, जो विकल्प नहीं जानता, भय नहीं जानता और जिसकी मार भयंकर होती है, प्रज्ञा, निरपेक्ष, निर्विकल्प ज्ञान, जो शून्यता-रूप है, ध्यानी साधक का लक्ष्य है, परंतु इसकी खोज वह इस सापेक्ष जगत में ही करता है। सत् असत् के संपूर्ण द्वैतवादों और विकल्पों का उससे कठोर शत्रु और कोई नहीं है। उसके लिए ध्यान एक पथ ही नहीं, स्वयं मुक्ति-स्वरूप भी है। अधूरी बातों और मार्गों में उसका विश्वास नहीं है और न दूसरों के अनुभवों से ही वह अपने को तृप्त मान सकता है। ज्ञान उसके लिए "प्रत्यात्मवेद्य" होना चाहिए और इस ज्ञान को प्राप्त करके भी वह उसकी अभिव्यक्ति के लिए लालायित नहीं होता, क्योंकि उसके लिए जीवन ही सत्य की सच्ची अभिव्यक्ति है और मौन ही सबसे बड़ी वाणी है। अपने अनुभव का विज्ञापन करना पागलपन है। एक ध्यानी संत का प्रकरण है कि एक बार उसने एक साधक को साधना की विधि बतलाई। उसने कहा, "शास्त्र के प्रवचन और अध्ययन को कुछ समय के लिए छोड़ो। दस दिन के लिए अपने कमरे में बंद हो जाओ। गर्दन सीधी कर, शांत होकर बैठो और अपने विचारों को एकाग्र करो। अच्छे-बुरे के द्वन्द्वात्मक तर्क को छोड़कर अपने आंतरिक संसार को देखो।" साधक भिक्षु जो स्वयं परम विद्वान उपदेशक था, रात भर इस आदेश के अनुसार ध्यान में बैठा रहा। प्रातः चार बजे के करीब उसे बांसुरी का-सा शब्द सुनाई दिया और उसके चित्त ने समाधि-सुख का प्रथम स्पर्श किया। प्रातःकाल उठकर उसने गुरु का दरवाजा खटखटाया। गुरु ने उसे फटकारते हुए कहा, "मैं तो चाहता था कि तू सत्य में अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर उसका रक्षक और प्रेषक बनेगा। तू शराब पीकर सड़क पर क्यों खर्राटे ले रहा है?" ध्यान संप्रदाय की मान्यता है कि हमारे मौन में सत्य बोलता है और जब हम बोलते हैं तो चुप हो जाता है। ध्यान-संप्रदाय के अनेक उच्चकोटि के साधकों ने कुछ नहीं लिखा, कुछ ने लिखकर नष्ट कर दिया। अनेक ऐसे संत हुए जिन्होंने अपनी अन्तर्सत्ता में लीन रहते हुए जीवन व्यतीत किया और अपने समाज में प्रकट तक नहीं किया। उन्हें एक अतीत अनुभव प्राप्त था, इस जगत् की सच्चाई से एक बड़ी सच्चाई उनके सामने थी। तभी यह संभव हो सका। फिर भी यह आश्वासन की बात है कि कुछ संतों ने अपने साक्षात्कृत गूढ़

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


अनुभवों को "सैना-बैना" के द्वारा समझाने का प्रयत्न भी किया है और इस प्रकार अनायास रूप से हमें साहित्य और कला की कुछ उच्चतम कृतियां मिल गई हैं। आध्यात्मिक अनुभव और सत्य के रस से भरपूर ध्यानी साधकों का यह वाणी-साहित्य अध्यात्म-जिज्ञासुओं की पिपासा और परिश्रान्ति को शांत करने में समर्थ है। अपने मन के सार को खोजने वाला प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, गृहस्थ हो या प्रव्रजित, इसके सत्य को स्वयं अपनी प्रज्ञा से देख सकता है।

अभ्यास के बिना ध्यान में कुछ संभव नहीं है और चित्त का अभ्यास ही ध्यान है। ध्यान के आचार्यों एवं सिद्ध पुरुषों ने अपने-अपने अनुभवों के आधार पर साधना के संबंध में बहुत कुछ स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से कहा है। जिसका विवरण हम यहां देंगे। बोधि धर्म में सत्य में प्रवेश के दो द्वार बताए हैं—एक ज्ञान या उच्च अंतर्बोध के द्वारा और दूसरा कर्म या व्यावहारिक जीवन के द्वारा। ज्ञान या उच्च अंतर्बोध के संबंध में उन्होंने कहा है—"मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि सब प्राणियों में एक ही सत्य निहित है, वह सदैव बाहरी विषयों से अवरुद्ध रहते हैं और इसलिए मैं उनसे असत्य को त्याग कर सत्य को ग्रहण करने का आग्रह करता हूं। कर्म या व्यावहारिक जीवन के संबंध में बोधि धर्म में कहा है कि उसमें चार कृत्य सम्मिलित हैं—१. साधक को सब कठिनाइयों को यह सोचकर सहना चाहिए कि मैं अपने पूर्व जन्मों के कुकर्मों का फल भोग रहा हूं। २. उसे अपने भाग्य से संतुष्ट रहना चाहिए चाहे दुख हो या सुख। ३. उसको किसी वस्तु की तृष्णा नहीं करनी चाहिए। ४. उसको धर्म के अनुसार जिसका स्वरूप स्व-भाव सत्य और शुद्धि है, आचरण करना चाहिए। बोधि धर्म की साधना विधि और तत्त्वज्ञान का पूरा सार संकलन एक गाथा के द्वारा प्रदर्शित किया गया है जो इस प्रकार है:—

**"शास्त्रों से बाहर एक विशेष संप्रेषण;**
**शब्दों और वर्णों पर कोई निर्भरता नहीं;**
**मनुष्य की आत्मा की ओर सीधा संकेत;**
**अपने ही स्व-भाव के अंदर देखना और बुद्धत्त्व प्राप्त कर लेना।"**

बोधि-धर्म ने समग्र जीवन-साधना की शिक्षा अपने शिष्यों को दी और उन्हें साफ-साफ यह बताया कि यह मार्ग मन की शांति को प्राप्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



करने का है। यह मार्ग दुनिया में व्यवहार करने का है। यह मार्ग अनासक्ति भाव से कर्म करने का है। यह मार्ग तुम्हारे अपने आप के साथ सामंजस्य पूर्वक रहने का है।

निर्विचार समाधि क्या है, यह पूछे जाने पर एक धर्मनायक ने इस प्रकार उत्तर दिया—जब हम प्रज्ञा के द्वारा आत्म निरीक्षण करते हैं तो हम अंदर बाहर प्रकाशित हो जाते हैं और अपने मन को जानने की स्थिति में हो जाते हैं। अपने मन को जानना विमुक्ति को प्राप्त करना है और विमुक्ति को पाना ही प्रज्ञा-समाधि है जो निर्विचार-समाधि कहलाती है।

निर्विचारता आसक्ति से विमुक्त, चित्त से सब वस्तुओं को देखना और जानना है। बुद्ध की यह विचारधारा गीता के निष्काम कर्मयोग या अनाशक्ति से हम अपने मन को विमुक्त कर लें तो मार्ग साफ हो जाता है, क्योंकि जो विचार हमें इंद्रिय विषयों में फंसाता है वह क्लेश है और जो विचार हमें आसक्ति से मुक्त करता है वह ही बोधि है। अनासक्ति को धर्मनायक आधारभूत सिद्धांत मानते हैं। अतः 'न क्वचित् प्रतिष्ठितं चित्तम् उत्पादयितव्यम्' से तात्पर्य मन के अनासक्ति-योग के अभ्यास से ही है, यह 'मंच-सूत्र' के पृष्ठ-पृष्ठ पर स्पष्ट होता है ! बाह्य विषयों की आसक्ति से विमुक्त होना ही ध्यान है और आंतरिक शांति प्राप्त करना समाधि है।

अन्तःसाधना पर जोर देते हुए हुइ-नेंग् ने कहा है, हमारा यह भौतिक शरीर एक नगर के समान है। हमारी आंखें, कान, नाक और जीभ इसके दरवाजे हैं। पांच दरवाजे बाहरी हैं जबकि अंदर का दरवाजा विचार है। मन भूमि है। मन के राज्य में निवास करने वाला 'मन का सार' ही राजा है। जब मन का सार अंदर रहता है तो राजा अंदर है और हमारे शरीर और मन स्थित रहते हैं। जब मन का सार बाहर चला जाता है तो राजा बाहर चला जाता है और हमारे शरीर और मन नष्ट हो जाते हैं। मन के सार के अंदर ही हमें बुद्धत्त्व के लिए प्रयत्न करना चाहिए और हमें इसे अपने से बाहर नहीं खोजना चाहिए। करुणावान् होना ही अवलोकितेश्वर है, पवित्र जीवन के लिए योग्य बनना ही शाक्यमुनि है। समता और ऋजुता ही अमिताभ है।

संसार में रहना परंतु उसकी धूल से आसक्ति पैदा न करना यही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


सच्चे ध्यान-विद्यार्थी का मार्ग है। सहजता और अनासक्ति ध्यान का सार है। कर्म में अकर्म देखना, साधना में असाधना देखना, अर्थात् इस प्रकार साधना करना कि साधक को पता ही न चले कि वह कुछ कर रहा है, बिना उसे पता लगे ही साधक अनायास रूप से लक्ष्य तक पहुंच जाय यही है बिना दरवाजे के दरवाजा या द्वारहीन सरहद्दी दर्रा जिसे पार कर ध्यानी साधक सत्य साक्षात्कार के विश्राम में प्रवेश करता है। अंजन में ही निरंजन को देखने की जो बात हमारे देश में संतों ने कही है वह ध्यान संप्रदाय की साधना मार्ग से पूरी सदृश्यता रखता है। ध्यानी साधक परामर्श देते हैं कि इच्छाओं के इस लोक में रहकर ही साधना करो। इस जलते घर में ही धर्मराज को देखो, यह संभव है। इसका साक्ष्य देते हुए कबीर कहते हैं कि हमने तो औघट में ही घाट को पा लिया है।

ध्यान-योगी किस प्रकार अमने मन पर वशित्त्व प्राप्त करते हैं, इसकी अवस्थाओं को दिखाते हुए ध्यान संप्रदाय की परंपरा में जिसकी सृजनशील कलात्मिक अभिव्यक्तियां महान हैं और जिनके समान कोई चीज हमें अपनी संत-परंपरा में नहीं मिलती, कुछ तस्वीरें प्रचलित हैं जिनका उल्लेख संख्या में १० हैं और उनका शीर्षक है "बैल के शिक्षण संबंधी दस तस्वीरें।" बैल यहां मन का प्रतीक है। मन के लिए बैल के प्रतीक का प्रयोग गुरु गोरखनाथ ने भी किया है और कबीर ने भी। यह एक अज्ञात जापानी चित्रकार के द्वारा जो कि बुद्ध की ध्यान-पद्धति में आस्था रखता था, के द्वारा चित्रित की गई हैं। इन दस तस्वीरों के द्वारा ध्यान प्रक्रिया के अनुसार मन के संयम की अवस्थाओं के चित्रण के द्वारा मनुष्य के आध्यात्मिक विकास को दिखाया गया है। □

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

## १. अ-संयमित

अपने सींगों को भयंकर रूप से हवा में उठाये हुए पशु हांपता हुआ दौड़ रहा है,
पर्वतीय मार्गों में मदमस्त दौड़ता हुआ वह दूर से दूर चला जाता है,
घाटी के प्रवेश-द्वार के उस पार एक काला बादल छाया है,
कौन जानता है कि कितनी बढ़िया और ताजी जड़ी-बूटियों को इस जानवर ने जंगली खुरों के नीचे कुचल डाला है!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

## २. संयम का आरम्भ

मेरे पास तिनकों की बनी एक रस्सी है और इसे मैं उसके कुओं में होकर डाल देता हूं,
एक बार उसने भागने का उन्मत्त प्रयत्न किया नहीं कि बस उस पर सख्ती से कोड़े पर कोड़े बरसते हैं;
जंगली और अ-शासित प्रकृति में जितनी भी शक्ति है, उससे वह शिक्षण का प्रतिरोध करता है,
परंतु देहाती रखवाला भी अपनी कस कर पकड़ी हुई रस्सी को कभी ढीली नहीं करता और अपने कोड़े को भी सदा तैयार रखता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

## ३. बन्धन में डाल लिया

क्रमशः बन्धन में डाल लिया गया पशु अब नाक से घसीट लिए जाने में सन्तुष्ट है,
नदी को पार करते हुए या पर्वतीय मार्ग में चलते हुए वह अपने रखवाले के प्रत्येक पग का अनुसरण करता है,
परंतु रखवाला उसकी रस्सी को अभी तक अपने हाथ में कस कर पकड़े हुए है और कभी उसे छोड़ता नहीं,
थकावट की कुछ भी पर्वाह न करते हुए वह सारे दिन चौकस रहता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


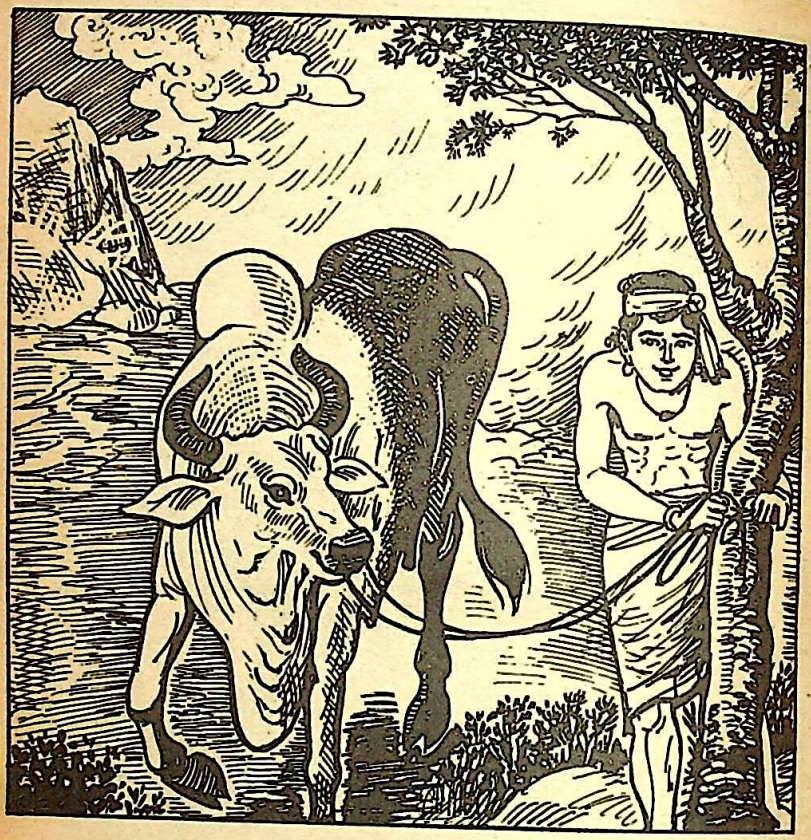

## ४. मोड़कर सामने किया

अनेक दिनों के लम्बे प्रशिक्षण के बाद नतीजा मालूम पड़ने लगता है और पशु को मोड़कर सामने कर लिया गया है, जंगली और अ-शासित प्रकृति अंत में शिक्षित कर ली जाती है,

अब जानवर सीधा हो गया है।

परंतु अभी रखवाले ने उसमें पूरा विश्वास नहीं किया, तिनकों की रस्सी को वह अभी पकड़े हुए है और उससे उसने बैल को पेड़ में बांध दिया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


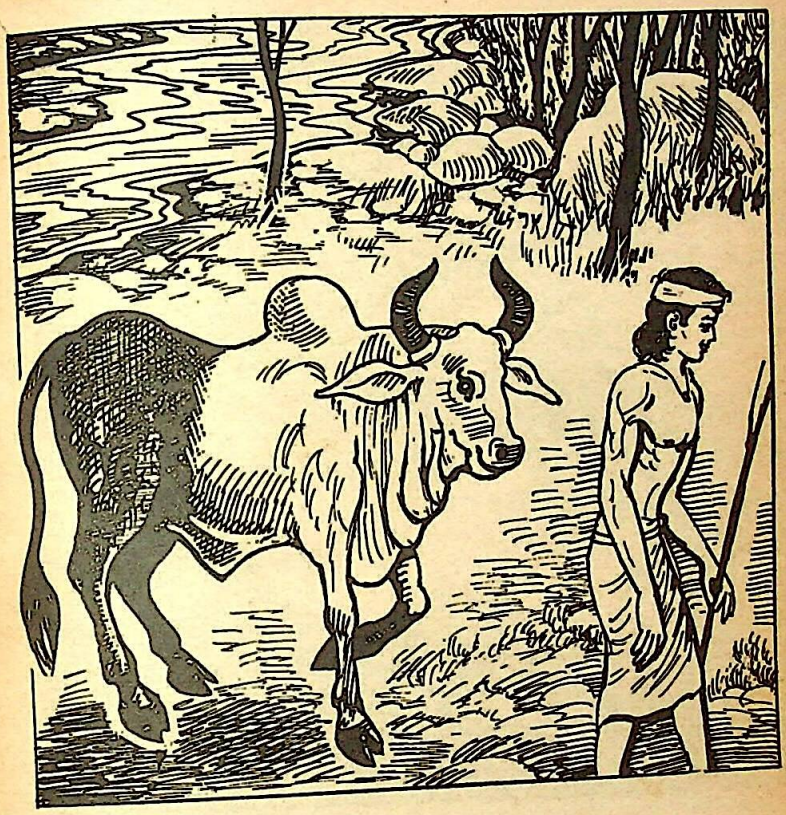

## ५. पालतू बनाया

हरे बेंत के पेड़ के नीचे और पुरातन पर्वतीय नदी के किनारे अब बैल को स्वतंत्र रूप से छोड़ दिया गया है, वह अपनी इच्छानुसार कुछ भी करे,
सन्ध्या के समय जब भकभूंदरा कोहरा चरागाह पर छा जाता है,
तो बालक (रखवाला) अपने घर की ओर चल देता है और बैल धीरे-धीरे उसका अनुसरण करता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


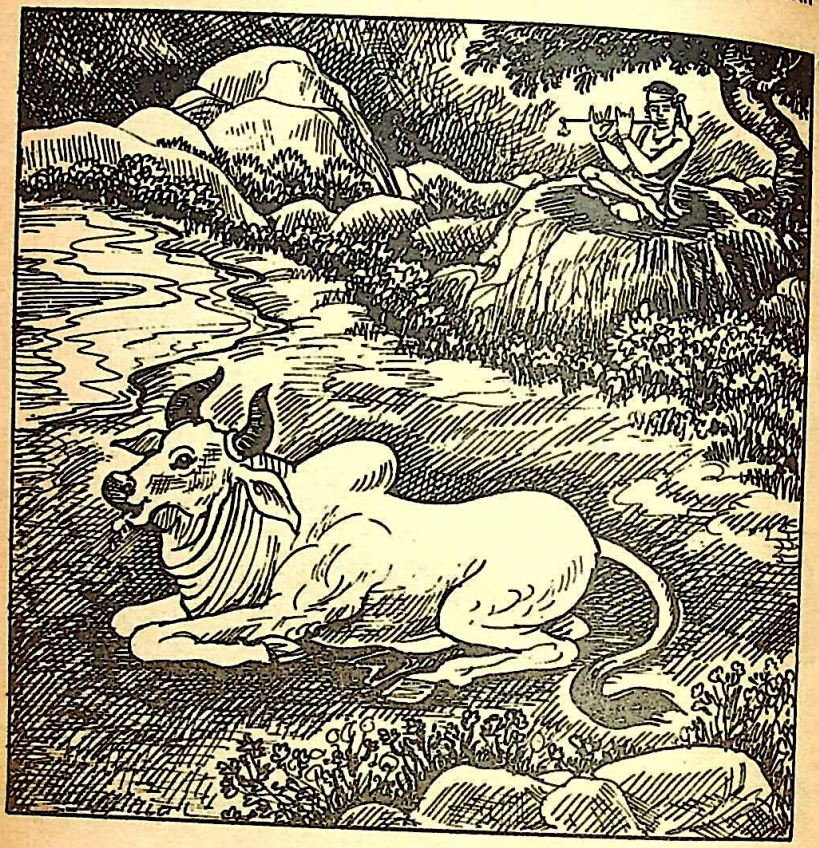

## ६. निर्विघ्न

हरे खेत में पशु सन्तोषपूर्वक लेटा हुआ है, अपने समय को आराम के साथ गुजारते हुए,
अब किसी कोड़े की आवश्यकता नहीं रही, किसी नियन्त्रण की जरूरत नहीं रही,
लड़का (रखवाला) भी चीड़ के पेड़ के नीचे बेफिक्री से बैठ जाता है,
शांतिपूर्वक बांसुरी बजाते हुए, आनंद से परिपूरित!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



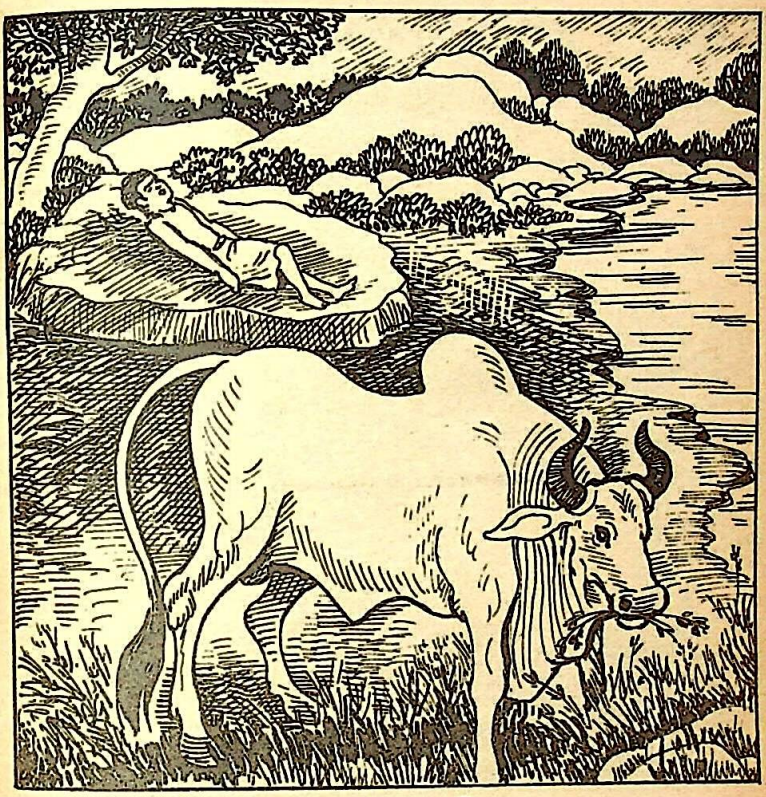

## ७. यथेच्छकारिता

बसन्त ऋतु में नदी सन्ध्या के प्रकाश में धीमी-धीमी बहती है
और उसके किनारे बेंत के पेड़ों की पंक्तियां फैली हैं,
धुंधले वातावरण में चरागाह की घास और घनी नजर आती है;
जब भूख लगती है तो बैल घास खा लेता है, जब प्यासा होता है तो पानी पी लेता है,
समय मजे में गुजरता है,
रखवाला घंटों तक चट्टान पर बैठा औंघता रहता है और उसे कुछ पता नहीं कि उसके चारों ओर क्या हो रहा है!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


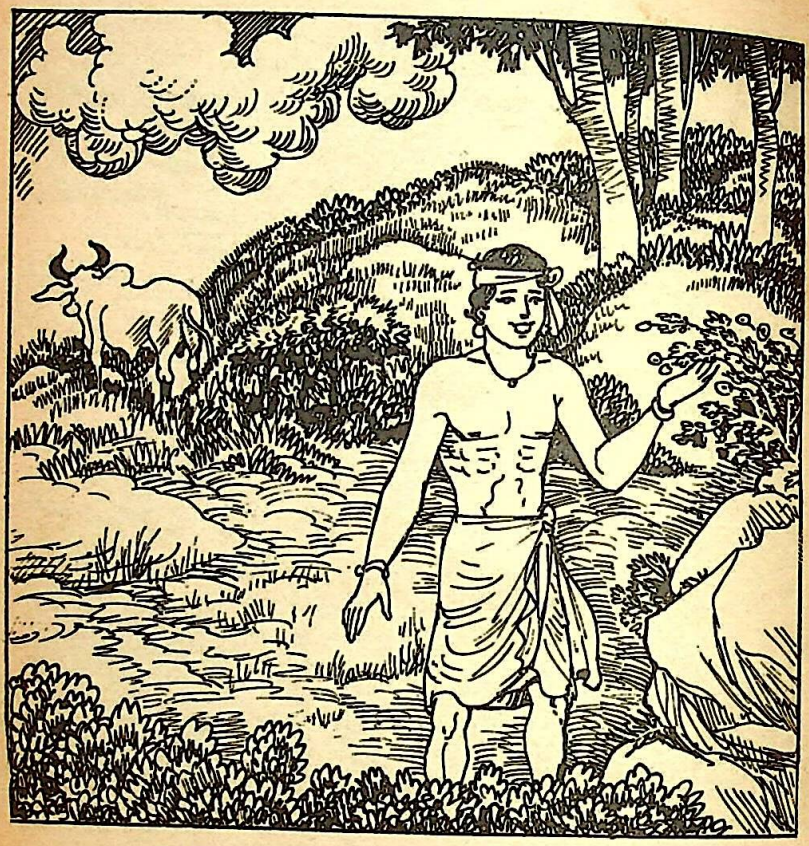

## ८. सब कुछ भूल गया !

अब पशु पूरी तरह सफेद रंग का हो गया है, उसके ऊपर सफेद बादल छाये हैं;
आदमी पूरी तरह आराम में है और बिलकुल निश्चिन्त!
चांदनी से बिंधे बादल अपनी सफेद छाया नीचे डाल रहे हैं,
सफेद बादल और चमकती चांदनी—दोनों अपने गमन-मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

## ९. एकाकी चांद!

अब पशु नहीं रहा, रखवाला अपने आपका स्वामी है,
वह उस एकाकी बादल के समान है, जो पर्वत की चोटियों पर धीमी गति से संचरण करता है,
हाथों से तालियां बजाता हुआ वह चांदनी में आनंदपूर्वक गाता है,
परंतु याद रक्खो कि अभी एक आखिरी दीवार उसके घर के मार्ग को रोके हुए है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



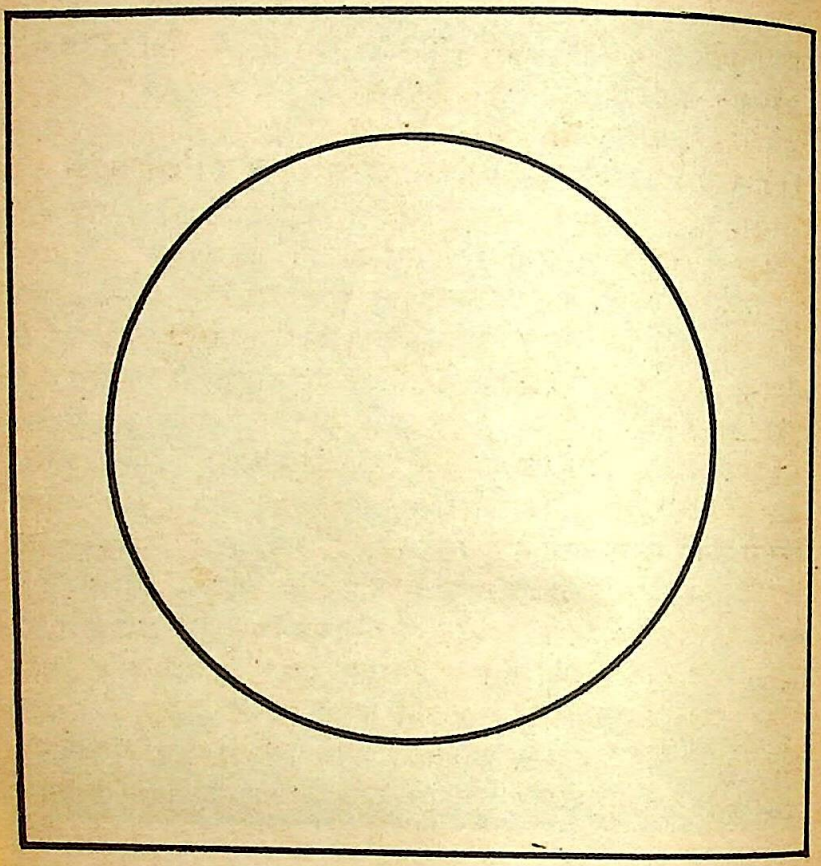

## १०. दोनों गायब !

आदमी और पशु दोनों गायब हैं, उनके कोई चिन्ह बाकी नहीं रहे,
चमकती चांदनी सूनी और परछाईं रहित है,
फिर भी अनन्त वस्तुएं उसमें निहित हैं,
यदि कोई इसके अर्थ को पूछे,
तो खेत में हरी कुमुदिनियों को देखो और इसकी ताजी सुगंधित हरियाली को !

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



ध्यान-संप्रदाय की शिक्षा पद्धति में 'को-आन्' का बड़ा महत्त्व है। 'को-आन्' इस प्रकार की समस्या होती है, जिसे गुरु शिष्य को सुलझाने के लिए देता है। उदाहरणतः दो हाथों को आपस में मिलाने पर शब्द होता है। एक हाथ का शब्द क्या है। यह एक 'को-आन्' है। इसी प्रकार इसे डाल दो, यह भी एक 'को-आन्' है। जब तुम्हारी लाश जला दी जाय और राख चारों ओर बखेर दी जाय तब तुम कहां हो? यह भी एक 'को-आन्' है। ऐसे सैकड़ों 'को-आन्' ध्यान साहित्य में भरे पड़े हैं जो ध्यानी गुरुओं के अनुभव से निकले हुए हैं और उन पर मनन करते करते अंतर्बोध पैदा होता है जिसे जापानी भाषा में सटोरी की प्राप्ति कहते हैं। सटोरी एक प्रकार का अंतर्ज्ञान ही है। सत्य का भासना या उसकी झलक भी हम उसे कह सकते हैं। या साधारण मनुष्य के धरातल पर बोधि की क्षणिक प्राप्ति भी। स्वयं भगवान बुद्ध अपने शिष्यों को कभी कुछ ऐसी बात कह देते थे जिससे उनमें मनन करने से विवेक जागृत हो जाता था और एक विलक्षण अंतर्बोध या अनुभूति। उदाहरणतः भगवान ने चूलपंथक को एक बार एक कपड़े का टुकड़ा देकर उससे कहा था—"अच्छा भिक्षु, इसे हाथ से मलते रहो, "धूल दूर हो जाय, धूल दूर हो जाय" "इस प्रकार बार-बार पाठ करो।" इसी प्रकार अपने एक और शिष्य को भगवान बुद्ध ने कहा था—"देखने में केवल देखना ही चाहिए, सुनने में केवल सुनना ही चाहिए। गुरु की वाणी में कुछ ऐसी शक्ति होती है कि वह अनायास शिष्य के विवेक व अंतरात्मा को स्पंदित कर देती है। बुद्ध के एक शिष्य को जिसका नाम भद्रपाल था, स्नान करते समय सटोरी अनुभव हुआ था।

ध्यान संप्रदाय की गम्भीर अंतःसाधना से कुछ नीचे उतरकर उसके एक सामाजिक हल्के पक्ष पर आते हैं जिसका भी व्यवहार ध्यानी साधक करते हैं। वस्तुतः ध्यान साधना में भारी या हल्के का भेद ही नहीं है। उसके लिए जीवन का प्रत्येक व्यापार और प्रत्येक क्रिया गम्भीर से गम्भीर भी है और साथ ही एक बड़ा मजाक भी। यही कारण है कि एक ओर गम्भीर ध्यान की साधना है और दूसरी ओर चाय पान का अनुष्ठान। जापान में चाय का घनिष्ठ रूप से ध्यान के साथ संबंध है। एक ध्यानी साधक ने तो यहां तक कहा है कि चाय का स्वाद और ध्यान का स्वाद एक समान है तत्काल प्रभाव दिखाने वाले। वह ज्ञान ही क्या जिसका तत्काल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अनुभव न हो। इसलिए चाय के साथ ध्यान अनुभव की समानता है। प्रत्येक ध्यान विहार के अहाते में बनी झोंपड़ी या कोठरी होती है जिसे शून्यता-कक्ष कहा जाता है। यहीं चाय बनाई जाती है और बड़ी सादगी और उपचार के साथ परोसी जाती है। और तत्पश्चात् ध्यान किया जाता है। ध्यान-संप्रदाय में कोई कर्मकाण्ड नहीं परंतु यदि कोई कर्मकाण्ड है तो यह चाय की रस्म ही है और इसने जापानी संस्कृति में अपना एक अलग स्थान बना लिया है और उसकी सौन्दर्य-भावना और कला-प्रियता में वृद्धि की है। चाय और 'ध्यान' का प्रकरण बड़ा मनोरंजक और विस्तृत है परंतु यहां अत्यंत संक्षिप्त रूप में ही कुछ कहा जा सकता है।

ध्यान-संप्रदाय के इतिहास के आरंभ से ही चाय-संस्कार की प्रथा चीन और जापान में प्रचलित रही है। यहां तक कि चाय की पत्ती की उत्पत्ति तक का संबंध बोधिधर्म के जीवन से एक कल्पित गाथा द्वारा जोड़ दिया गया है। कहा गया है कि एक बार बोधि धर्म ध्यान में लीन थे। अचानक उनकी आंखों में झपकी लग गई। तत्काल उस उग्र ध्यान-योगी ने, या कि कहिये हठयोगी ने, अपनी आंखों की पलकों को काटकर धरती पर गिरा दिया। वही चाय की पत्तियां बनकर उगीं। यही कारण है कि आज भी जो उन्हें पीता है, उसकी आंखों में झपकी नहीं लगती और वह देर तक ध्यान कर सकता है तथा उसकी आत्मा पवित्र हो जाती है। इस कथा में ऐतिहासिक सत्य तो क्या हो सकता है, परंतु यह ऐतिहासिक रूप से सत्य बात है कि चाय का आविष्कार बौद्ध भिक्षुओं ने पहली-दूसरी शताब्दी ईसवी में दक्षिणी चीन में किया था। आठवीं शताब्दी ईसवी में यह उत्तरी चीन में पहुंची और उसी समय तिब्बत में। जापान में सन् बारह सौ ईसवी में एक बौद्ध भिक्षु ने ही इसे प्रसारित किया। जापान में ध्यान-संप्रदाय के अनेक विहार हैं जिनमें से कुछ को तो महान ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त है। यहां भिक्षुओं का जीवन अत्यंत व्यवस्थित रूप से संचालित होता है और ध्यान का नियमित अभ्यास किया जाता है। यहां विद्यार्थियों को शिक्षित किया जाता है और साथ ही शारीरिक श्रम भी उन्हें करना होता है और समाज सेवा का भी प्रशिक्षण मिलता है। प्रत्येक ध्यान मंदिर में एक अलग ध्यान भवन होता है जिसे 'ज़ेण्डो' कहा जाता है। बाग और उपवन भी इस ध्यान मंदिर में होते हैं। साधारण जनता यहां

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



जाती है और ध्यान करती है। अपने दैनिक जीवन में प्रयोग करने के लिए मानसिक शांति और स्वस्थता यहां मिलती है। औद्योगिक जीवन का भार हलका होता है। इस प्रकार उच्च साधकों और साधारण लोक समाज दोनों की आध्यात्मिक शिक्षा और मानसिक शांति के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान ध्यान-संप्रदाय अपने जीवंत रूप में आज जापान में दे रहा है।

साधना और तत्त्वज्ञान की दृष्टि से तीन प्रकार की विचारणाएं क्रमिक रूप से बौद्ध धर्म के विकास में मिलती हैं। पहली विचारणा जो मूल बुद्ध धर्म की है, इस भव को क्लेश के रूप में देखती है। इस विचारणा के अनुसार साधक भव अर्थात् संसार में क्लेश अनुभव करता है और तीव्र आध्यात्मिक पुरुषार्थ करता है और भव के निरोध-स्वरूप निर्वाण का साक्षात्कार करता है। दूसरी विचारणा के अनुसार साधक भव से, आवागमन से खिन्न नहीं होता और उसमें रहते हुए उसके क्लेशों को अनुभव करते हुए मन की साधना करता है और प्राणी सेवा आदि करते हुए अपने विचारों को बोधि के रूप में परिवर्तित कर देता है। लेकिन एक तीसरी विचारणा जो कि उत्तरकालीन महायान के विकास से आई, उसके अनुसार चित्त के संस्कारों को नष्ट कर देने से बोधि नहीं मिलती बल्कि उसका उपाय है मनुष्य की शांत चेतना का अनंत बुद्ध चित्त या बुद्ध स्वभाव के साथ सीधा अभेद और अद्वैत साक्षात्कार कर लेना। यह अंतिम विचारणा ध्यान-संप्रदाय की साधना और तत्त्वज्ञान से मेल खाती है। और ऐसा कहा जा सकता है कि अद्वैत वेदांत की साधना भी इसके बहुत समीप है। अनंत बुद्ध स्वभाव जिसे मूल मंत्र, एक मन, मन का सार, निरपेक्ष, अपरिच्छिन्न मन या तथता भी कहा गया है और विश्वात्मा या परमात्मा कहने भर को अलग अलग हैं, वैसे तो अद्वैत ज्ञान में विश्व की संपूर्ण विचारणाएं ही परिसमाप्त हो जाती हैं। ध्यान-संप्रदाय की अद्वैत-निष्ठा वेदांत की अपेक्षा कहीं अधिक और पूर्ण है। उसमें प्राणों की शक्ति भी अधिक है और जीवन और समाज से वह अपेक्षाकृत अधिक सम्बद्ध भी है। ध्यान-संप्रदाय यह मानता है कि प्रत्येक प्राणी के अंदर बुद्धता या बुद्ध-स्वभाव विद्यमान है। यह बुद्धता या बुद्ध-स्वभाव जो प्रत्येक प्राणी के अंदर विद्यमान है, क्या है? ध्यानी संतों का यह मत था कि प्राणियों के अंदर एक ऐसी वस्तु विद्यमान है जो सत्य है, वास्तविक है, शाश्वत है, अपनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



ही शक्ति वाली है और सदा अविकारी, अपरिवर्तित है। नित्यत्त्व आनंद और विशुद्धि इसके लक्षण हैं। इस बुद्धत्व या बुद्ध स्वभाव को साक्षात्कार करना ही ध्यान-संप्रदाय का लक्ष्य है। इसे ही बुद्ध होना कहा गया है। वस्तु जगत असत्य है, अनात्मा है, माया है, आकाश-पुष्प के समान है। ज्ञानी इसे प्रज्ञा से इस रूप में देखता है। बुद्ध की प्रज्ञा-पारमिता भी यही है कि सत्य और असत्य, एक और अनेक के, रूप और अरूप के, संसार और निर्वाण के, विद्या और अविद्या के, पवित्र और अपवित्र के, आत्मा और अनात्मा के जितने भी द्वैत के रूप हैं, जिनका अंत नहीं हैं उन सबको अतिक्रमण करना, ध्यान संप्रदाय के अनुसार वास्तविक ज्ञान है। जब तक हम इन द्वंद्वों के संसार में हैं, सापेक्षता के जाल में फंसे हैं हमारे लिए कुछ भी सत्य नहीं है और न ही हम अपने दुखों का अंत कर सकते हैं। इसलिए हमें निरपेक्ष सत्यता को साक्षात्कार करने का यतन करना है। ध्यान-संप्रदाय का यह आश्वासन है कि यह सत्यतः, सर्वथा विविक्त धर्म नहीं है, बिलकुल अलग और हमसे एकांत नहीं है। यह वह अतीत है जो हमारे अंदर भी है। इसे जल में चंद्रमा या दर्पण के अंदर पुष्प के समान बताया गया है। यह अंदर है फिर भी बाहर है। यह बाहर है फिर भी अंदर है। नानात्मक वस्तु जगत में इसकी उपलब्धि नहीं हो सकती और इसलिए यह सापेक्ष वस्तुजगत एक स्वप्न है। माया-मरीचिका है। सूक्ष्म सत्यता के साथ जगत का संबंध वर्णनातीत है। शब्दों में कहना मुश्किल है। परंतु यह अपने रहस्यों को उस व्यक्ति के समक्ष प्रकट कर देता है जिसने अन्तर-ज्ञान या अन्तर-प्रज्ञा के द्वारा उसे पाने का प्रयत्न किया है और वह भी उसे केवल स्वानुभव से ही समझ सकता है। परमसत्य धर्म संप्रदाय की मान्यता के अनुसार एक ऐसी वस्तु है जिसकी आरंभ से ही सत्ता रही है। यह परिवर्तन या विकास से अतीत है। यही हमारा आदिम मूल मुकाम है। जैसे खान में सोना रहता है वैसे ही सब बुद्ध यहां विद्यमान हैं। चूंकि यह हमारा आदिम मूल निवास है, यहां पहुंचना ही वास्तव में स्वस्थ होना है, अपने में स्थित होना है। जहां पहुंच जाने वाले व्यक्ति के संबंध में ही यह कहा जा संकता है कि वह अपने स्थान में ठहरा हुआ है। 'स्वस्थानेऽवतिष्ठते'। ध्यान हमें यहीं पहुंचाना चाहता है, यही उसका गंतव्य है। जब हम अपने मूल घर को पहुंचते हैं तो हमें कितनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



खुशी होती है। परम सत्य का अनुभव भी इसी प्रकार का उल्लासमय होता है। यह कितना आश्चर्यजनक है कि तात्त्विक परिस्थिति और अभिव्यक्ति में कुछ भेद होते हुए भी पातंजलि योग-सूत्र में इसी प्रकार समाधि की अवस्था में, आत्मा या चित्त शक्ति के स्व-रूप में स्थित होने की अवस्था वर्णित की गई है। 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।' कबीर साहब ने अपने अंदर विचार करते-करते अंत में जहां अपना घर बनाया था, जिसकी ओर इशारा करते हुए वे 'उत घर' कहते हैं और जिसकी तुलना में इस दुनिया को पर-घर या परदेश बताते हैं, वह वास्तव में वही अपना मूल निवास है जहां ध्यान अनुभव के अनुसार हमें लौटना और विश्राम करना है। 'जहां के सो तहां जाई' में यह पूरी तरह स्पष्ट है। मूल उद्गम को वापस—यही ध्यान का ध्येय है। कबीर का आदि विचार भी यही है जिसे उनके अनुसार कोई बिरला ही कर सकता है। इसलिए अपने आदि में निज-रूप में, अपने मूल मुकाम में तो हम सबको ही पहुंचना है और वहां जाकर विश्राम करना है क्योंकि वही एक जगह वास्तव में अपनी है और इस जगत् में, इस प्रदेश में तो हम अज्ञानवश भटक कर आ गए हैं। शून्य ही साधक का निज घर बताया है। बुद्धता यही है और यही मन का सार भी है। अपने मूल मुकाम, मूल उद्गम पर पहुंचे हुए शून्य को प्राप्त, ब्रह्म को प्राप्त व्यक्ति की क्या दशा होती है और संसार को वह किस दृष्टि से देखता है, इसे ध्यानी संत के शब्दों में इस प्रकार रखना ठीक होगा:

> **"यह धरती ही (उसके लिए) पुण्डरीक-लोक बन जाती है, और यह शरीर ही बुद्ध है।"**

बुद्ध ने बोधि वृक्ष के नीचे और अपने शेष जीवन में क्या अनुभव किया, एक साधक उसे स्वयं अपने हृदय में, मन में अनुभव करना चाहता है। इसलिए वह बुद्ध ज्ञान का सीधा संप्रेषण है। ध्यान-संप्रदाय मानता है कि बुद्ध धर्म का सार अपने मन को पहचानकर बुद्धत्त्व प्राप्त कर लेना है। बुद्ध ने धर्म या सत्य को "प्रत्यात्मवेदनीय" कहा था। 'पंच्चन्तवेदनीयो धम्मो।' उनका कहना था कि धर्म का अनुभव प्रत्येक शरीर में होना चाहिए। ध्यान-संप्रदाय इसी को लेकर चलता है। ध्यानी साधक का हृदय ही बुद्ध का हृदय है और वहीं बोधि का साक्षात्कार होना चाहिए। अगर ऐसा नहीं होता तो बुद्ध की बोधि प्राप्ति हमारे किसी काम की नहीं है। बुद्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



जब तक बाहर के हैं वह इतिहास के हैं, परंतु जब हम उन्हें अपनी आत्मा में बैठा लेते हैं तो वे हमारे अपने बन जाते हैं। आध्यात्मिक बन जाते हैं। ध्यान-संप्रदाय के बुद्ध, ये आध्यात्मिक बुद्ध ही हैं। वे बुद्ध के ऐतिहासिक व्यक्तित्व में या उपदेशों में कोई रुचि नहीं लेते। हुइ-नेंग् ने इसी तत्त्व को समझाते हुए एक ऐसे व्यक्ति से जिसने अनेक बार सद्धर्म-पुण्डरीक-सूत्र को पढ़ा था, परंतु जिसे उसका वास्तविक मर्म प्रकट नहीं हुआ था, कहा था, "यदि तुम केवल इतना विश्वास कर सको कि बुद्ध कोई शब्द नहीं बोलते, तो 'पुण्डरीक' स्वयं तुम्हारे मुख में ही खिलेगा!" बौद्ध साधना ध्यान-संप्रदाय में आकर पूरी तरह अन्तर्मुखी और अ-शब्द बन गई है।

भगवान बुद्ध ने एक बार कहा था कि मैं बेड़े की तरह पार होने के लिए धर्म का उपदेश करता हूं, पकड़कर रखने के लिए नहीं। साधक अपने उपाय कौशल्य से नाव बनाता है और उतनी ही कुशलता से पार हो जाने के बाद उसे छोड़ भी जाता है। कई बार ध्यानी संतों ने बुद्ध के शरीर मूर्ति आदि के संबंध में भी मौज में आकर ऐसी बातें कह दी हैं या उनके प्रति ऐसा व्यवहार पैदा कर दिया है जो प्रारंभिक विद्यार्थियों को उनका उपहास जैसा या श्रद्धा के अभाव का द्योतक जैसा लगता है। परंतु बात इसके बिलकुल विपरीत है। उनकी बुद्ध के ज्ञान के प्रति एक अगाध श्रद्धा और निष्ठा होती है। लेकिन चैतन्य की ओर आकर्षित करने के लिए स्वयं बुद्ध ने अपने शिष्य वक्कलि को जो कि बुद्ध के रूपकाय में अनुरक्त था, यही कहा कि जिस प्रकार उसका शरीर गंदगी से भरा है उसी प्रकार बुद्ध का शरीर भी है, फिर उसे देखने से क्या लाभ? तथागत के धर्मकाय को देखना चाहिए जो उनका वास्तविक रूप है। जो धर्म को देखता है वह मुझे देखता है। और जो मुझे देखता है वह धर्म को देखता है।

शास्त्रों और सूत्रों के महत्त्व के संबंध में भी ध्यानी संतों का एक विचित्र दृष्टिकोण है। वे कभी-कभी धार्मिक ग्रंथो के पठन-पाठन को गौण मानते हैं। बुद्ध साहित्य में एक ऐसे भिक्षु का दृष्टांत है जो पहले बहुत स्वाध्याय करता था और धर्मपदों को पढ़ा करता था, परंतु अब उसने ऐसा करना छोड़ दिया है। जब उससे इसका कारण पूछा जाता है तो वह कहता है कि जब तक उसे वास्तविक वैराग्य नहीं हुआ था तब तक उसका मन धर्मपदों को पढ़ने की ओर लगा रहता था। परंतु अब उसे उसकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



आवश्यकता नहीं रह गई है। वह भिक्षु ध्यान का विद्यार्थी था। बोधि गीत की एक पंक्ति है जो ध्यान की महिमा बताती है। "क्या तुम ध्यान के इस विद्यार्थी को देखते हो जो सब कुछ भूल चुका है जो उसने याद किया था।" बौद्ध धर्म सर्वत्र एक और उसका रस सर्वत्र एक है। विमुक्ति रस। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनसे विदित होता है कि अनुभवहीन विद्वानों से बुद्ध उनका अधिक आदर करते थे जिनमें विद्वता भले ही न हो पर अनुभव हो। बौद्ध साहित्य में एक कथा है कि एक बार दो मित्रों ने बुद्ध की शरणागति ली। उनमें से एक वृद्ध था और पढ़ लिख नहीं सकता था। उसे बुद्ध ने ध्यान की विधि बतला दी और उस पर चलते हुए उसने आत्मतत्त्व (अर्हततत्त्व) का साक्षात्कार कर लिया। दूसरा विद्वान था। उसने संपूर्ण बुद्ध-वचनों को याद कर लिया और एक महान् उपदेशक बन गया। एक दिन यह विद्वान् भिक्षु अपने वृद्ध मित्र से मिलने गया। बुद्ध समझ गए कि यह पण्डित भिक्षु अपने साथी वृद्ध को झमेले में डालेगा। इसलिए वे स्वयं भी वहां पहुंच गये। बुद्ध ने पहले पण्डित भिक्षु से दार्शनिक महत्त्व के कुछ प्रश्न पूछे जिनके उसने सन्तोषजनक उत्तर दे दिये, परंतु जब बुद्ध ने उससे 'मार्ग' के संबंध में तथा स्रोत आपन्न होने के समय के अनुभव के संबंध में प्रश्न पूछे तो वह उत्तर न दे सका, क्योंकि इनका कोई व्यक्तिगत अनुभव उसे नहीं था। परंतु जब वही प्रश्न बुद्ध ने उस अपढ़ वृद्ध भिक्षु से पूछे तो एक के बाद एक वह उनके सीधे उत्तर दे गया, क्योंकि उसे केवल उन अवस्थाओं को ही तो बतलाना था जिनमें होकर वह स्वयं गुजर चुका था और जिनका उसे अपने प्रत्यक्ष अनुभव से ज्ञान था। बुद्ध ने इस अपढ़ वृद्ध भिक्षु की प्रशंसा की। इस पर जब पण्डित भिक्षु के शिष्य कुछ खिन्न होने लगे तो बुद्ध ने उनसे कहा—तुम्हारा गुरु उस व्यक्ति के समान है जो दूसरों की गायें चराता है और यह अपढ़ भिक्षु उसके समान हैं जिसकी अपनी गायें हैं और जो पंच गोरसों का सेवन करता है। इस प्रकार बुद्ध-शासन में अनुभव विद्वता से सर्वत्र बड़ा है।

इस प्रकार ध्यान-संप्रदाय जो शास्त्रीय पठन-पाठन को अधिक महत्त्व नहीं देता, यह बुद्धशासन के अनुगत ही है और अनुभव को प्रथम स्थान देने के कारण ही है। हुइ-नेंग् ने कहा है कि "जो अपने मन को नहीं जानता, उसके लिए बौद्ध-धर्म को सीखने का कोई उपयोग नहीं है।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



ध्यानी साधक इसी बात पर जोर देते हैं कि सबसे पहले हमें अपे मन या स्व-भाव को जानना चाहिए। फिर सब ग्रंथों की संगति लग जाएगी। सब शास्त्र समझ में आ जाएंगे। "सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र" को लक्ष्य कर हुइ-नेंग् ने संपूर्ण शास्त्रों के ही प्रति ध्यान-संप्रदाय की दृष्टि को कितनी अच्छी प्रकार व्यक्त कर दिया है जबकि उन्होंने तीन हजार बार इस सूत्र का पाठ करने वाले और फिर भी इसका मर्म न समझने वाले एक भिक्षु से अपनी अपूर्व व्यंजनात्मक भाषा में कहा कि जो व्यक्ति बिना अर्थ को समझे पाठ करता है, वह सूत्र के द्वारा "घुमाया जाता है, परंतु अभ्यास के साथ-साथ पाठ करने वाला व्यक्ति स्वयं सूत्र को "घुमाता है।"

**जब हमारा मन मोह के अधीन होता है तो**
**"सद्धर्मपुण्रीक-सूत्र" हमें घुमाता है;**
**परंतु प्रबुद्ध मन से हम स्वयं "सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र" को घुमा देते हैं।"**

यद्यपि ध्यानी संत स्वानुभव पर जोर देता है और शास्त्रीय ज्ञान को गौण मानता है, लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं है कि आगम और धर्मशास्त्रों के प्रति ध्यानी सन्तों का आदर नहीं था। कुछ छिछले ध्यानी लोग अनुचित रूप से शास्त्रों और सूत्रों की अवहेलना करने लगे थे और इनको महत्त्व देने वाले लोगों को वे शास्त्रीय अधिकार के नशे के आदी बताते थे। हुइ-नेंग् इस प्रवृत्ति को अच्छा नहीं मानते थे। ऐसा उन्होंने अपने शिष्यों को दिए गए अंतिम निर्देशों में स्पष्ट कर दिया है। ऐसे लोगों की भर्त्सना करते हुए उन्होंने अपने शिष्यों से कहा—"तुम लोगों को जानना चाहिए कि सूत्रों की बुराई करना एक गंभीर अपराध है और इसका दुष्परिणाम सचमुच बड़ा भयंकर होगा।"

आसन लगाकर ध्यान करना उपयोगी है और ध्यानी साधक उसका उपयोग करते हैं परंतु यह भी निश्चित है कि ध्यान के लिए वे इसे अनिवार्य नहीं मानते हैं। एक बार जब इस संबंध में पूछा गया तो एक ध्यानी संत ने अपनी विलक्षण शैली में कहा—"जिन्दा आदमी बैठता है और सब समय लेटता नहीं, मुर्दा लेटता है और बैठता नहीं। अपने इस भौतिक शरीर पर हम पालथी मारकर बैठने का भार डालकर क्यों उसे पीड़ित करें। इसमें बुद्ध-शासन के विपरीत कुछ नहीं है। किसी भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अवस्था में हो चित्त एकाग्र होना चाहिए क्योंकि चित्त को ही सत्य का साक्षात्कार करना है। हुइ-नेंग् ने कहा था कि धर्म का साक्षात्कार मन को करना होता है और यह आसन मारकर स्थिति पर निर्भर नहीं करता। कभी कभी सिर्फ आसन लगाकर बैठने वालों को पीठ पर तड़ाक से डंडा मारकर ध्यानी-संत आश्रम से बाहर भी निकाल देते थे, क्योंकि उनका कहना है कि ऐसा आसन लगाए तो पत्थर की मूर्तियां ही उनके यहां अधिक हैं।

ध्यान-संप्रदाय मूलतः एक भारतीय साधना थी किन्तु उसका विकास चीन और जापान में हुआ। हुइ-नेंग् ने स्वयं मंत्र-सूत्र में यह स्वीकार किया है कि जो कुछ उन्होंने सिखाया है वह सब बोधि धर्म के द्वारा सिखाए गए मूल सिद्धांत ही हैं। इसी सूत्र में उन्होंने और भी स्पष्टता पूर्वक जोर देते हुए कहा कि यह उपदेश अतीत के धर्मनायकों की परंपराओं से चला आया है और यह कोई मेरा आविष्कार किया हुआ सिद्धांत नहीं है। जब मंत्र-सूत्र की व्याख्या सुनकर एक आगंतुक ने जो कुछ शंकाओं के समाधान के लिए हुइ-नेंग् के पास आया था, कहा कि आपका मत सूत्र के विपरीत है, इस पर हुइ-नेंग् ने उससे कहा था, "मैं ऐसा करने का साहस नहीं कर सकता क्योंकि मैं बुद्ध भगवान की हृदय मुद्रा का उत्तराधिकारी हूं। हुइ-नेंग् के शिष्य युंग् ने भी साक्ष्य दिया है कि हुइ-नेंग् से जो ज्ञान उन्होंने पाया वह बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म के अलावा और कुछ नहीं है। एक ध्यानी भिक्षु कहा करता था कि यदि तुम बुद्ध शब्द का उच्चारण करो तो उसके बाद अपने मुंह को अच्छी तरह से धो डालो।

एक बार ध्यानाचार्य से एक भिक्षु ने पूछा—क्या आप कभी बुद्ध नाम का जप करते हैं" नहीं, कभी नहीं। क्यों नहीं करते? क्योंकि मुझे भय है कि कहीं मेरा मुंह गंदा न हो जाए। बल्कि उन्होंने कहा कि मैं एक शब्द बिलकुल नहीं सुनना चाहता —वह है बुद्ध। परमहंस रामकृष्ण ने भी कहा है कि भगवान का नाम मुंह से उच्चारण करने से वह जूठा हो जाता है।

बुद्ध विहारों में श्रम-निष्ठा अधिक पाई जाती है। जो साधना केवल ध्यान-अभ्यास को लेकर चलेगी इस खतरे से सावधान रहना ही पड़ेगा कि कहीं ध्यान खाली चिंतन, निकम्मेपन या आलस्य का पर्याय न बन जाए। इसलिए ध्यान को प्रज्ञा के साथ जोड़ा गया है। जिस ध्यान से प्रज्ञा जागृत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


नहीं होती वह ध्यान वास्तविक में ध्यान नहीं है, केवल कसरत है। ध्यान और प्रज्ञा पूरे बौद्ध धर्म में एक दूसरे के पूरक हैं। ध्यान प्रज्ञा का सार है और प्रज्ञा को ध्यान की क्रिया कहा है। और उसका संबंध प्रकाश और दीपक का संबंध बताया है। दीपक प्रकाश का सार है। और प्रकाश दीपक की क्रिया। मूल विशुद्ध उपदेश प्रज्ञा और समाधि को साथ-साथ अभ्यास करने का ही है। इसलिए ध्यानी-संतों के अनुसार सच्ची अचलता वह है जिसे चल में ही ढूंढ़ा जाए। उसका कहना है कि जो कमल आग में खिलेगा उसके फिर कुम्भलाने का भय नहीं है। इसलिए जगत् के व्यवहारों को ध्यानी-साधक स्वीकार करते हैं और उनके अंदर ही परमार्थ की खोज करते हैं।

ध्यान एक अ-शब्द सिद्धांत है। यदि कबीर की भाषा का प्रयोग हम कर सकें तो बौद्ध धर्म के शेष सब संप्रदाय लेख हैं और ध्यान संप्रदाय की गणना अलेख में की जाएगी। जिस प्रकार लेख मात्र अलेख में समा जाता है उसी प्रकार बौद्ध धर्म के अन्य सब संप्रदाय ध्यान में समा जाते हैं।

### "लेख समाना अलेख में"

त्रिपिटिक या अन्य स्रोतों से ग्रंथ मात्र से जो बुद्ध के मंतव्यों को जानकर ज्ञान प्राप्त करते हैं वे बुद्ध के मुख से उत्पन्न पुत्र हैं और जबकि ध्यान के द्वारा बुद्ध को अपने अंदर देखने वाले साधक बुद्ध के हृदय से उत्पन्न औरस पुत्र हैं।

अद्वैत का प्रतिपादन ध्यानी-संतों ने तार्किक पद्धति के द्वारा प्रमाण दे देकर नहीं किया बल्कि गहरे आत्मचिंतन और आत्मानुभूति से वे इस सत्य तक पहुंचे हैं। अद्वैत सत्ता के प्रमाण में उनका कहना है कि एक है तभी दो की सत्ता है। द्वैत ही अद्वैत के होने का सबसे बड़ा प्रमाण है। केवल सत्ता का अद्वैत ही नहीं बल्कि रास्तों या यानों (मार्गों) का भी अद्वैत है। और यह घोषणा की गई है कि बुद्ध स्वभाव अद्वैत है। जन्म-मरण की समस्या को हल करने के लिए धर्मनायक कहते थे कि यदि तुम अजाति के सिद्धांत का साक्षात्कार कर लो तो फिर न जन्म है और न मृत्यु। शून्यता धर्म-संप्रदाय का परम सत्य है और उसके सच्चे रूप को समझने के लिए अद्वैत सत्य का उपयोग है। लेकिन शून्य अभाव नहीं है। बौद्ध दर्शन के शून्य को, जो अभाव या उच्छेद का पर्याय मान लिया है वह बड़ी भारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



गलती हुई है। ध्यानी संत शून्यवादी हैं परन्तु उनकी शून्यता अभाव या पूर्ण निषेध नहीं। उसमें संपूर्ण व्यवहारों का ही उच्छेद है। संपूर्ण व्यवहार संभव ही शून्यता से बनते हैं। ऐसा उसका सोचने का ढंग है। ध्यानी संतों ने सत्य की निषेधात्मक व्याख्या नहीं की। 'है' से ही कुछ मिलता है, 'नहीं' से कुछ नहीं। एक ध्यानी संत ने मनोरंजक ढंग से इस सत्य को रखा है।

**जब यह 'हां' है तो एक नाग्न लड़की भी एक क्षण**
**में बुद्धत्त्व प्राप्त कर लेती है,**
**परंतु जब यह 'न' है तो परम विद्वान् ध्यान**
**आचार्य (जेन्शो) भी जीवित अवस्था में ही नरक में गिरता है।**

वेदांत जिसे ब्रह्म कहता है, वह ध्यान संप्रदाय के लिए अजात है। जिस प्रकार वेदांती कहते हैं कि इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय जहां से होते हैं वह ब्रह्म है उसी प्रकार ध्यान-संप्रदाय यह मानता है कि इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय जहां से होते हैं वह अजात है। एक कहता है कि जगत् की प्रतिष्ठा ब्रह्म है, दूसरा कहता है अजात है। यह अजात ही निषेधात्मक रूप से शून्यता है और स्वीकारात्मक रूप से बुद्ध-स्वभाव है। ब्रह्म यदि निर्गुण, निर्विकार है तो यह सगुण और विकारी सृष्टि उससे किस प्रकार उत्पन्न हो सकती है? शंकर वेदांत का संपूर्ण मायावाद इसी जिज्ञासा के समाधान पर आधारित है। इसी प्रकार से ध्यानी संतों ने भी इसी बात को अपने ढंग से कहा। विशुद्ध निर्विकार मूल से पर्वत, नदियां और महापृथ्वी कैसे उत्पन्न हो गई? वेदांत के विद्या और अविद्या के सारे लम्बे विवेचन केवल विकल्प के ही विस्तार हैं जो निर्विकल्प की अभिव्यक्ति करने में असफल हैं। कबीर भी कुछ ध्यानी संतों की तरह यह कहकर विकल्प नहीं करते हैं—तू जैसा है तैसा रहे, कर्ता की गति अगम है। निरंजन के मूल से यह अंजन का पसारा कैसे फैल गया?

**अवधू निरंजन जाल पसारा,**
**स्वर्ग पाताल जीव मृत मण्डल तीन लोक विस्तारा।**

कैसे? तो कबीर साहब कहते हैं कि:—

**अंजन माहिं निरंजन रहिए**

ध्यानी संत भी कहते हैं कि चल में ही अचल को देखो। ध्यानी संतों ने तथ्यता के विषय में यह कहा है कि—वह न कहीं आती है और न जाती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



जो आती है और जाती है वह माया है। कबीर साहब ने इसे यों रखा है:—

**अंजन आवहिं अंजन जाई,**
**निरंजन सब घट रहा समाई।**

एक ध्यानी संत ने कहा कि एक ही सत्यता, सर्वस्पर्शी अपने अंदर सब सत्यताओं को समेटे हुए है।

तर्क-वितर्क से विमुक्त, पक्ष विपक्ष से दूर, हद और बेहद से अतीत, यही वास्तविक अतीत और परम दर्शन है।

ध्यान-संप्रदाय एक अत्यंत विमल और गंभीर आत्म-चिंतन की परंपरा पर आश्रित साधना पथ है। धीरे-धीरे उत्तरकालीन भारतीय बौद्ध भिक्षु अपने जीवन में निभा नहीं सके और अपने स्वीकृत धर्म की निगाह में ही गिरने लगे तो उन्होंने किसी प्रकार समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए अपने भोगवादी दृष्टि को ही एक दर्शन का रूप दे डाला और उसे सहजयान की संज्ञा दी। भोगवाद को एक नुस्खे का ही रूप दे डाला। **"जिम विस भक्खइ विसहिं पलुत्ता। तिम भव भुंजइ भवहिं ण जुत्ता।।"** अर्थात् जिस प्रकार विष के भक्षण करते रहने से मनुष्य विष के प्रभाव से मुक्त हो जाता है, उसी प्रकार भव का भोग करने से मनुष्य फिर भवयुक्त नहीं होता।" इस नई दृष्टि से बौद्ध धर्म के नैतिक आदर्शवाद का भी पतन हो गया। जो कठिन था उसे सहज या स्वाभाविक बनाने का और जो विषय सेवन उक्त सिद्धों के जीवन में चल रहा था उसी को दार्शनिक समर्थन देने का प्रयास है। किन्तु सच्चे ध्यानी संतों ने जैसे कबीर ने इसको प्रशंसनीय नहीं माना। इसलिए उन्होंनें कहा—**सहज-सहज सब कोई कहे, सहज न चीने कोई। जिन सहजे विषया तजो सहज कहिजे सोई।।** इसलिए उन्होंने सिद्धों को केवल माया का खेल खेलने वाला ही बताया। "सिद्ध चौरासी माया में ही खेला।" गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने भी कलिकाल के सिद्ध और योगी पुरुषों का जो परिचय दिया है उसमें भक्ष अभक्ष का खाना, उनका एक मुख्य लक्षण बताया गया है। यह कितना आश्चर्यजनक है कि नीतिवादी निर्गुणीय वैष्णव संतों का जो सहज था, सहज ही इंद्रिय वासनाओं के बंधन और आसक्ति से ऊपर उठना था, सहज समाधि प्राप्त करना था, सहज-शून्य में रमणा था वही ध्यान-संप्रदाय की सहज साधना है। कबीर साधक के लिए जीवन को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



चलाने के लिए आवश्यक वस्तुओं का उपभोग आवश्यक मानते थे। तभी तो उन्होंने कहा– **"जपिय नामु जपिय अनु।"** और भगवान से दो सेर आटा, आधा सेर दाल और पाव भर घी और कुछ कपड़े-लत्ते मांग लिए हैं। जब एक ध्यानी संत से पूछा गया कि तुम क्या अभ्यास करते हो? तो उसने उत्तर दिया कि जब मुझे भूख लगती है तो मैं खा लेता हूं। जब मैं थक जाता हूं तो सो जाता हूं। परमसत्य क्या है? तो एक ध्यानी संत ने कहा कि तुम्हारा दैनिक जीवन। कबीर की जीवन साधना बिलकुल यही थी। ध्यान शास्त्रों से बाहर एक विशेष संप्रेषण है। बौद्ध सिद्धों का तो कुछ कहना ही नहीं, गुरु गोरखनाथ और कबीर आदि संतों ने भी परंपरागत शास्त्रीय परंपरा से अपने को प्रायः अलग ही रखा है और शास्त्रों को गौण माना है। गुरु गोरखनाथ उलटी वेद की बात कहते हैं और कबीर ने तो कहा है–**लोक वेद कुल की मरयादा, यही गले में फांसी।** स्व-अनुभूति, सत्य से बड़ी उनके लिए और कोई गवाही नहीं है। मन मन ही समाना। एक मन व्यक्तिगत है और दूसरा निरपेक्ष जिसको मन का सार कहा गया है और परम सत्य का रूप दिया गया है। कबीर ने इनमें क्रमशः इन-मन और उन-मन कहा है। कबीर ने कहा है कि अज्ञानी होने की अवस्था में ही उन्होंने लोक और वेद का अनुगमन किया। परंतु जब गुरु ने आगे से आकर उन्हें स्व-अनुभूत ज्ञान रूपी दीपक हाथ में दे दिया तो उन्होंने लोक वेद को छोड दिया।

**पाछे लागा जाइ था लोक वेद के साथ।**
**आगे थें सतगुरु मिला दीपक दिया हाथ।।**

उपनिषदों के ऋषियों के समान (प्लवा ह्येते अदृढ़ाः यज्ञरूपाः) कबीर ने समझ लिया था कि कर्मकांड में धर्म जर-जर बेड़ा है और कबीर उसमें डूबने वाले ही थे कि गुरु ने मौज में आकर कृपा की और वे फड़ाक से उस पर से कूद पड़े और उभर पड़े। कागद की लेखी बातों को कबीर कभी प्रमाण मानने को उद्यत नहीं। अतः स्वभावतः इन सब साधना धारणाओं के समान-स्रोत की कल्पना की जा सकती है जो आदिम काल से ही भारतीय साधना के इतिहास में किसी न किसी रूप में उसकी मूल धारा से एक भिन्न परंपरा के रूप में दृष्टिगोचर होती रही है। ध्यान-संप्रदाय के २८ वें धर्मगुरु बोधि धर्म के समय तक ध्यान-संप्रदाय की परंपरा गुरु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



शिष्य क्रम से बिलकुल अज्ञात रूप में चलती रही। इस बात की भी समानता नाथ पंथ, निर्गुण पंथ की साधना-धाराओं के स्रोत की खोज करने पर देखी जा सकती है। वह बिलकुल मौखिक रूप में गुरु-शिष्य क्रम में आई हुई साधना धाराएं हैं जिनका परंपरागत शास्त्रीय धारा से समानांतर रूप में विभिन्न अस्तित्व रहा है। एक बार फू नामक एक जापानी बौद्ध भिक्षु निर्वाण सूत्र पर प्रवचन करता हुआ धर्मकाय की व्याख्या कर रहा था, उसे देखकर एक ध्यानी साधु को हंसी आ गई। इसलिए विद्वान भिक्षु को संदेह हुआ कि उसने कोई गलत व्याख्या की है। इसलिए प्रवचन के बाद वे अपनी गलती समझने के लिए उस ध्यानी संत के पास गए। ध्यानी संत ने उसे बताया कि तुम्हारी व्याख्या में कोई दोष नहीं है। मैं यह देखकर हंसा कि जिस वस्तु का तुम विवेचन कर रहे हो, उसका प्रत्यक्ष सीधा ज्ञान तुम्हें नहीं है। जैसे किसी पंडित को प्रवचन करते देखकर कबीर को भी हंसी आई थी और उन्होंने कहा था—"पढ़-पढ़ पंडित बेद वखानहिं, भीतर हूति बसत न जानई।" जिनको स्वयं अनुभव नहीं वह मर्म को नहीं जान सकता। परिचय बिना मर्म को पावे। ध्यानी-संत स्व-अनुभव को पानी पीने के समान बताते हैं। जो पानी को पीता है वह उसके स्वाद को जानता है। अनुभय उतरया पार।

कबीर साहब मानते हैं कि जो कुछ उन्होंने कहा है सब साखी या साक्ष्य है। संपूर्ण ध्यान साहित्य भी केवल साखी मात्र हैं। यद्यपि गुरु महिमा की बात श्रुतियों में भी आई है और कहा गया है उसको जानने के लिए गुरु के पास जाना चाहिए। (तद्विज्ञानार्थ गुरुमेवाभिगच्छेत) गुरु-शिष्य के क्रम से स्व-सत्य या स्व-अनुभव का संप्रेषण ही ध्यानी संतों के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण है। परंपरावादी वैदिक धारा में हमें सर्वत्र शास्त्र-महिमा मिलेगी। गीता में भी शास्त्र विधान को जानकर ही कर्म करने का आदेश दिया गया है। किन्तु 'शास्त्रों से बाहर एक विशेष संप्रेषण' ध्यान साधना के लिए आवश्यक माना गया है।

'बाणी तेरे बहुत बने पकवाना' की बात कहने वाले कबीर 'पढ़िवा यै भल योग' की बात करते हैं। मनुष्य की आत्मा की ओर सीधा संकेत और अपने ही स्वभाव के अंदर देखना, यही ध्यानी संतों के लक्षण रहे हैं।

**करत विचार मनहिं मन उपजी, ना कहूं गया न आया।**

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



एक अपढ़ जुलाहा और दूसरा बिलकुल अपढ़ लकड़हारा। जिस प्रकार एक को हम ताना-बाना बुनते देखते हैं उसी प्रकार दूसरे को बांस की डाली साफ करते हुए और भिक्षु अवस्था में भी चावल कूटते हुए और ईंधन के लिए लकड़ी फाड़ते हुए देखते हैं। जीविका के लिए कुछ न कुछ धंधा करते हुए सत्य साधना में प्रवृत्त होना चाहिए। ऐसी संतों की मान्यता थी। अतः वे उन विरक्त साधुओं से भिन्न थे जो बिलकुल घर को छोड़ देते हैं। 'घर तजि अनत न जावई।' ऐसा निर्गुण-पंथी संतों का कहना है। दादू, कबीर, रैदास आदि सबने कुछ न कुछ उद्योग करते हुए ही साधना की।

कल्प-कल्पांत में भी यदि कोई मनुष्य मोह में रहा हो परंतु एक बार ज्ञान उदीप्त होने पर वह एक पल भर में ही बुद्धत्व को प्राप्त कर लेता है। प्रज्ञा की एक चिंगारी युगों से चली आ रही अविद्या एक बार में ही नष्ट हो जाती है।

आध्यात्मिक साधना में स्व-पुरुषार्थ को मुख्य मानने वाली और पर-सहायता या भगवत्कृपा के अवलंबन को मुख्यता देने वाली ये दो साधकों की श्रेणियां सर्वत्र मिलेंगी। इनमें अत्यंतिक भेद तो नहीं है परंतु मुख्यता या गौणता की दृष्टि से यह भेद किया जा सकता है। मूल बुद्ध धर्म, वेदांत और योग की साधनाएं साधक के अपने पुरुषार्थ पर अवलंबित हैं। साधारणतः ज्ञानमार्ग कहा जाने वाला साधना पथ पुरुषार्थवादी ही है और वह स्व-शक्ति का हामी है। दूसरा साधना पथ स्व-शक्ति में विश्वास नहीं रखता। उसे अपने बल का भरोसा नहीं रहता। वह पर-शक्ति की, किसी दूसरी शक्ति की सहायता से जीवन के लक्ष्य को पूरा करना चाहता है। ये पर-शक्ति बुद्ध हो सकते हैं, राम हो सकते हैं या अन्य कोई भी सगुण और निर्गुण रूप। मध्यकालीन भक्ति साधना सामान्यतः पर-शक्ति साधना है। इसाई-धर्म भी ऐसा ही है। एक परम शक्ति के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण की भावना वहां प्रधान है और केवल उसी की कृपा से मुक्ति की प्राप्ति संभव मानी जाती है।

गोस्वामी तुलसीदास जी पर-शक्ति के बड़े समर्थक थे। मीरा, सूरदास इत्यादि और संत गोस्वामी तुलसीदास जी ने, नाम को अगुण और सगुण के बीच सु-साखी और चतुर दुभाषी कहा है। "सुरति सो साधिक, सबद सो सिधि।" शब्द सुरति योग का वर्णन संतों ने किया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


बुद्ध के 'ललित विस्तार' में 'बुद्ध का संकल्प' का वर्णन है—"इस आसन पर चाहे मेरा शरीर सूख जाय, चाहे मेरी त्वचा, हड्डियां और मांस प्रलय को प्राप्त हो जाएं परंतु जब तक मैं बोधि को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक इस आसन से मेरा शरीर और मन नहीं डिगेगा। यह है दृढ-संकल्प या हठ जो उस अदम्य पुरुष ने वज्र आसन पर बैठकर वज्र समाधि लगाते हुए किया था। इतिहास के प्रथम हठयोगी वस्तुतः भगवान बुद्ध ही हैं। इस अर्थ में दूसरे महान हठयोगी तुलसीदास जी भी कहे जा सकते हैं जिन्होंने चातक की तरह हठ करके राम नाम को जपा।

मन की साधना के स्वरूप को लेकर तो ध्यानी परंपराओं में बड़ी समानता है। सबने दो मन माने हैं—एक व्यक्तिगत परिच्छिन्न सांत मन और दूसरा संपूर्ण सृष्टि का सामूहिक अपरिच्छिन्न या अनंत मन। गुरु गोरखनाथ कहते हैं—यहु मन सकती यहु मन सीव, यहु मन पंच तत्त का जीव। गोरखनाथ मन को ही आदि और अंत कहते हैं और मन में ही सब सार को खोजते हैं। कबीर भी इन-मन और उन-मन की बात कहते हैं और उन दोनों की अभिन्नता को अपनी साधना का चरम लक्ष्य बताते हैं।

**ऊठत बैठत कबहुं न बिसरै ऐसी तारी लागी ।**
**कहै कबीर यह उन मन रहनी सो परगट करि गाई।।**
**ता मन को खोजो रे भाई। उन्मनिध्यान घट भीतर पाया।।**

मन की साधना बौद्ध धर्म का सर्वस्व है। भगवान बुद्ध ने अपने महानिर्वाण के अवसर पर अपने शिष्यों से कहा था—अपने चित्त की रक्षा करो। "सचित्तमनुरक्खथ" और गुरु गोरखनाथ बार-बार कहते हैं कि "दिढ़ करि राखि आपनां चीत" या "दिढ़ करि राखउ चीया" और कबीर साहब कहते हैं कि—"जो मन राखे जतन करि"।

मन या चित्त की रक्षा के लिए तथागत ने स्मृति का उपदेश दिया था। संतों ने बार-बार जो सुरति का उपदेश दिया है वह यह स्मृति (पाली सति) ही है जो बौद्ध साधना की मेरु दंड है। बौद्ध साहित्य में बार-बार साधक के लक्षणों के संबंध में यह कहा गया है कि उसने स्मृति को सामने रखा हुआ है। उसकी स्मृति उपस्थित है। स्मृति साधकों की रक्षा करती है जैसे कि वह उनकी पहरेदारनी हो। साधक की वस्तुतः पहचान ही यह है कि वह स्मृतिमान् हो। यही बात गोरखनाथ कहते हैं कि योग विधान में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



सुरति को ही सामने रखकर बैठे, सुरति को ही सामने रखकर चले, सुरति को ही सामने रखकर बोले, सुरति को ही सामने रखकर मिले। सुरति को कबीर ने ढेंकुली की उपमा दी है। लगन की रस्सी बताया है और मन को ढोलनहार और कहा है—इस प्रकार के कुआँ से प्रेम रस पिया जाता है। और यही बुद्ध के उपदेश में है—जो स्मृति का अभ्यास करते हैं वे अमृत को पीते हैं और जो इसका अभ्यास नहीं करते हैं वे अमृत से वंचित रह जाते हैं। बुद्ध ने कहा है कि जैसे पाताल तोड़ कुएं में अजस्र जल की धारा निकलती है, वैसे ही आनंद का अजस्र स्रोत उस साधक के हृदय में फूट पड़ता है जो कायगता स्मृति का अभ्यास करता है और उससे उसके शरीर का कोई अंग अछूता नहीं रहता। इतना परिपूर्ण है यह आनंद! 'सुरति' सन्त-साधना में भी अमृत-रस को पीने का एक महान् साधन मानी गई है।

**अब मन उलट सनातन हुआ जब मन मनहिं समाना।**

बुद्ध दर्शन में चित्त की क्षणिकता का सिद्धांत प्रसिद्ध है। इसके अनुसार प्रत्येक क्षण चित्त के उदय और व्यय होते रहते हैं। कबीर एक जगह बिलकुल क्षणिक विज्ञानवादी के रूप में पूछते हैं कि—कबीर यहु मन कत गया जो मन होता काल्हि।

वह मन कहां गया जो मन कल था?

**सुरति संभाल गगरिया न छलके।**

तेलपत्त-जातक में बुद्ध ने स्मृति के महत्व पर एक कथा सुनाई। इस जातक में बुद्ध ने तेल के पात्र की उपमा देकर उपदेश दिया है। संक्षेप में वह इस प्रकार है : एक स्थान पर एक अत्यंत रूपवती जनपदकल्याणी का नाच-गान हो रहा था। जन-समूह उमड़ा पड़ रहा था उसे देखने के लिए। राजा ने जब यह बात सुनी तो अपने जेलखाने से एक कैदी को बुलवाया। उसकी बेड़ियां कटवाकर तेल से लबालब भरा एक पात्र उसके हाथ में दे दिया गया। एक सिपाही को जिसके हाथ में नंगी तलवार थी, राजा ने आदेश दिया, "इस आदमी को वहां ले जाओ जहां जनपदकल्याणी का नाच हो रहा है। यदि लापरवाही के कारण यह एक बूंद भी तेल इस पात्र से गिरा दे तो वहीं इसका सिर काट देना।" वह सिपाही तलवार उठाकर उस आदमी को वहां ले गया। मरण से भयभीत उस पुरुष ने एक बार भी आंख को तेल से हटाकर उस जनपदकल्याणी की ओर न देखा, क्योंकि जरा भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



तेल गिरता कि उसका सिर तलवार से कटकर धरती पर गिरता। तेलपात्र के संबंध में उस सावधानी और जागरूकता को ही बुद्ध ने "स्मृति" कहा है।

"सुरति शब्द मेला भया काल रहा गहि मौन।" बुद्ध की स्मृति पूर्णतः ध्यानमय है। उसे संतों ने हरि-स्मरण में जोड़ा है। बुद्ध ने आन-अपान, श्वास के आने और जाने के साथ स्मृति की साधना करने का उपदेश दिया था। उसे वैष्णव साधन में नियोजित करते हुए कबीर साहब कहते हैं कि—सासों सांसा नाम जप। कबीर ने बार-बार मन को मारने की बात कही है। इस मन कूं बिसमिल करूं, मारूं तो मन मृग को, मन न मारचां मन करि आदि। गोरखनाथ ने भी मन बछौ, मन को बैल कहा है। और गोरखनाथ ने बौद्ध सिद्धों की तरह कहा—"सतना सांतीड़ा समधावो" अर्थात् इसकी नाक में सत की रस्सी डाल दो।" आगे गुरु गोरखनाथ जी कहते हैं—"सहज सुभावै बाखर लाई" अर्थात् सहज, स्वाभाविक रूप से मैंने इस पशु को बाखर (घर) के अंदर कर लिया है।" "मन पवना धोरी जोताओ" (इस मन पवन रूपी धौरे बैल को जोत में डालो)

ध्यानी संत जिस मन बैल को खोजकर उसके नकेल डालते हैं और उसे आगे शिक्षित करते हैं वह पहले काले रंग का होता है और शिक्षण मिलते-मिलते क्रमशः सफेद रंग का होता जाता है और अंत में तो अपने अस्तित्व को ही लुप्त कर देता है। सफेद बैल शुद्ध रंग का प्रतीक है। बौद्ध सिद्ध शुद्ध मन को निर्विषय और निरालम्ब बताते हैं।

मध्यम-मार्ग और चार आर्य-सत्यों के नैतिक मार्ग के उपदेश के अलावा बुद्ध ने गम्भीर तत्व संबंधी उपदेश भी दिये। परमार्थ स्थिति की अनिर्वचनीयता के संबंध में वे कहते हैं, "भिक्षुओ! ऐसा आयतन है जहां न पृथ्वी है, न जल है, न अग्नि है, न वायु है, न आकाश-आयतन है... न यह लोक है न परलोक है, न चन्द्रमा है, न सूर्य है। उसे न तो मैं अगति कहता हूं, न गति। न वहां ठहरना होता है, न च्युत होना होता है, न उत्पन्न होना होता है। वह आधार-रहित है, संसरण-रहित है, आलम्बन-रहित है।"

महायोगी ध्यानी संत शाक्य मुनि महात्मा बुद्ध ने जिस ध्यान की धारा को उद्भूत किया और जिसके महिमाशाली प्रभाव की गवाही अनेक संतों ने दी, वह धारा एक ओर तिब्बत, चीन, जापान, और कोरिया तक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



फैल गई और दूसरी ओर श्री लंका, बर्मा, इण्डोनेशिया और वियतनाम के साधकों को पल्लवित करती रही। यह ध्यान की धारा सतत् बहती रहती है। जिसमें स्नान कर अनेक साधक अपने मन के सार को पा लेते हैं, अपनी प्रज्ञा को जागृत कर लेते हैं। यह धारा हर मानव के अंतरमन में ही बह रही है। भाग्यशाली हैं वे लोग जिन्हें सद्गुरु का सान्निध्य और शरण प्राप्त होती है, जो ध्याता के चित्त को इस धारा में समाहित करने की प्रेरणा देता है।

## ध्यान की धारा एवं जैन परंपरा

जैन दर्शन और जैन धर्म दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जैन दर्शन में तत्त्व की व्याख्या की है तो जैन धर्म में व्यक्तित्व के रूपांतरण की विधि को जनाया है। वह विधि है प्रेक्ष्या-ध्यान। 'ध्यान' जैन परंपरा का मौलिक तत्त्व है। जैन धर्म में साधना पद्धति को मोक्ष मार्ग कहा है और मोक्ष के दो मार्ग हैं—संवर और निर्जरा। उनका मार्ग है तप, और तप का प्रधान अंग है ध्यान। इसलिए मोक्ष का मुख्य साधन ध्यान है। जैनियों के आचार्य जिनसेन ने तपस्या के सभी प्रकारों को ध्यान का परिवार बताया है। इसलिए मोक्ष का मार्ग ध्यान में केन्द्रित है। ध्यान ही वह सोपान है जिससे मोक्ष की प्राप्ति संभव हो सकती है। भगवान महावीर स्वयं ध्यान में लवलीन रहते थे। उन्होंने साढ़े बारह वर्ष के साधन-काल में अधिकांश समय ध्यान में बिताया। अनेक दिनों तक निरंतर ध्यान किया। जैन धर्म के प्रारंभिक काल के ग्रंथों से यह स्पष्ट विदित होता है कि उस समय के मुनियों के वर्णन के साथ "ध्यानकोष्ठोपगत" विशेषण जुड़ा हुआ है। उस समय के मुनि ध्यान करते थे।

महावीर के साधना-काल के अनेक वृत्तांत बड़े रोचक हैं। महावीर घरबार छोड़ चुके हैं। भिक्षुक का जीवन व्यतीत कर रहे हैं और अपनी साधना में रत हैं। महावीर के समकालीन एक प्रसिद्ध ज्योतिषी था जिसका नाम पुष्य था। उसका ज्ञान अचूक था। दूर-दूर के लोग उसके पास अपना भविष्य जानने के लिए आते थे। एक दिन वह घूमता-घूमता गंगा के तट पर पहुंचा। उसने वहां तत्काल अंकित चरण चिन्ह देखे। यह चरण किसी चक्रवर्ती के होने चाहिएं। चक्रवर्ती और अकेला, यह कैसे ! चक्रवर्ती और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



पदयात्री, यह कैसे ! चक्रवर्ती और नंगे पैर, यह कैसे ! वह संदेह के सागर में डूब गया। चरण चिन्हों के पीछे चलते-चलते वह भगवान महावीर के सामने जाकर खड़ा हो गया और उनके शरीर पर सिर से पैर तक एक गहरी दृष्टि डाली। वह फिर असमंजस में पड़ गया कि इनके शरीर के लक्षण बतलाते हैं कि यह चक्रवर्ती है और इसकी स्थिति से प्रगट होता है कि यह पदयात्री भिक्षु है। भगवान खड़े-खड़े ध्यानमग्न थे। जब वे ध्यान से विरत हुए तो पुष्य अभिवादन कर बोला—भन्ते ! आप अकेले कैसे? महावीर ने कहा—'इस दुनिया में जो आता है वह अकेला ही आता है और अकेला ही चला जाता है दूसरा कौन साथ देता है?' नहीं भन्ते, मैं तत्त्व की बात नहीं कर रहा हूं, मैं व्यवहार की बात कह रहा हूं। आप परिवार विहीन होकर भी कैसे अकेले नहीं हैं? 'मेरा परिवार मेरे साथ है,' महावीर ने कहा। कहां है भन्ते, मैं जानना चाहता हूं? महावीर ने कहा—'ध्यान मेरा पिता है, अहिंसा मेरी माता है, ब्रह्मचर्य मेरा भाई है, अनासक्ति मेरी बहन है, शांति मेरी प्रिया है, विवेक मेरा पुत्र है, क्षमा मेरी पुत्री है, उपशम मेरा घर है, सत्य मेरा मित्रवर्ग है। मेरा पूरा परिवार निरंतर मेरे साथ घूम रहा है, फिर मैं अकेला कैसे?' पुष्य ने कहा—'भन्ते ! मुझे पहेली में मत उलझाइए। आज मेरे सामुद्रिक ज्ञान (ज्योतिष ज्ञान) की परीक्षा है। आपके शरीर के लक्षण आपके चक्रवर्ती होने की सूचना देते हैं और आपकी स्थिति एक साधारण भिक्षुक की है। मैं विस्मय में पड़ा हूं कि या तो मेरी विद्या झूठी है या आप वास्तविक में कौन हैं यह बतलाइए?' भगवान कहते हैं—'पुष्य, बताओ, चक्रवर्ती कौन होता है?' 'भन्ते ! जिसके आगे-आगे चक्र चलता है, जिसके पास बारह योजन में फैली हुई सेना को त्राण देने वाला छत्र रत्न होता है, जिसके पास चर्म रत्न होता है जिससे प्रातःकाल बोया हुआ बीज शाम को पक जाता है।' महावीर ने कहा—'पुष्य, तुम ऊपर, नीचे, तिरछे कहीं भी देखो, धर्म का चक्र मेरे आगे-आगे चल रहा है। आचार मेरा छत्र रत्न है जो समूची मानव जाति को एक साथ त्राण देने में समर्थ है। भावना योग मेरा चर्म रत्न है। उसमें जिस क्षण बीज बोया जाता है उसी क्षण वह पक जाता है। क्या मैं चक्रवर्ती नहीं हूं, क्या तुम्हारे सामुद्रिक शास्त्र में धर्मचक्रवर्ती का अस्तित्त्व नहीं है?' पुष्य ने कहा—'भन्ते ! बहुत अच्छा। मेरा संदेह निवृत्त हो गया है, अब मैं स्वस्थ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



होकर जा रहा हूं।' इसी प्रकार का रूपक रामचरित मानस में राम के विजयरथ के रूप में वर्णित है।

ध्यान की सतत साधना के द्वारा महावीर ने विजय प्राप्त की, किसी व्यक्ति पर नहीं किन्तु अहम् पर, ममत्त्व पर और मन की चंचलता पर, नींद पर, भूख पर और शरीर की चंचलता पर। जो दूसरों को जीतते हैं वे वीर हैं, जो अपने को जीतते हैं वे महावीर हैं। भगवान महावीर खड़े-खड़े ध्यान करते थे, कभी-कभी टहल लेते थे। वे ध्यान में इतने लय हो चुके थे कि वे एक उद्यान में माघ के महीने में निर्वस्त्र खड़े थे। ध्यान की प्रगाढ़ता में जबकि सारा वातावरण कांप रहा था, वे अचल खड़े थे। वृत्तांतकार कहते हैं कि भगवान आत्मा के ध्यान में इतने तन्मय हो जाते थे कि उनकी भूख-प्यास की अनुभूति क्षीण हो जाती थी।

क्या ऐसा हो सकता है?

क्यों नहीं? महर्षि पतंजलि का अनुभव है कि कंठकूप में संयम करने से भूख और प्यास निवृत्त हो जाती है।

कंठकूप का अर्थ?

जिह्वा के नीचे तन्तु हैं। तन्तु के नीचे कंठ है। कंठ के नीचे कूप है।

संयम का अर्थ?

धारणा, ध्यान और समाधि—इन तीनों का नाम संयम है। जो व्यक्ति कंठ-कूप पर इन तीनों का प्रयोग करता है, उसे भूख और प्यास बाधित नहीं करती। इसी क्रिया को योगियों ने खेचरी मुद्रा की क्रिया कहा है।

भगवान महावीर ध्यान की मध्यावधि में भावना का अभ्यास करते थे। उनके भाव्य विषय ये थे:—

**एकत्त्व**—जितने संपर्क हैं वे सब सांयोगिक हैं। अंतिम सत्य है कि आत्मा अकेला है।

**अनित्य**—संयोग का अंत वियोग में होता है, अतः सब संयोग अनित्य हैं।

**अशरण**—अंतिम सचाई यह है कि व्यक्ति के अपने संस्कार ही उसे सुखी और दुखी बनाते हैं। बुरे संस्कारों के प्रगट होने पर कोई भी उसे दुख-अनुभूति से बचा नहीं सकता।

भगवान ध्यान के लिए प्रायः एकांत स्थान का चुनाव करते थे। वे ध्यान खड़े और बैठे दोनों अवस्थाओं में करते थे। उनके ध्यानकाल में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



बैठने के मुख्य आसन थे पद्मासन, वीरासन और गोदोहिका आसन।

भगवान ध्यान की श्रेणियों का अतिक्रमण करते-करते उसकी उच्चतम् कक्षाओं में पहुंच गए। वे लम्बे समय तक कायिक ध्यान करते। उससे श्रांत होने पर वाचिक और मानसिक। भगवान प्रायः मौन रहते थे। ध्यान साधने के लिए मौन उपयोगी है क्योंकि वाणी मन के स्पंदनों को उत्तेजित करती है।

भगवान ध्यान में इतने लवलीन हो जाते थे कि उन्हें आसपास के वातावरण और घटनाओं का कुछ भी बोध नहीं रहता था। एक ग्वाले ने अपने बैल और गाएं चराने के लिए वहीं छोड़ दीं जहां महावीर ध्यान की मुद्रा में गिरिराज की भांति अप्रकंप खड़े थे। ग्वाला किसी काम से घर चला गया और जब वह लौटा तो उसके गाय-बैल वहां पर नहीं थे। उसके पूछने पर कि मेरी गाएं बैल कहां गए हैं, महावीर चुप रहे। उसने सोचा कि शायद यह मुनि मेरे पशुओं को हथियाना चाहता है और क्रोध में आकर वह जैसे ही रस्सी को हाथ में ले महावीर को मारने दौड़ा, वैसे ही वहां के राजा घोड़े पर सवार वहां आ पहुंचे जो कि वहां से निकल रहे थे। महाराज ने ग्वाले को महावीर का परिचय दिया और वह अपनी मूर्खता पर पछताता हुआ वापस चला गया। जब महावीर ध्यान से उठे तो महाराज नंदिवर्द्धन सामने आकर खड़े हो गए, बोले—भन्ते! आप अकेले हैं, जंगल में ध्यान करते हैं, आज जैसी घटना और भी घटित हो सकती है। आप मुझे अनुमति दें, मैं अपने सैनिकों को आपकी सेवा में रखूं। वे आप पर आने वाले कष्टों का निवारण करते रहेंगे।

भगवान महावीर गम्भीर स्वर में बोले—नंदिवर्द्धन! ऐसा नहीं हो सकता। ध्यान और मोक्ष की साधना करने वाला अपने आत्मबल के सहारे ही आगे बढ़ता है। वह दूसरों के सहारे आगे बढ़ने की बात सोच भी नहीं सकता। महावीर की ध्यान-साधना आत्म-साक्षात्कार की साधना थी। भगवान महावीर ने बार-बार निर्देश दिया—"संपिक्खए अप्पगमप्पएणं"—आत्मा से आत्मा को देखो। आचार्य कुन्दकुन्द ने शुद्ध चैतन्य को देखने की बात कही है। यह आत्मा को देखने की, शुद्ध चैतन्य को देखने की बात भगवान महावीर के ध्यान की मौलिक पद्धति है। महावीर ने चेतन और अचेतन दो द्रव्यों का अस्तित्त्व प्रतिपादित किया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



चेतन की सत्ता भी है और जड़ की सत्ता भी है। इसलिए ध्यान का अर्थ सत्य का साक्षात्कार नहीं है क्योंकि सत्य में तो चेतन और अचेतन दोनों आते हैं। पदार्थ और आत्मा दोनों को जानना सत्य को ही जानना है। दोनों के लिए ध्यान की एवं एकाग्रता की आवश्यकता है। परंतु आत्मदर्शन में केवल चेतना का ही ज्ञान होता है। चेतन का दर्शन उसी को होता है जिसका चैतन्य अनावृत्त हो जाता है और चैतन्य का अनावरण मन को चैतन्य में विलीन करने से होता है। इसलिए महावीर के ध्यान का अर्थ आत्मा को देखना, मन के उद्गम को देखना है। मन, प्राण में विलीन होता है और प्राण, आत्मा में क्योंकि प्राणों में समाई हुई है चैतन्य की धारा।

प्राचीन काल में अनेक दार्शनिकों के समक्ष यह प्रश्न आया कि धर्म का मूल क्या है? भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से इस पर विचार हुआ और भिन्न-भिन्न समाधान प्रस्तुत हुए। किसी ने कहा—"विणयमूलो धम्मो"—धर्म का मूल विनय है। किसी ने कहा— "दयामूलो धम्मो"—धर्म का मूल दया है। जैनाचार्य कुन्दकुन्द के समक्ष भी यह प्रश्न उपस्थित हुआ। उन्होंने उत्तर दिया—"दंसणमूलो धम्मो"—धर्म का मूल है दर्शन (ध्यान)। धर्म का मूल ध्यान है। जो ध्यान करता है वही धर्म को प्राप्त होता है। दर्शन अथवा देखना क्या है? जो न अतीत की स्मृति करता है और न भविष्य की चिंता, जो केवल वर्तमान में स्थित रहता है। वर्तमान का क्षण है वह प्राण और अपान जो हर क्षण व्यक्ति ले रहा है, सतत हर क्षण प्राण और अपान में समाया हुआ है चित्त जिसका, वही वर्तमान में स्थित है और इसी का नाम है साधना, प्रेक्ष्या या विपक्षणा जिस पर जैनाचार्यों ने बहुत बल दिया है।

जैन धर्म में तप पर भी बहुत जोर दिया गया है। भगवान महावीर ने केवलमात्र शरीर को कष्ट देने को ही तप नहीं कहा है। जो अज्ञानवश केवल स्थूल शरीर को तपाते हैं, महावीर ने उसे बालतप या अज्ञानतप कहा है। महावीर ने कहा—अज्ञानपूर्ण तप, तप नहीं है। कष्ट अलग बात है और तप अलग बात है। तप का अर्थ है आंदोलित करना, प्रकंपित करना आंतरिक संस्कारों व मूर्च्छा को ताकि उनको बाहर निकाला जा सके और आत्मा को उनसे मुक्त किया जा सके। तप है सूक्ष्म शरीर और कर्मशरीर को क्षीण करना, तप करना। जिससे हमारे संस्कार या कर्म के बंधन और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


प्रबल हों वह स्थूल शरीर को कष्ट देने पर भी तप नहीं होता। बाह्य तप के द्वारा केवल शरीर को कष्ट देना बालतप है। इससे कोई लाभ नहीं होता। बाहर से लोग तप करते रहते हैं, स्थूल शरीर को कष्ट देते रहते हैं, पर भीतर वासना का प्रवाह चलता रता है, अहं और ममत्व पनपता रहता है, राग और द्वेष की धारा बहती रहती है। लोग उपवास करते हैं। उपवास करते हुए भी उनके अंदर माया और अहम् की भावना चलती रहती है। यदि तप चित्त का शोधन करने में उपयोगी नहीं है तो वह तप केवल कष्ट है और अज्ञान का द्योतक है। इसलिए हमारी प्राचीन परंपरा में प्रायश्चित भी एक प्रकार का तप माना जाता था। प्रायश्चित का अर्थ है चित्त का शोधन। जिससे चित्त का शोधन होता है उस प्रक्रिया का नाम है प्रायश्चित। वह है अपने मन की मैल को धोना, अपनी गल्ती को स्वीकार कर उसे ठीक करना, अपने दोषों को और भूलों को स्वीकार करना।

जैन धर्म के प्राचीन आगमों का अनुसंधान करने पर ध्यान-पद्धति के निम्नलिखित तत्त्व प्राप्त होते हैं। पहला तत्त्व है—कायोत्सर्ग—शरीर की प्रवृत्ति का विसर्जन करना, ममत्त्व का विसर्जन करना। आत्मा और शरीर के भेद को समझना। साधारणतः व्यक्ति अपने आप को शरीर समझे हुए है। चेतना की ओर उसका ध्यान जाता ही नहीं। 'कायोत्सर्ग' चेतना और शरीर के भेदज्ञान का पहला बिन्दु है। शास्त्रों का केवलमात्र अध्ययन करना ज्ञान नहीं है। ज्ञान है अंतरचेतना की जागरूकता। आचार्य कुन्दकुन्द ने इसे बहुत स्पष्ट अभिव्यक्त किया है। शास्त्र के आधार पर चेतना और शरीर को पृथक मान लेना एक बात है और उनके अलग-अलग होने का अनुभव करना दूसरी बात है। दूसरा तत्त्व है भावना। भावना के द्वारा ध्यान की योग्यता प्राप्त होती है। भावना और धारणा एक ही बात है। और तीसरा तत्त्व है विपश्यना अर्थात् अपने आप को देखना।

भगवान महावीर के समय में साधक और मुनि विपश्यना ध्यान का अभ्यास करते थे। उन्हें ध्यान के रहस्य ज्ञात थे। भगवान महावीर के शिष्यों में सैकड़ों ऐसे शिष्य थे जो ध्यान में बहुत उच्चश्रेणी के थे। लेकिन धीरे धीरे समय के साथ जैन परंपरा में ध्यान की पद्धति लुप्त होने लगी और शुक्ल ध्यान करने वाले मुनि नहीं रहे। शुक्ल ध्यान है आत्मा के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


प्रकाश का ध्यान, जिसे जैनी लेश्या-ध्यान या प्रकाश के भिन्न-भिन्न रंगों का ध्यान कहते हैं।

भगवान महावीर के समय में हजारों हजार मुनि एकांत वास में, पहाड़ों में, गुफाओं में, उद्यानों में ध्यान करते थे। उनके बाद भी कुछ समय तक यह स्थिति चलती रही लेकिन फिर प्राकृतिक प्रकोपों के कारण, राजनैतिक उथल-पुथल के कारण और संघ सुरक्षा व लोक संग्रह के कारण जैन परंपरा जो ध्यान-प्रधान था वह स्वाध्याय प्रधान हो गया। जो अध्यात्मवादी था वह संघ प्रधान हो गया और ध्यान के स्थान पर जप का महत्त्व बढ़ने लगा। ध्यान शब्द "ध्यैं चित्तायाम्" धातु से बना है। इसका आधुनिक अर्थ है चिंतन करना, लेकिन प्राचीन परंपरा के अनुसार इसके दो अर्थ हैं—देखना, चिंतन या स्मरण करना। देखना ओर विपश्यना एक ही बात है। ध्यान की प्रक्रिया मुख्यतः दर्शन की प्रक्रिया है। आत्मा की परमज्योति का दर्शन करना ही ध्यान है। दर्शन केन्द्र अर्थात् आज्ञा चक्र पर अंतरदृष्टि या दिव्य नेत्र, तीसरे नेत्र को स्थित करना ध्यान का मुख्य अंग था। शब्द पर मन को लगाना या अनहद नाद सुनना ये ध्यान के साथ जुड़े हुए हैं।

आदि गुरु शंकराचार्य के प्रचार से, पुनः वैदिक धर्म के प्रतिष्ठान से बुद्ध परंपरा और जैन परंपरा पर काफी प्रहार हुए। परिणाम-स्वरूप भिन्न-भिन्न दर्शनों का टकराव होने लगा। महर्षि गौतम के न्यायदर्शन और महर्षि कणाद के वैशेषिक दर्शन ने एक नई क्रांति पैदा की। दार्शनिकों में शास्त्रार्थ होने लगे, वाद-विवाद होने लगे और ध्यान की धारा लुप्त होने लगी। गौतम ने अपने न्याय सूत्र में स्पष्ट लिखा कि धर्म की सुरक्षा के लिए वाद, वितण्डा एवं छल का प्रयोग किया जा सकता है। जब शास्त्रार्थ मुख्य होने लगा तो ध्यान की बात गौण होने लगी। इसका प्रभाव जैन परंपरा पर भी पड़ा। ध्यान और निवृत्ति के मार्ग को अपनाने वाले जैन मुनियों ने भी जैन संघ की रक्षा के बारे में सोचा। फलतः संघ को शक्ति-संपन्न करने वाले आचार्यों की परंपरा चल पड़ी और ध्यान का स्थान शास्त्रीय ज्ञान, विद्या और मंत्रों ने ले लिया। राज सभाओं में शास्त्रार्थ करना और प्रतिवादी को परास्त करना धर्म विजय का मुख्य लक्षण हो गया। चमत्कार ने भी जैन परंपरा में प्रवेश किया और अपनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding: IKS-MoE-Grant-2


शक्ति को प्रदर्शित करके आचार्य और मुनि अपने आप को प्रतिष्ठित करने लगे। आत्मज्ञान, विपश्यना या निर्जरा की धारा चमत्कार की दिशा में मुड़ने लगी। यद्यपि मुख्य रूप से जैन परंपरा में धीरे-धीरे स्वाध्याय, वाद-विवाद, शास्त्रीय विद्या का प्रभाव बढ़ने लगा लेकिन कुछ महामुनि ध्यान की धारा पर ही बल देते रहे जिन भद्रगणि क्षमाक्रमण ने "ध्यानशतक" की रचना की, जिसमें ध्यान की मौलिक पद्धति सुरक्षित है और उसमें कोई मिलावट नहीं है। हरिभद्रशूरी ने योग पर अनेक ग्रंथ लिखे। वे बहुत बड़े ज्ञानी और बहुत बड़े योगी थे। उनके योग ग्रंथों ने जैन परंपरा में योग की नई धारा प्रवाहित की। हरिभद्रशूरी ने अपने शास्त्रों में विभिन्न दर्शनों का समन्वय किया और योग ग्रंथों में विभिन्न साधना पद्धतियों का समन्वय किया। इस समन्वय में उन्होंने जैन साधना पद्धति के सूत्रों का महर्षि पतंजलि तथा अन्य यौगिक पद्धतियों का तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया और अपने सर्वग्राही दृष्टिकोण से उन्हें मान्यता देकर जैन साधना पद्धति को नया रूप दिया। हरिभद्रशूरी ने यह प्रतिपादित किया कि साधना पद्धतियों में केवल परिभाषाओं का अंतर है, तत्त्वतः कोई अंतर नहीं है। जैन साधना पद्धति और पतंजलि की ध्यान पद्धति के तत्त्वों में कोई अंतर नहीं है। केवल परिभाषाओं का अंतर है। यदि परिभाषा भेद को मिटा दें तो तत्त्वतः दोनों एक हो जाएंगी। हरिभद्रशूरी ने कहा कि न केवल जैन साधना पद्धति बल्कि बौद्ध परंपरा के सूत्रों में भी तत्त्वतः ध्यान पद्धति एक ही मिलती है। अतः हम कह सकते हैं कि जैनियों के श्रमणों की सामान्य साधना पद्धति के जो सूत्र थे उनका बौद्धों ने पाली भाषा में और पतंजलि ने संस्कृत भाषा में संकलन किया। जैन और बौद्ध ध्यान पद्धतियों को प्रेक्ष्या ध्यान अथवा विपश्यना कहा जाता है। योग दर्शन का अर्थ भी देखना ही है। इसलिए नाम की भिन्नताओं के होने पर भी यह हमें स्वीकार करना ही पड़ेगा कि तत्त्वतः मन के एकाग्र हुए बिना ध्यान संभव नहीं है। मन को एकाग्र करने की नैसर्गिक, पुरातन और सार्वभौमिक पद्धति एक ही है जिसे भिन्न-भिन्न अनुभवी ऋषियों ने, तीर्थंकरों ने, और संतों ने अपनी-अपनी भाषा में वर्णित किया है। विपश्यना या प्रेक्ष्या शब्द दो हैं पर तत्त्वतः ध्यान की प्रक्रिया एक ही है। विपश्यना भीतर की ओर जाने की पद्धति है। महावीर की पद्धति सूक्ष्म आन-अपान की पद्धति है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



आन-अपान के सूक्ष्म होने पर ध्यान की चरमसीमा प्रारंभ होती है। उन्होंने बारह वर्ष तक महाप्राण की साधना की थी। शुक्ल ध्यान की प्रधानता पहले जैन परंपरा में पाई जाती थी।

बौद्ध और जैन परंपरा में मूल ध्यान पद्धति के बारे में अनेक अनुसंधान हो रहे हैं। ध्यान के महत्त्व को जनाने के लिए यहां एक विशेष घटना का उल्लेख करना आवश्यक है। नासा का एक वैज्ञानिक वर्मा में आया। उसने विपश्यना के महान साधक "ऊ बा खिन सियाजी" से भेंट की। उनसे मन की शांति के बारे में पूछा। उन्होंने उसे विपश्यना ध्यान की दीक्षा दी। वह धातु शोधन का वैज्ञानिक था। उसने अनुभव किया कि ध्यान से शांति मिलती है, शारीरिक दोष भी मिटते हैं। पर ऐसा क्यों होता है? उसने उसकी खोज प्रारंभ की और फिर अपने गुरु के पास बर्मा आया। चर्चा के दौरान उसने बताया कि विपश्यना-ध्यान-पद्धति का धातु शोधन की पद्धति से तुलना की जा सकती है। अंतरिक्ष यान के लिए पूर्णतः शुद्ध धातु अपेक्षित होती है। यदि वह शुद्ध न हो तो अंतरिक्ष यान मजबूत नहीं हो सकता, तेज गति से नहीं चल सकता। धातु के एक दण्ड में एक अरब कण हैं। उनमें यदि एक कण भी अशुद्ध रह गया तो वायुयान टूट जाएगा। उसके सारे सारे कण शुद्ध होने चाहिएं। धातु शोधन की प्रक्रिया यह है कि अशुद्ध धातु को शुद्ध करने के लिए अशुद्ध धातु के दण्डे पर शुद्ध धातु के छल्ले घुमाए जाते हैं। उस दण्डे में से विजातीय कण निकलते जाते हैं और वह दण्ड शुद्ध होता चला जाता है। वे छल्ले ऊपर घूमते रहते हैं और धातु के विजातीय कण अपने आथ निकल-निकल कर अलग होते रहते हैं। उस वैज्ञानिक ने बताया कि विपश्यना के द्वारा भी इसी प्रकार शोधन होता है। हम सिर से पैर तक शुद्ध चैतन्य की एक धारा को प्रवाहित करते हैं, तब हमारी अशुद्ध चेतना में मिले हुए विजातीय तत्त्व बाहर निकल जाते हैं। इस प्रकार चेतना का शोधन होता है और उससे मन और शरीर के दोष भी दूर होते हैं। जैन साधना पद्धति की भाषा में यह निर्जरा की प्रक्रिया है। प्राचीन जैनाचार्यों ने इसे स्वर्ण और अग्नि के उदाहरण से समझाया है। जिस प्रकार मिट्टी मिला हुआ सोना अग्नि में तपाकर शुद्ध किया जाता है वैसे ही तपस्या और ध्यान के द्वारा कर्मों की निर्जरा की जाती है। चेतन के साथ जुड़े हुए संस्कारों को निकाला जाता है जिससे चैतन्य का शोधन होता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



है। इस ध्यान-पद्धति के द्वारा शारीरिक और मानसिक सभी दुखों का शोधन और क्षय होता है, संचित संस्कार क्षीण होते हैं। मानसिक ग्रंथियों और कर्म-संस्कारों का भी शोधन होता है और चेतना अपने शुद्ध स्वरूप में आलोकित हो उठती है।

मध्यकालीन भक्तिमार्ग में अनेक संतों की श्रृंखला मिलती है और सूफी मत के संतों ने भी इस ध्यान की धारा को पुष्पित और पल्लवित किया। यदि हम गुरु नानक और कबीर की वाणी को पढ़ते हैं तो तत्त्वतः उनकी ध्यान साधनाएं वैदिक परंपरा, बौद्ध परंपरा और जैन परंपरा से मिलती-जुलती हैं। न केवल वैदिक परंपरा में ही यह बात प्रतिपादित की गई है कि गुरु के बिना, आचार्य के बिना ब्रह्मज्ञान का बोध संभव नहीं है बल्कि बौद्ध परंपरा में और जैन परंपरा में भी यह स्पष्ट है कि बोधितत्त्व प्राप्त करने के लिए धर्मनायक की परम आवश्यकता है। जैन परंपरा में अर्हत् या केवली को ही गुरु का स्थान दिया गया है। अर्हत् उसे कहते हैं जिसके आत्मा की सारी शक्तियां विकसित हो चुकी हैं, जो कैवल्य पद को प्राप्त हो चुका है। जैन परंपरा में अर्हत् का ध्यान पुरुषाकार आत्मा के रूप में करना चाहिए। ऐसा करने वाला पूर्व कर्म की निर्जरा करता है अर्थात् उसके संचित कर्म का क्षय होता है और वर्तमान क्षण में महाप्राण की साधना करने से कर्म का बंधन नहीं होता। इसी प्रकार से उपनिषदों में लिखा है कि:—

**यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।**
**तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्तेमहात्मनः ।।**

सद्गुरु अथवा ब्रह्मनिष्ठ आचार्य में वैसी ही निष्ठा, आस्था और भक्ति होनी चाहिए जैसी परमात्मा में। तभी एक ध्याता या साधक को ध्यान में सिद्धि प्राप्त होती है और उनके द्वारा दिया हुआ उपदेश फलित होता है। सद्गुरु चिन्मय पुरुष होते हैं जिनके शरीर से विद्युत और ऊर्जा की तरंगें सदैव प्रस्फुटित होती रहती हैं। उनके दर्शन करने से और चरण स्पर्श करने से एक साधक को परमलाभ प्राप्त होता है और उसकी चेतना जागृत होती है।

गीता के अध्याय ४, श्लोक ३४ में यह प्रतिपादित किया गया है कि आत्मज्ञान की दीक्षा एवं ध्यान-विधि को किसी तत्त्वदर्शी के द्वारा जानना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



चाहिए। उनकी आत्मा को भाव और सेवा से प्रसन्न करके उनसे प्रश्न पूछना चाहिए।

**तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।**
**उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।।**

गुरु नानक जी भी कहते हैं कि:—

**मत कोई भ्रम भूलो संसारी। गुरु बिन कोई न उतरसी पारी।।**

कबीर साहब कहते हैं कि:—

**गगन मण्डल के बीच में जहां झलके नूर ।**
**निगुरा महल न पाइयां पहुंचेगा गुरु पूर।।**

संतों की वाणी, बुद्ध की वाणी, उपनिषदों के श्लोक आदि सभी एकमत होकर इस बात पर जोर दे रहे हैं कि शुद्ध आत्मा, चैतन्य स्वरूप, प्रकाश स्वरूप में अपने चित्त को, मन को, अवधान को या सुरति को लगाना ही ध्यान है। लेकिन यह ध्यान-विधि या ध्येय का बोध केवल शास्त्रों के अध्ययन से नहीं हो सकता। न बाहरी तप करने से होता है, या दान-पुण्य करने से होता है। यह केवल समय के तत्त्वदर्शी ब्रह्मनिष्ठ पुरुष के द्वारा ही संभव है और जो सद्गुरु के द्वारा दीक्षित होता है उसे ही यह ध्यान साधना फलित होती है।

कहावत है कि "सौ सयानों का एकमत" संसार के सभी महापुरुषों का, तत्त्वज्ञानियों का, सिद्ध पुरुषों का तो एक ही मत है लेकिन अज्ञानियों के अनेक मत हैं। जितने मन, उतने ही मत। जितने विचार, उतनी ही विचारधाराएं। लेकिन यह मनगढ़ंत विचार और मत आत्मज्ञान की उपलब्धि नहीं करा सकते। ये केवल मन बहलाने के उपक्रम हैं। गालिब के शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि दिल बहलाने के लिए ख्याल अच्छा है।

इस कलिकाल में जब कि धर्म और ब्रह्म जिज्ञासा प्रायः लोप सी होती जा रही है और अनेक प्रकार के मत मतांतरों से व्यक्ति भ्रमित है, इस कलिकाल में भी इस प्राचीन, आदि और मूल ध्यान पद्धति को श्री हंस जी महाराज ने सजीव किया और आज भी यह भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों में हजारों जिज्ञासुओं को आत्मज्ञान से पुष्पित एवं पल्लवित कर रही है श्री सतपाल जी महाराज के आध्यात्मिक नेतृत्व में। श्री सतपाल जी महाराज

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



धर्म की सजीव मूर्त्ति हैं और ध्यान के मर्मज्ञ हैं। इन्हें संत कहें या सद्गुरु कहें, तत्त्वदर्शी कहें या धर्मनायक कहें, सभी विशेषण इन पर सुशोभित होते हैं। □

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS MoE-Grant-2

# * जीवनोपयोगी प्रकाशन *

**मानव उत्थान सेवा समिति द्वारा प्रकाशित आध्यात्मिक पुस्तकें**

पुस्तक

## हिन्दी

शिव पार्वती संवाद (सजिल्द)
अमृत के कलश
हंसयोग प्रकाश (सजिल्द)
सत्संग पिटक
मुक्ति या बन्धन
गायत्री मंत्र
योग कर्मसु कौशलम्
भारत सोने का देश बने
मृत्यु के उस पार
अमर कथाएं
यमराज हार गया
उपनिषद वार्ता
तिरस्कार
राहें बदल गईं
कथा संग्रह
कहानी एक वनवासिनी की
हरि अनंत हरि क
त्रिवेणी के तट पर
अविरल भक्ति धारा
भक्त और भक्ति
सद्गुरु शब्द जहाज
चित्रमाला
ज्ञान गंगा
संग्रह त्याग
करुणामयी माँ
मानव धर्म
अवतार कथा
हंस भजन गंगा
ज्ञान प्रवाह
गंगा सागर
वन्दना
शिव पार्वती विवाह
श्री हंस भजन संग्रह (भाग १)
श्री हंस भजन संग्रह (भाग २)
श्री हंस भजन माला (भाग १)
श्री हंस भजन माला (भाग २)
धर्मो रक्षति रक्षितः
आओ मिलकर गायें
वैचारिक क्रान्ति
गीतासार (बड़ा)
अध्यात्म एवं विज्ञान
फैसलाहक़ व बातिल
रूहानी ग़ज़लें
प्रश्नोत्तरी
गुने अक़ीदत
आध्यात्मिक क्रान्ति
रूहानी जगत
नाम की विशेषता
संसार क्या?
गीता एवं रामायण
पढ़ने वालों से निवेदन
प्रेम और मोह
चालिसा (श्री हंस जी महाराज)
चालिसा (श्री माता जी)
जीवन लक्ष्य
गीता सार छोटा
दिव्य संदेश व समता दर्पण
संक्षिप्त जीवन परिचय
श्री सतपाल जी महाराज
शांति संदेश
ज्ञान दीपक
देव वाणी
मानवता
सत्य का निर्णय

**बालोपयोगी सचित्र हिन्दी पुस्तकें**

सच्चा शिष्य
रोस फरीद
दत्तात्रेय के चौबीस गुरु
राजा जनक को आत्मज्ञान कैसे हुआ

**हमारा अगला प्रकाशन**

गुरुदक्षिणा
चपेटों का पिंजरा

## अंग्रेजी

The light of Wisdom
Shri Hans ji Maharaj
Hans Yog Prakash
Secret Knowledge
The Word of God
Shrimadbhagavad Gita
Dharma for Man
Living Testament
Life Portrait of Shri Satpal Ji Maharaj
Science and Spirituality
Soul
Way to Total Satisfaction

## गुजराती

हंस योग प्रकाश
संक्षिप्त जीवन परिचय
श्री सतपाल जी महाराज
गायत्री मंत्र
अविरल भक्ति धारा
मानव धर्म अेटले शुं
सत्संग भजनावली
ज्ञान प्रवाह
धर्मो रक्षति रक्षितः
ज्ञान संदेश
दिव्य संदेश
सत्संग प्रवाह
आध्यात्मिक क्रांति
धर्मराजनी वातां
नामनी विशेषता
प्रेम अने मोह
अध्यात्म अने विज्ञान
जीवन लक्ष्य
श्री हंस चालीसा
माता राजेश्वरी चालीसा
ज्ञान दीपक
गुप्त वाणी
सत्यनो निर्णय

## मराठी

खरा शिष्य (संत एकनाथ चरित्र)
ज्ञान प्रवाह
जनक राजाना आत्मज्ञान कसे झाले
अमृत वर्षा
श्री हंस भजनावली
नामाची विशेषता
आध्यात्मिक क्रांति
अध्यात्म आणि विज्ञान
प्रश्नोत्तरी
जीवन लक्ष्य
प्रेम आणि मोह
गीता-रामायण
वाचकांकरिता निवेदन
मराठी भजन माला
जीवन परिचय
श्री सतपाल जी महाराज
देववाणी
ज्ञान दीपक
शांति संदेश
गुप्त वाणी
मानवता
सत्याचा निर्णय

## नेपाली

सद्गुरु नेपाली भजन माला
अध्यात्म एवं विज्ञान
गीता रामायण पढ्नेहरूलाई निवेदन
श्री सतपालजी महाराजको संक्षिप्त जीवन परिचय
गीतासार
गुप्त वाणी
सत्यको निर्णय

## उर्दू

कलमा-ए-सादत
मुर्शिद कामिल मज़िदा
मुर्शिद कामिल मजिदा दोयम
चश्म-ए-रहमत
रूहानी जगत
पैगाम-ए-अमन
हमादेश (१९७७)

## पंजाबी

ग्रंथ सार
तू गउंदा जा
गुप्त दी खोज

## बंगाली साहित्य

युगयुगेर नामेर विशेषता
अध्यात्म एवं विज्ञान
आपनि की जानेन

## तेलुगु

अध्यात्म विज्ञान
सद्गुरु की आवश्यकता
ध्यान योग
जीवित रहस्यम्
सतपाल महाराज सन्देश
सत्यका निर्णय

## तमिल

अध्यात्म विज्ञान

## उड़िया

मानव धर्म
नाम की विशेषता
संसार क्या?
गीता पढ़ने वालों से निवेदन
जीवन परिचय श्री सतपाल जी महाराज
अध्यात्म विज्ञान
गुप्त वाणी
सत्य का निर्णय

पता : मानव उत्थान सेवा समिति
२/१२, पंजाबी बाग, नयी दिल्ली–२६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सचित्र हिन्दी धार्मिक मासिक पत्रिका

# हंसादेश

वार्षिक मूल्य २७ रुपये, आजीवन ३०१ रुपये

# मानव धर्म संदेश

सचित्र आध्यात्मिक मासिक पत्रिका

हिन्दी-वार्षिक मूल्य २४ रुपये, आजीवन २०१ रुपये

बंगाली (त्रैमासिक)-वार्षिक मूल्य १० रुपये

# मानव धर्म

(गुजराती, मराठी, उड़िया, पंजाबी, कुमाऊंनी एवं गढ़वाली भाषा में)

वार्षिक मूल्य २७ रुपये, आजीवन ३०१ रुपये

अंग्रेजी-वार्षिक मूल्य ३० रुपये, आजीवन ५०१ रुपये

एवं

# धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र

अध्यात्म और राजनीति का समन्वय करने वाला भारत का एकमात्र हिन्दी मासिक पत्र

वार्षिक मूल्य १५ रुपये, आजीवन १२१ रुपये

तथा

छोटे-छोटे अनुबंध एक बार मंगाकर अवश्य पढ़ें।

मंगाने का पता-मानव उत्थान सेवा समिति

२/१२, पंजाबी बाग, नई दिल्ली-११००२६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

). In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon